आदमी वहशी हो जायेगा

(कहानी-संग्रह)



(राज० साहित्य अकादमी के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित)

आवरण : अमित भारती
प्रकाशक : अपर्णा प्रकाशन जैलवेल बीकानेर
मूल्य : 60.00 रुपये
संस्करण : 1989-90

मुद्रक : पारस प्रिंटर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

AADMI VAHSHI HO JAYEGA
(Short Story) by Ramkumar Ojha, Nohar

आदमी वहशी हो जायेगा



रामकुमार ओझा



अपर्णा प्रकाशन, बीकानेर

अर्पित
मन की प्रेरणा को

प्राकरणिक

कहानी की शास्त्रीय पद्धति अब केवल विश्वविद्यालय की कक्षाओं तक ही सीमित रह गयी है। व्यवहार मे कहानी एक मुक्त विधा के रूप में उभरकर निखरी है। कहानीकार यदि शास्त्रीयता में जकड़कर कथा का कलेवर खड़ा करता है तो वह मात्र एक निर्जीव कंकाल की संरचना भर कर पाता है। अथवा रीतिकालीन काव्य-पद्धति की अटपटी गद्य अनुकृति। संवेदना और मानवीय निसर्गता सांचों में नही ढल पाते। ये तो शाश्वत अनुभूतिया हैं।

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द की धारा से जुड़ाव, मुख्य-धारा से जुड़ना माना जाने लगा है, किन्तु मैंने सप्रयास ऐसा कुछ नही किया है कि प्रेमचन्द की परम्परा के अनुगामियों के दावेदारों की पंक्ति में खड़ा नजर आऊं। इसका आकलन तो स्वयं पाठक ही करेंगे।

मेरी अपनी मौलिक धारा भी है। शब्द-नीरा अपने स्वाभाविक प्रवाह मे बहती जाये। कथ्य और शिल्प अपने से लहर-लहरिया बन उभरें।

पात्रों के साथ भी मैं कभी छेड़-छाड नही करता। अनजाने में कभी ऐसा हो गया तो पात्र विद्रोह पर उतर आये। वे या तो मेरी पकड से छिटक गये अथवा बरजोरी अपने वाली कर गुजरे।

मेरी कहानियों में पात्र तथा परिवेश दोनो की ही प्रधानता रहती है। प्रकृति और आदमी को मैं कभी अलगाता नही। प्रकृति पुरुष की पूरक है। आदमी प्रकृति से ज्यू-ज्यू कटा, संवेदना और शाश्वत मानवीय मूल्यों से त्यूं-त्यूं कटता गया और छूछा ठीकरा भर बनकर रह गया। समष्टि से कटा और एकाकी स्वार्थमय व्यक्ति इकाई भर रह गया। परिणामस्वरूप आदमी घोंघे की नियति पा गया। घोंघा अपने लिए एक कैप्सूल (खोल) का निर्माण करता है और उसमे घुसकर, उसका भार ढोते रेंगते अपने को सुरक्षित महसूस करता है। फिर भी दहशत मे जीता है। किन्तु आदमी की नियति दहशत और वहशत दोनो बन गयी है। दहशत ने उसे आक्रामक और वहशत ने पुनः आदिम मानव बना दिया है। मेरी कहानियों में एक हद तक इस वहशीयानेपन के कारणों की पड़ताल की गयी है। 'आदमी वहशी बन जायेगा।' प्रथम कहानी दहशत के समीचीन कारण संजोये है।

मेरी कहानियो की नारियां स्वयं स्फूर्ता है। मेरी कल्पना मे कमजोर नारी का स्वरूप उभर नही नही पाता। जबकि व्यावहारिक जीवन मे मैंने

अधिकांशत: कमजोर नारियों को ही बेबसी की अनुकृतियों के रूप में चलते-फिरते पाया है। लेकिन ऐसी जिन्हें पाया है वे एक रूढ़ संस्कृति की बची-खुची अवशिष्ट निशानियां भर हैं। असल नारी पुन: उभरने लगी है।

यद्यपि नारी-विज्ञान का मैं विधिवत् अध्येता नहीं। किन्तु लगता है मेरे अन्तस के कथाकार ने नारी को काफी कुछ समझा-परखा है। स्वीकार करने में झिझक नहीं कि अन्यों के समान ही विविध रूपा, स्वभावशीला नारियों से मेरा भी साबिका पड़ा। त्यागमयी, स्वार्थी, सुशीला, दु:शीला। संयत, सहयोगिनी। उदण्ड, ईर्ष्यालु, सशयालु, झगड़ालू संघर्षशीला और यथास्थिति को समर्पिता अनेक नारियों को देखा है। किन्तु पात्ररूप में अपनी डगर आप बनाने वाली और टेढ़े तेवर वाली स्त्रियां ही उभर पायी हैं।

मातृयुग की मातृ-धातु को अन्ध-युग में पुरुष ने विदुषी से वस्तु बना धरा। इसी से नारी जो हेय करती है, अपने श्रेय से गिरा दिये जाने के कारण। किन्तु भयप्रद यह है कि पुरुष ने कभी जो उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण किया, आज स्वयं नारी ही उसकी संरक्षक, हिमायती बन बैठी है। और नारी की परतन्त्रता का कारण स्वयं नारी ही बन गयी है।

नारी ने पुरुष को यातनाओं के जगल में धकेला तो उसे काटों से उबारा भी। नारी का उदात्त स्वरूप मेरे निकट श्रद्धेय है। मेरा हर नारी पात्र ज्वार चढ़ी नदी है। मुकामो, सफीनो, कसुम्बो, सड़क, रब्बो सभी तो तेवर टेढ़े किये मेरी कहानियों में उभरी हैं। लेकिन अटपटी शायद नहीं लगती। 'ओकारात्मक' नाम भी आप ही धारण किये हैं। वे अपने नारित्व को बनाये रखने के लिए पौरुष का आलम्बन लेती हैं। हैं तो, आंचल में दूध और आंखों में पानी भरी लुगाइयां ही।

मेरी कहानियों को राजस्थान की माटी की गंध सने मुहावरे और शब्द जहां-तहां टंककर आंचलिक बना देते हैं। मूर्धन्य कहानीकार और सम्पादक श्री राजेन्द्र यादव ने भी मेरी 'त्रिकाल' कहानी की घनघोर आंचलिकता के प्रति आशंका की अंगुली उठाई है तो उसे सराहा भी है। भाई राजेन्द्र जी का संकेत मेरे श्रेय के लिए ही है। किन्तु यह आंचलिकता ही मेरी कहानियों का पोषक तत्त्व है। फिर प्रश्न भी है कि, बिहार के रेणु जी को घनघोर आंचलिकता की अबाध छूट है तो राजस्थान के कथाकारों को क्यों नहीं।

प्रगतिशीलता का प्रश्न सबसे जटिल है। यह भी एक शास्त्रीयता बनती जा रही है। अलग-अलग खेमे के परिभाषाकारों ने जुदा-जुदा रूप में प्रगतिशीलता को परिभाषित किया है। हरबर्ट मार्कूस, क्रिटोफर कॉडवेल, हर्वर्ट फास्ट और लूनाचास्की जैसे विदेशियों की बहस पर न जाकर भी मैं यह कहने की स्थिति में हूं कि राजेन्द्र यादव और अवधनारायण मुद्गल की प्रगतिशीलता में भी अन्तर

है। किन्तु मेरी प्रगतिशीलता के केन्द्र में आदमी है और हाशिये पर उत्पीड़न। समाजगत, राजनैतिक और उत्पादन के साधनों पर एकाधिकार और जातीयता की संरचना आदि कारणों ने आदमी को वर्गों में बांट दिया है। एक के बांट में अधिकार और उपभोग। दूसरे की नियति पिछड़ापन। मैंने 'हाड़फरोश' के रूप में फतू को सबसे पिछली पंक्ति में से खोज निकाला है तो चीता को वर्णशंकरता की बेबसी के मारों की पंक्ति से पड़ताला है। आकाशी भगवान थैलीशाहो का कैदी बन गया और धरती का 'भगवान' अपना खून बेचकर रोटी तोड़ने पर मजबूर किया गया।

मेरी प्रगतिशीलता यही है कि आदमी मजबूरी के मकड़-जाले को तोड़े और अपने पूरे कद में उभरे। समझे कि शोषक और आडम्बरकारियों का कद उससे ऊंचा नही है। और अपने को बौना बनाने वाले औजारों को तोड धरे। वह (आदमी) एकाकी नही है, समष्टि की धारणा उसके साथ है। उत्पीडितों का समुच्चय ही नये सिरे से सत्यं, शिवं, सुन्दरं की सृजना करेगा। यही शाश्वत सत्य है और इसके लिए प्रेरणा देने वाले कथाकार प्रगतिशीलता के ध्वजवाहक है। मेरी कहानियो के हाशिये पर आरोपित नैतिकता और तराशी-छांटी गयी बौद्धिकता के निराधार पोषक हैं। यथास्थिति अधिक काल तक बने न रह पायेगी, यह सूक्ष्म सत्य है। मेरे अधिकाश पात्र अशिक्षित है, किन्तु उनकी अपनी एक सोच है।

इस प्रगतिशील युग में भी हमारे देश मे कुछ ऐसे अंधे द्वीप है, जहां रूढ़ि अभी मरयादा और ओट संकोच की कसोटी बनी हुई है। 'बाबा बोलने लगे' ऐसे ही अन्ध-द्वीपों के वाशिन्दा मध्यमवर्ग के वृद्धो की नियति-कथा है।

आदमी मे जीने की लगन हो तो मौत भी उसे नही मार सकती। 'प्रेत-कुण्ठा' इसका प्रमाण है।

मेरा जीवन लेखन से जुड़ गया है। इसलिए लिखता हूं कि स्वयं कर्मरत रहते जीता रहूं और दूसरो को भी जीवन ऊर्जा मिले।

कहानी प्रधान रूप से इसलिए लिखता हूं कि यह संप्रेषण की सर्वोपरि सार्थक और सुविधापूर्ण विधा है। संप्रेपक (लेखक) और ग्राहक (पाठक) का कहानी के माध्यम से सीधा जुडाव हो जाता है।

उक्त जो भी लिखा है वह रिवाज के निर्वाहण में लिखा है। 'निज भनति' सबको 'नीकि' लगती है। किन्तु निर्णायक तो सुधि पाठक हैं। और मूल्यनिर्धारक सगग्र-बुद्धि समीक्षक। लिख देने के बाद लेखक की भूमिका तो बस, यही रह जाती है कि वह तटस्थ हो रहे।

निवेदक-

—रामकुमार ओझा

अनुक्रमणिका

आदमी वहशी हो जायेगा

परमेश्वर ने आकाश और धरती बनाये। धरती आकारहीन सुनसान थी। जल की सतह के ऊपर परमेश्वर की आत्मा मंडरा रही थी। परमेश्वर ने कहा—'प्रकाश हो।' प्रकाश हो गया। फिर उसने रोशनी और अंधेरे को अलग-अलग किया। दिन-रात बन गये। तब रात हुई और प्रभु सो गया।

तब धरती पर शोर न था, इसलिए वह सो पाया। पर अब उसका बनाया आदमी सो नहीं पाता। मैं उसका नाम नहीं जानता, पर जो भी हो, अब उसकी रातें इसी सोच में गुजरने लगी कि यदि सारी दुनिया के आदमी एकसाथ पगला जायें तो क्या हो? वैसे उसे कोई जवाब नहीं मिल रहा था। सतही तौर पर यह एक बेतुका सवाल था। पर अच्छा इसलिए था कि दुनिया के खैर-खयाल में दुबलाते जाने के बावजूद उसे शोरगुल का एहसास कम होने लगा था। उन हजार आवाजों की परेशानी से यह एक परेशानकुन खयाल उसे सुकून देता था।

अगले दिन उठकर प्रभु ने कहा—'जल के बीच में मेहराब हो।' जल जल से अलग हो गया। सन्ध्या हुई, फिर परमेश्वर सो गया। तीसरे दिन उसने धरती को सुखाया और उसे वनस्पति उगाने की आज्ञा दी। पेड़-पौधे उग गये।

फिर वह ज्योति-पिण्ड, जलचर, थलचर बनाने लगा। अगले दो दिनों में उसकी इच्छानुसार सब बन गया तो उसने छठे दिन अपने ही स्वरूप में आदमी को बनाया (प्रकृति) स्त्री-पुरुष में बांटा और आज्ञा दी—'तुम इस पृथ्वी पर अधिकार कर लो और इसे भर दो।' आदमी ने पहले अपनी नसल से धरती को भरा और फिर उसमें शोर भर दिया।

और यह सब, परमेश्वर की सृष्टि और आदमी की रचना सात दिनों में हो गयी।

यहां परमेश्वर की कहानी खत्म होती है और उस बेनामी आदमी की कहानी शुरू होती है, जिसके जैसे असंख्य हैं। वह सो नहीं पाता, अपने ही पैदा किये शोर के कारण।

इधर उसके पड़ोसियों ने परमेश्वर को पुकारने के लिए एक नया घर बनाया। उसकी छतों पर ध्वनि-प्रसारक यन्त्र लगाये और ढोल-दमामों के शोर के बीच प्रभु को पुकारने लगे। वे प्रभु को पुकार रहे थे और 'वह' सोच रहा था—परमेश्वर कितना नाराज होगा। ये लोग न खुद सोते हैं न उसे सोने देते हैं। वह एक दिन जरूर इन्हें धमकाने के लिए आयेगा। अभी आ सकता है। वह प्रतीक्षा करने लगा। उसी घट-घट के ज्ञाता से ही पूछेगा कि 'क्या आदमी के पगलाने के ये ही लक्षण है, जैसे कि ये तेरे भगत दर्शा रहे हैं।'

तभी एक लारी धड़ड़ धड़धड़ाती आयी। उसके बोदे अस्थि-पंजर खड़खड़ा रहे थे। 'ऐसी सड़ियल गाड़ी में तो परमेश्वर क्या आया होगा!' 'किच'''च। क्री'''च'''र।' ड्राइवर ब्रेक भी लगाये जा रहा था और क्लीनर को धमका भी रहा था—'ओये'''हरामी दे पुत्तर।'

इस सद्वाक्य का अर्थ था—'दौड़कर गोदाम का सटर खोल।' तड़क, तड़क सटर उठ गया। टीन की चद्दरें, लोहे के गर्डर उतर गये। शोर के साथ उसकी कोठरी में दारू के भभके भर गये।

शुरू-शुरू में वह सड़क किनारे मंजी (चारपाई) डालकर खुले में सोने लगा था। पर वहां लारियों, ठेलों वाले पीकर उत्पात करते, उसकी मंजी पर दखल कर लेते। तो वह कबाड़खाने से एक टीन का पंखा लाया। छत से लटकाया। उसकी ताड़ियां खड़खड़ बोलती रहती और वह उसके नीचे पड़ा सोचता रहता—'यदि इस धरती के सारे आदमी एकसाथ पगला जायें तो कैसा हो?'

वह मारे भूख के पगला जाता अगर उसे नौकरी न मिल जाती। नौकरी मिली तो घर पाने की तलब हुई। फिर घर का ख्वाब देखना तरक कर दिया। एक कमरेभर की तलाश करने लगा पर अन्त में अपनी हैसियत के अनुसार वह कोठरीभर ही पा सका तो घर बसाने का इरादा छोड़ दिया। 'ऐसे मोहल्ले में क्या किसी को जोरू बनाकर लाना ठीक है?'

यह कोई शरीफों का मोहल्ला नहीं। वैसे शरीफों की नजर में वह भी शरीफ नहीं। कोई शरीफ काम कर मुंह काला नहीं करता। वह तो बस, रातभर प्रभु को पुकारता है और दिनभर सोता रहता है। प्रभु का दूत उनकी छतों पर रोटियां, खुशियां, ऐशो इशरत बरसाकर रात-की-रात लौट जाता है। आते-जाते उसके डैनों से शोर होता है और आदमी जाग जाता है। अगर झपकी आ पायी हो तो।

शरीफों का मोहल्ला न होने से इधर से सफेदपोशों की हलकी-फुलकी सवारियां भी नहीं गुजरती। जो गुजरते हैं, रुकते हैं, वे भारी-भरकम वाहन। उनके चालक बड़े अजर होते हैं। वे रहमदिल इतने होते हैं कि किसी को कुचलकर पीछे मुड़कर भी नहीं देखते। कुत्ता न मरा हो, आदमी ही कुचल गया हो।

ये आदमी भी हरामजादे। किसी के मत्थे तोहमत धरने के ही लिए बीच सड़क सोते हैं। ऐसों के लिए क्या रुकना। रहम के पुच्छल्ले से बंधकर लाख झमेले आते हैं। इसलिए कुचलो, 'सत् नाम' कहो और चले जाओ।

बेमौत मरने वाला जरूर हरामी होता है जो अपनी अक्ल के हुनर से एक सुरक्षित घर तक नही बना सकता। कमेरा भर बनकर हाड़ पेरता है और बीच सड़क कुत्ते के जानिब मरता है। अच्छा हुआ, वह भीतर सोने लग गया, वरना वह भी मरता, क्योंकि अपने वर्कशॉप के हेड के मुताबिक वह भी हरामी है जो काम ज्यादा और खुशामद कम करता है। अपने साथियो की खतरनाक हरकतो की झूठी खबर मैनेजमैण्ट को नही देता।

फर्श के नीचे तरखान किसी फट्टे में कील ठोक रहा था। ठक्'''ठक।

'खटक'''अटक। खटक'''अटक।' छत के ऊपर वाले दालान मे छपाई की मशीन चल रही थी। खटकती, अटकती। खटारा मशीन। जैसा कि आदमी हुए जा रहा है।

खैर, हो। असल सवाल है—'सारे आदमी एकसाथ पागल हो जायें तो ?' कर्कश आवाजों से उसका खयाल हटकर इस अपने मौलिक विचार पर आकर अटक गया। अपनी सोची बात आदमी को मौलिकता का सुख देती है, चाहे वह कितनी लचर क्यो न हो।

सटर गिर चुका। लारी का इंजन घर्र-घर्र करने लगा। पर चक्के जाम थे। लगता है, आज फिर धक्के खायेगी। 'बोनट खोल ओये हरामी दे पुत्तर।'

बोनट खोलने की जरूरत न हुई। धमकाने से ही लारी धक्-धक् कर चलने लगी।

परमेश्वर भी आकर इनको धमकाता क्यो नही। खुद बुढ़ा गया हो तो प्रभु अपने बेटे को ही भेज दे। जो आकर कहे—'अरे प्रभु के मेमनो ! तुम भटक गये हो। चलो, चलो। परमेश्वर को सोने दो। अगर कयामत की रात बीत गयी तो सबसे पहले तुम्हारी रूहो से जवाब तलब किया जायेगा।'

पर उन सबका क्या होगा जो रात की सिफ्ट भी चलाते हैं। आदमी यन्त्रो के अधीन होकर जागता है, इसलिए कि कही यन्त्र न सो जायें। शोर, धुआं, धमाके। यह कोई नही कहता। कहने लगे है—प्रदूषण पर्यावरण। हिन्दी के प्रचारकों ने हिन्दी को ऐसा बना छोड़ा है कि बनाने वालों को भी अखरती है। और जो नही समझते, वे इन शब्दो को अगरेजी समझने लगे हैं।

'''तो'''जब आदमी की समझ सो जाती है तो वह पगलाने लगता है। आज की रात खुशगवार है। उसे अपने सवाल का जवाब मिलने लगा है।

'खबरदार, होशियार। जागते रहो।' गुरखा चौकीदार जागतो को जगाने आ गया। खुद दिन मे सोने की पगार पाता है। पहाड़ पर होता तो प्रतिध्वनित

होकर चोटियां उसे अपने जागरूक होने का एहसास देतीं। यहां मैदानी कुत्ते भौंकने लगे। कुत्ते भौंकते पहले की ही तरह हैं, पर मौकापरस्त हो गये हैं। पहरुवा आता है तो भौंकते हैं। चोर आता है तो दुबककर सो जाते हैं। कोई मुट्ठिया बन्द किये निकल जाये तो कुछ नहीं बोलते। मगर जोर-जोर से शोर किये जाता हो तो ये भी शोर में शोर मिलाकर उसके पीछे दौड़ने लगते हैं।

चौकीदार की लाठी से वे डरते हैं। पीछे नहीं लगते। पर भौंक-भौंककर कहते हैं—'हम कुत्तों को नींद नहीं आती। हमारी बिरादरी बढ़ रही है। कोई नहीं सोता। नींद आती हो तो तुम जाकर सो जाओ।'

कभी कुत्ते सोते थे। मगर अब सभ्य हो गये हैं, इसलिए नहीं सो पाते। नीचे तरखान का बसूला चल रहा है। ऊपर 'आज की ताजा खबर' छप रही है।

'स्साले नींद आती है। दो डब्बल तो पी चुका। अब और चाय पीनी है तो पैसे पगार से कटेंगे।'

और छोकड़ा चाय नहीं पीता, ऊंघता है। अंगुली कटा बैठता है। कामगरों की दुर्घटना का मुआवजा दिलाने की हिमायत में मेहनत से लिखा गया 'एडिटोरियल' छपने से रह गया। हरामी को कल जरूर नौकरी से निकाल दूंगा। जब भी जरूरी बात छपनी हो, जख्मी हो जाता है।

तीसरी मंजिल पर पापड़ बेलने वाले हैं। धोबी-मुहाल हैं। रात में काम सुविधा से होता है। दिन के लिए और बहुत काम हैं। नीचे तरखान तख्ते चीर रहा है। सामने के मकान में दारू पीकर कुछ लोग झगड़ने लगे हैं। दूसरी मंजिल पर गलियारा है। गलियारे के दोनों ओर आमने-सामने कोठरियां हैं। गृहस्थी और छड़े, निहंग अगल-बगल रहते हैं। छड़ों को सरे-शाम दरवाजा बन्द कर सो जाना पड़ता है।

उनमें से ज्यादातर निठल्ले और लफंगे होते हैं। बीबी-बच्चे न हुए, नेक-चलनी के सर्टिफिकेट हो गये। उनके मर्द अकसर आधी रात बाद दारू पीकर आते हैं। बच्चे समझदार हो गये हैं। सो जाने का बहाना सीख गये हैं। पर बीवियां हैं कि मारे प्यार की बदमिजाजी के, देरी से आने का सबब पूछती हैं और पिटती हैं। दारूखोर की जुबान ज्यादा चलती है। धौल-धप्पड़ कम कर पाता है। पर बीवियां हैं कि सप्तम स्वरों में बद्दुआएं देती हैं। कोई बीच-बचाव करने आता है तो मर्द-लुगाई दोनों बिचावले को मिलकर धुन देते हैं। उसकी भी एक-दो बार धुनाई हो चुकी है।

अब प्रभु के प्यारे पापद परमेश्वर को कल तक की मोहलत देकर सो गये हैं। पर मियां अजान देने लगा है। मुर्गे बोलने लगे हैं। लारी ठेलों की आवा-जाही बढ़ने लगी है।

रात की छूत धोने स्त्री-मर्द नदी पर नहाने जाने लगे हैं। 'हर गंगे। हर

गंगे।' जबकि गंगा इस शहर से कोसों दूर है। इधर आदमी फिर कुछ ज्यादा ही धर्म की बाढ़ में बहने लगा है। बेकारी और महंगाई के अनुपात से भी कुछ ज्यादा। आदमी ज्यूं टूटता है, त्यूं ही पराश्रयी होता है। जिनका हौसला नहीं टूटता वे फसादी हो जाते हैं। दीन-धर्म के नाम पर फसाद ज्यादा आसानी से खड़े किये जा सकते हैं। थोड़े से फुटपाथिये मरते हैं, पर हजारों घरवासियों को कर्फ्यू के दौरान सोने का अवकाश मिल जाता है। शोर रुक जाता है। कर्फ्यू भी इस जमाने की ऐन नियामत है। सुलाता भी है, दहशत भी फैलाता है।

'तो पगलाने के बाद आदमी कैसा हो जाता है।' गनीमत है कि सवेरा होने वाला है। वरना वह इस सवाल के जवाब की पड़ताल में शायद खुद ही पगलाने लगता। बेहतर है नल पर भीड़ जमा होने से पहले नहा लिया जाये।

'ये छड़े भी कितने बेशर्म होते हैं कि जनानियों से पहले नल के गिर्द चक्कर लगाने लगते हैं। नहाने का तो एक बहाना है।'

दिन में काम करते जो मुंह पर कालिख लगती है, उसे रातभर वह वैसे ही रहने देता है। वह दिन में 'हेड' से डरता है और रात को उसे अपनी शक्ल डराती है। इसलिए वह दीवार पर शीशा नहीं टांगता। सुबू-सुबू उसे कालिख धोनी पड़ती है। कारखाने का नियम है कि मुंह धोकर सामने के गेट से घुसो और मुंह काला करवाकर पीछे के गेट से खिसको।

मशीन काम करते-करते थककर सोने लगती है। धागे टूटने लगते हैं। पर थकी मशीनें ज्यादा शोर करती हैं। वे आदमी को झांसा देती हैं और आदमी उनको ठोक-पीटकर राह पर लाता है। हर हाल शोर बढ़ता है। बहरहाल आदमी अपने दिमाग की ईजाद मशीन के अधीन होकर जीना सीख रहा है। मशीन शनैः-शनैः उसे वहशी बनाने का ताना-बाना बुनती है। आदमी हजार हाल शोर से बचा चाहता है। पर बगैर शोर अब गुजारा भी नहीं होता।

और यह शोर ही है कि जिसके मारे दुनिया के सारे आदमी पगलाये जा रहे हैं। 'आज का दिन भी बरकतों वाला है। उसे अपने सवाल का जवाब मिलने लगा है।'

अब कोई चारा नहीं कि आदमी शोर से बच सके। शोर ही है जो आदमी की संवेदना को लील रहा है। भावना पर परत-दर-परत शोर का वरक जम गया है। अब आदमी को खयाल ही नहीं कि वह क्या बन रहा है।

प्रकृति जो शोर रचती है, वह आदमी को सुहाता है। सनसनाती हवा बहती है तो आदमी हुलसता है। नींद आने लगती है। झरना कलकल करता है तो संगीत-सुख की अनुभूति होती है। पत्तियों की मरमर के साथ आदमी गुन-गुनाने लगता है। रात के सन्नाटे को चीरकर पाखी का स्वर आता है तो इन्द्रिय-अनुभूति जागती है। भोर में चिड़िया चहकती है तो आदमी की प्रभाती चेतना

जागती है।

मगर जब सुबह का सायरन बजता है तो आदमी वहशी बन भागने लग जाता है। वह भी भाग रहा है। शोर की दिशा में भागना आदमी की मजबूरी हो गयी है।

आदमी सपनों का सुख भूल चुका है। नींद की घाटियों में कितनी प्यारी स्तब्धता है, रात का सन्नाटा कितना सुखद है। आदमी भूल गया है। जब शोर नहीं भी होता तो माथा सांय-सांय करता रहता है। कानों में सीटियां बजती रहती है। शोर का एहसास आदमी में रम गया है। शोर उसे मारे जा रहा है, पर शोर के बिना वह अब जिन्दा भी नहीं रह सकता। शोर ऐसा भूत हो गया है कि उसकी मौजूदगी में आदमी उससे डरता है और वह न हो तो अपने से डरने लगता है।

रास्तों पर चलता है तो कितने किस्म के वाहनों का शोर। भागम-भाग। जिंदगी की दौड़ में जिन्दगी को बचाये सावधानी से चलता है। शोर-शराबे के बीच कुचलकर मर जाये तो शिनाख्त भी नहीं हो पाती। अगल-बगल की खोलियों में वर्षों से रहने वाले एक-दूसरे को नहीं पहचानते। शोर-शराबे में वह अपनी ही पहचान खो चुका है।

गनीमत थी कि आज भी शाम को वह सही-सलामत अपनी खोली में आ गया। दुनिया पगलाने ही लगी थी कि न जाने रात कब आधी गल गयी। गुरखा आ गया। 'खबरदार, होशियार! जागते रहो!' कुत्ते भौंकने लगे। भगवान किसी को धमकाने नहीं आया। मगर उसे अचानक न जाने क्या हुआ, वह अपनी खोली से निकलकर भागने लगा। दनदनाते हुए सड़क पर आया। चौकीदार की लाठी छीनी और दौड़-दौड़कर चिल्लाने लगा।

'बेखबर आमवम सो जाओ। वरना पगला जाओगे। वहशी बन जाओगे।' उसे जेल भेज दिया गया तो सीखचे खड़खड़ाने लगा। शोर मचाने लगा तो चुप रहने पर मजबूर किया गया। मगर अब वह बगैर शोर के जी भी नहीं सकता।

मुकामो

घटा, उमस, अब बरसे, तब बरसे।

उडीक (प्रतीक्षा) में पर कब बरसे, करमू दिनभर का हारा थका। देही पसीने से तर-ब-तर, मारे प्यास के हलक सूखे जा रहा। पर मटकी में मात्र दसेक घूट पानी। लोटे में उंडेल एक ही सांस में सुटक गया तो भी गला भर भीग पाया।

उदास-उदास गोधूलि की वेला में वैसे भी मन डूबने लगता है और उस पर भी मिट्टी, पसीने के संयोग से चिक्कट हुई देह। करमू नहाने को बेताब। पर अपनी मटकी खाली, पानी है तो, दीवार के दूसरी ओर मुकामो के पलीडे (पानी घर) में। या घटा रूपी पनघट में। पर इन्तजार में बादल बरसता नहीं, और बाप रे! मुकामो से पानी मागना—मर्द का पानी उतारते उसे कित्ती देर लगती है। वह लुगाई होते भी मर्द पर सवाई पड़ती है। पूरी सतवती लुगाई। उसके चूल्हे की आग और पलीडे का पानी कभी नही खुटता। इसी कारण करमू भी काण मानता है।

वह अकेली लुगाई गृहस्थी बसाये है। और जो अकेली लुगाई घर बसाती है, सुना है वह नागफणी होती है, मर्द के तई ऐसी लुगाई से काण मानने में ही त्राण, नही तो कांटों में उलझ जाने का अंदेशा।

मुकामो चेहरे पर घूंघट डाले चलती है, इससे नागफणी के कांटे नजर नही आते। पर चाल में गुमान है उससे भान होता है, मानो सृष्टि का विधान उसी के चलाये चलता है, पर उसी के चलाये जगतो का न सही, गाव-बस्ती का ही विधान चले तो—सारे गाव की लुगइयां अपने खसमो से कुट्टी कर न्यारी गुवाड़ी बसा बैठे। पर न्यारी वे ही बैठ पायें जो सत को वाधी हों, जिनकी छातियां मुकामो के सामान ही सेड़ी की बनी हों। वह सोती है तो गंडासा सिरहाने धरकर सोती है। मक्खी की भनकार के साथ उठ खड़ी होती है और गंडासा बज उठता है, खट्ट, खटाक!

तब भी उस जानलेवा मौसम में पूलो को छानी काटे जा रही थी। गंडासे

की दरक खट्ट, खटाखट। चूड़ियों की छमक छमाछम छम। रौद्र के साथ शृंगार का अनोखा संयोग। कांच की चूड़ियां सुहागिन का सिंगार, सेड़ी का गंडासा सुरक्षा का आधार।

दोनों घरों के बीच में कच्ची दीवार, किंतु दुर्लंघ्य। करमू उस पार कभी झांककर भी नहीं देख सकता। मुकामो की ऐसी दहशत।

पर तब उमस के मारे मत मारी जा रही थी। दीवार के परले पार झांकते, पुकार ही तो लिया, 'मुकामो भाभी ए'''ओ।'

जवाब में गंडासा पत्थर पर पड़ते, झन्न बोला तो, करमू दोहरा होते झुक गया।

'ताका-झांका मत करे रे करमू देवर। सीधे से बोल, जे कुछ चाहिए तो!''

'पूछ रहा था, एक डोल (कनस्तर) पानी है तेरे पै भाभी?'

'पानी का कौन टोटा, मुकामो का पलीडा कभी खाली नहीं रहता।'

व्यवहार की खरी, स्वभाव से अनबूझ लुगाई। मीठी बोले तो मिश्री घोले। मिठास का मारा करमू धम्म से दीवार पर आ रहा। तभी आकाश में बिजली कड़की और साथ ही मुकामो गरजी—'अरे आये करमू, उतर दीवार से। तनिक मीठी क्या बोली बस, सीव की उलंघना को त्यार हो गया।'

'मैंने सोचा, डोल इधर से ही झाल लूं।'

'आज सीवें डोल झालने को मन हुआ तो कल और कुछ झालने को भी मन हो सकता है। चल, दरवाजे पै आ। देहरी पर डोल धरा मिलेगा।'

करमू पर घड़ो पानी गिर गया। लिसटते कदमों दरवाजे पर गया और डोल उठा लाया। पर अभी देही पर दो-चार लोटे पानी ही उडेल पाया था कि झमाझम पानी बरसने लगा। पलक झपकते मूसलाधार मेह पड़ने लगा। ओले आये तो ओसारे में जा रहा। पर यहां भी बौछारें और ओले पीछा करते रहे, तो हारकर कोठे में जा रहा। दीवार के दूसरी ओर मुकामो मद्धम स्वरों में गा रही थी।

'छप्पर छेका छिद रहा बडक्या बादा बास।
बेग पधारो सावरा, म्हाने थारी आस।।'

सांवरे के आसरे बैठी अकेली लुगाई।

करमू को बीड़ी की तलब हुई तो खयाल आया, माचिस तो टेंट में ही रह गयी थी। टेंट उलटकर निकाली तो रोगन उंगलियों से चिपककर रह गया। धोती पलटते, तलब और बढ़ गयी। गुप्प अंधेरे में चिमनी जलाना भी जरूरी था। अभी परसों ही छत के छाजन से सांप निकलकर सरसराते, घर के सामने वाले टीले में जा छिपा था। लाख खोजा पर लाठी के तले न आ पाया।

मुकामो ने तभी चेताया था—'चौमासे में झड़ी लगती है तो सांप निवास

(गर्माई) की खोज में कोठे मे आता है, अब चौकस रहियो।'

'पर निवास तो तेरे पं ज्यादा मिलेगो, अबकाले (इस दफा) जरूर तेरे कोठे की ओर रुख करेगा।'

सम्यक् उत्तर सुन मुकामो के झुरझुरी आने लगी, तो अंगड़ाई के बहाने उसे रोका। जिसे वह महा अनाड़ी समझती थी, वह तो बात के मर्म को समझता है। मर्द ऊपर से भले ही कितना ही बोदा नजर आये, भीतर से तो संजीदा होता ही है। मौका मिले तो वह भी फन उठा सकता है। एक बूढ़े फणिंदर ने फन उठाने की जुर्रत की थी तो मुकामो ने उसका फन कुचल दिया, पर उसके साथ ही घर भी छूट गया। पर यह फन उठाये तो घर'''घत्'''मुकामो ने जीभ काटी और बगैर बात बढ़ाये लौट गयी।

मुकामो जब ब्याही आई थी तो घर की भीतें तक हड़हड हंसी थी। गणगौर सी गोरी बहू को, घर के आंगन में जब पीढ़ा डालकर बैठाया गया तो अड़ोसनों-पड़ोसनों के हलक सूख गये थे। मगर इस खयाल से कि बहू को कहीं नजर न लग जाये, थूथके डालती ही रही थी। सास ने इतने तिनके तोड़े कि झाड़ू नि.शेष हो गया।

ससुर जब मुंह दिखाई का नेग देने आया तो सूरत पर नजर पड़ी कि सीरत दृष्टि में गडकर रह गयी। शनैः-शनैः आदमी सांप में रूपांतरित होने लगा। नजरों मे जहर गाढ़ा और गाढ़ा घुलता गया। केंचुली झड़ने लगी। बहू के गिर्द रेंगने लगा। यदा-कदा फन मारने की चेष्टा की पर कांट-कटीली नागफणी पर अटक गया फन हर बार पहले से ज्यादा लहू लुहान होता गया। और अन्त में एक दिन भरी पंचायत में धूल चाट शांत ही गया।

बूढ़ा इतना जब्बर था कि ढलती उम्र मे भी घरवाली की देही तोड़-तोड़ छोड़ता था। बेटा धरमू भी गबरू जवान पर बाप की दहशत तले बिलकुल बौना। नामर्दी की हद तक उससे डरता। मुकामो की एक आंख मे आंसू झड़ते तो दूसरी मे अंगारे धधकते। दब्बू धरमू न आंसू पोंछ पाने की ताब ला पाया और न अंगारों की दहकन की आंच सह पाया। बस, घर छोड़ खेतों मे जा पड़ रहा। होश में होता तो दहकन से जलता रहता। दारू मे गर्क होता तो अतल में धंसने लगता।

मुकामो के सर मे मर्द का साया उठा तो एक दिन उसकी जूती ससुर के सर पर सवार हो गयी। बूढा अभी संभले कि पिंडारी और जब्बरा भौंकते आ झपटे। फाड़ ही खाते। किन्तु मुकामो ने रोक दिया। उसने अपने पीहर की संदकूची और एक गंडासा बगल मे दबाया और सीधी नोहरे (पशु बांधने का मकान) में आयी। पिंडारी और जब्बरा भी पूंछ उठायें उसके पीछे लगे आये। उसने अपने पीहर मे मिली सींगमारनी भैंस और कटखनी गाय को छोड़, शेष पशुओ

की रस्सी खोल दी और नोहरे पर काबिज हो गयी।

अब उसे जो भी कोई समझाने-बुझाने या डराने-धमकाने आता, पहले उसका साबिका सोगमारनी और कटखनी से पड़ता और फिर पिहारी और जव्वरा से। इन बाधाओं को पार कर यदि कोई भीतर तक पहुंच भी जाता तो पक्की सेड़ी का गंडासा तन जाता।

जानवर तो करमू से हिले थे, गडासा भी शायद न उठ पाता, पर मुकामो की आण करमू के आड़े थी। पर सांप और अंधेरे के भय से भी ज्यादा बीड़ी की तलब उसे परेशान किये जा रही थी। नशे की तलब ही ऐसी होती है कि जेब खाली होने के एहसास पर ज्यादा सालती है।

अब फिर पुकारे तो मुकामो बिफर जाये। बाहर गली में छाती-डूब पानी। मुकामो के दरवाजे तक पहुच पाना कठिन। तभी उसे एक तरकीब सूझी। सिल्लपट्टी पर कनस्तर दे मारा। टीन का कनस्तर टरर्नाट करता लुढ़क चला। उसका अभीष्ट सिद्ध हो गया।

'क्या हो रहा रे, उधर?'

'कुछ नहीं भाभी, इधर सिल्लपट्टी पर कहीं माचिस रह गयी थी, उसी को खोज रैया था।'

लुकाछिपी में मर्द भी कम नहीं। पर यह लुकाछिपी, बहानेबाजी कब तक, बयू। एक नाजोगते मर्द के नाते अंधेरा ढोये जाना। यह मर्यादा किसने बांधी? पर प्रकट में इत्ता भर बोल पायी—'तेरी अकल मारी गयी रे करमू। ऐसे मेह और अंधेरे में तिल्लोपेटी मिलेगी भला, और मिलेगी भी तो साफ भीगी। ले, मेरे पास है।'

'पौर पै आऊ?'

'मुकामो बखत-समो समझती है। ले, मैं फेंकू, तू गूप।'

करमू गूप न पाया। माचिस पत्थर पर गिरी तो तिनके बिखर गये। कुछ बह गये कुछ बीन पाया।

दीवार के परली पार से झीनी हंसी के साथ—'अब क्या कर रैया रे देवर।'

'तूने जो तिनके बिखेरे, उन्हें बीन रैया हू और सोच रैया हूं कि लोग तिनके बीन-बीनकर कैसे घर बसा लेते है?'

उधर से कोई उत्तर उछला कि नहीं, सनसनाती हवा मे कुछ पता न चल पाया। तभी बिजली सी कौधी, चिमनी जगाई। लगा मेह का जोर कुछ घटा है। पर हवा पूरी बदफैलियों पर।

करमू को माचिस लौटाने का ख्याल आया। पुकारा—'भाभी ऐ, माचिस द?'

'नहीं, तू रख, मेरे पै दूजी है। बिजरी का कौन भरोसा, कब जवाब दे जाये।'

करमू मांची पर औंधा गया। दूसरी ओर से ताजा सिकती मादक रोटियों की मादल महक आ रही थी। बाजरे की रोटियां बनाते चूड़ियों की तालबद्ध लय। पारो की भी चूड़ियां खनकती थी, पर आवाज कुछ ठस्सी ठस्सी उठती थी। वह रोटियां बनाती, करमू बीड़ी पीते उसे घूरता रहता। पारो का सांवला चेहरा आंच की धधकान में आभासित कम होता, तावई वर्ण होकर धुंधलाता ज्यादा, किन्तु ऐसे मौके पर मुकामो का चेहरा सिंदूरी आभा लिये दमकता सा नजर आने लगता है। उसने कई दफा आड़ में से देखा है, ऐसे मे उसका गाना भी गजब ढाता है—

'चूण लेण रे चाव में, चिड़िया खोले चोंच।
भीतर सारो भूजवै, चूल्हा अकरी आंच॥
अन्न जल तक भावै नही, हियो रहे बेचैन।
कवौ गले नही उतरे, कडवो जाण कुनैन॥'

पर करमू को तो कसकर भूख लगी थी। पेट मे निवाला डालने को बेताब, छीके पर से बासी रोटियां और सालन उतार मुह में निवाला रखते जोर से बोला—'भाभी जब भूख ही बन्द है तो ये गर्म रोटियां किसके लिए बन रही है?'

मुकामो को जैसे किसी ने सहसा पत्थर मार दिया हो, औरत गर्म रोटियां किसके लिये बनाती है? वह जानते हुए भी······!

तभी स्वर फिर उसके कानों से टकराये—'अगर मेह न होता तो तेरे से थोड़ी गर्म सब्जी लेता। बासी सालन के साथ तो ठंडी रोटी हलक से नही उतर पाती।'

'यह करमू! क्या हो गया है, इसे आज। जो पत्थर पै पत्थर मारे जा रहा है। वह फफकने को हुई, पर आंचल को मुह में ठूंस लिया। मर्द बासी रोटी खाये और लुगाई···छि किसका मर्द, कौन लुगाई। पराया मर्द जो करे उसकी करणी। बादल की नमी छटी नही, उपल बूंद बने नही। तड़तड कर फिर ओले गिरने लगे। दुधारी हवा चलने लगी।

तभी एक धमक। साथ ही मुकामो की बाखल मे एक चमक। बिजली की चमक और टार्च के प्रकाश का अंतर वह जानता था। वह समझ गया, मुकामो के औसारे का छाजन धसकने लगा है। कोठा टपकने लगा है। फिर भी पक्का इतमीनान करने के लिहाज से आवाज लगाई—'भाभी ए, क्या छत टपकने लगी है?'

'हां रे, कुवेला देख, उसकी छाती भी दरकने लगी है, कुजात जो ठहरी।'

'आऊं, मिट्टी डाल दू?'

'अब मिट्टी से काम नही चलना रे? जो दरक चुकी हो वह तो ढहकर ही रहेगी।'

'फिर भी जाबता तो कर देखूं, क्या हर्ज है?'

'नहीं ओ, आज तू कहे छत का जाबता कर दूं, कल कहेगा भाभी तुझे जाबते की जरूरत है। नहीं रे, मुकामो तो बेजाबता, खुले में बैठकर ही समो बिता देगी।'

बार-बार झटका देती है, मुकामो। न जाने कैसी है यह लुगाई। एक गुलझन खोलती है, दस गाठें डाल जाती है। कभी-कभी करमू का मन करता, किसी दिन एकसाथ ही सारी गुलझनें खोल धरे। पर उसने देखा है। पेड़ पर पहुंच पाने की ललक हर बेल में होती है, पर एक शाख से छूट जाये तो दूसरे तने तक पहुंचते-पहुंचते नाल की बढ़त गुलझनें खाकर रुक जाती है। चटक धूप मिले तो उसे भी आगे बढ़त मिले। कोई खींचकर सीधी करने लगे तो चटककर टूट जाये। पर कोरा टूट जाने का ही अंदेशा नहीं, आण और एहसान भी तो आड़े आते हैं।

पारो न बच पायी तो उसकी किस्मत। मुकामो ने तो अपने तईं कोई कोताही न की थी। उस रात भी ऐसा ही अंधा मेंह पड़ा था। करमू खेत पर था। पारो अकेली अपने कोठे में सो रही थी। अचानक कोठे की छत दरकी। धमक सुन मुकामो सर पर मेंह झेलती दीवार फाद आयी। जुलमढाऊ तूफान में कस्सी-फावड़ा ले, मनों मिट्टी अकेर डाली। झकझोरते मेंह और हवा। अकेली लुगाई। पर आखिर पारो की देही खोज ही निकली। सूरज-उगाली के साथ करमू घर आया तो पायी मिट्टी में मिट्टी बनी पारो की लाश।

पारो स्वयं ठंडी औरत थी, इसीलिए उसकी याद भी शीघ्र ठंडी पड़ गयी। पर मुकामो धधकती आग, जिसे ना पल्लू से बांध पा रहा न झाड़ पा रहा है। बादल में घिरा सूरज अपनी आंच से जलता तो जाता है, पर पूरी धूप नहीं छिटका पाता। ऊपर से मुकामो अपने हर काम में जवामर्दी का एहसास दिये जाती है।

पर करमू क्या जाने कि जब प्राकृतिक जवामर्दी का एहसास अधिक जागरूक होता है, तभी लुगाई मुरझाने लगती है। हां, यदि उस समय उसे चटक धूप मिले तो मुरझाना रुक जाता है और वह लपककर पास के पेड़ से गुंथ जाती है।

दूसरी ओर ठक ठका ठक।

'अब क्या हो रहा है भाभी?'

'कोठा निगोड़ा चौसारे टपकने लगा है। धसकते औसारे में बौछारें आ रही है। इसी से कील ठोक पर्दा टांक रही हूं। इसी की ओट में बैठ, रात काट दूंगी।'

नारी की विडंबना का असहाय स्वर। करमू सीधा समझे, सीधा उत्तर दे।

'इधर क्यों नहीं आ जाती?'

'भीत की उलंघना करना सोरा (आसान) नहीं है रे।'

'ये भीतें किसने खड़ी की भाभी?'

'अब मैं कोई कोकला-शास्त्र तो पढी नही कि जवाब दूं। बस, इत्ता जानती हूं कि बनाने वाले कभी बना गये, हमें तो अब इनकी मर्यादा बनाये रखते जीना है।'

'जो मर्यादाएं आदमी का दम घोटें, उनकी रक्षा क्यू? आओ, लो, मैं हाथ पकड़ ऊंचा उठा लूं।'

'जो हाथ पकड़ लाया वही नाजोगता निकला। नामर्द ने भरी पंचायत निवा (झुका) दिया। सत्त की साख भी न भर सका तो तू अब क्या ऊचायेगा रे। मुकामो तो अपनी निवान (ढलान) में ही बैठ जिनगानी गुजार देगी। पर हिम्मतहार न होगी।'

सच्च, मुकामो की हिम्मत और जुर्रत का लोहा सारा गांव मानता था। तभी तो पंचायत ने माना कि अपनी पत्त रखने के लिए लुगाई जोई करे वही सतताई।

ससुर जूतिया खाकर कितना चुटिला न हुआ था, उससे कहीं ज्यादा घायल वह तब हुआ जब मुकामो करमू के परिवार के साथ घुल-मिलकर रहने लगी। वैसे तो वह और करमू का बाप जुड़वां भाई थे। मां के एक स्तन से वह दूध पीता और दूसरे से भाई। पर बड़े हुए तो पहले मन में गाठें पड़ी, फिर सींग उलझ गये। दोनों नित्य सोने से पहले एक-दूसरे से निजात पाने के उपाय सोचने लगे। एक दिन संदिग्ध अवस्था में करमू के बाप की लाश मिली तो धरमू का बाप लोक दिखावे को भी न रोया।

करमू की मा और पारो जब तक जीवित रही, मुकामो ने सबको ठेंगे पर रखा। पर बाद में उसके मन में भी खुटका रहने लगा। लुगाई की जात छुईमुई की जात। किसी ने उंगली भर उठायी कि मुरझायी, इधर अकेली जवान-जोध लुगाई और मात्र भिर-उठ भीत के दूसरी ओर गबरू विधुर। लोग तो पूछने भी लगे थे कि करमू दूसरा विवाह क्यों नही कर लेता?

अब वह ब्याह नहीं करता तो पराये मर्द पर कौन जोर? वह तो बस, इतना ही कर सकती है कि छत की मुडेर और भीत ऊंची उठा ले। इसके लिए वह जोहड़ की कीच से ईंटें भी थापने लगी थी।

कि तभी ससुर ने पंचायत बुलायी। ससुर, सास और पति एक ओर बैठे। दूसरी ओर दुलाई में दुबकी बहू खड़ी।

'धरमू की बहू। तेरे सिर अभियोग है। तेरे ससुर की शिकायत है कि तू बदचलन है।' सरपंच बोला।

मुकामो चुप।

'बोलती क्यो नही बहू? सर लगा अभियोग काटने की सबको छूट।'

मुकामो फिर भी कुछ न बोली। बस, पैर के अंगूठे से मिट्टी उकेर, घूंघट से ढंके माथे पर लगायी तो अनुभवी बूढ़े सरपंच ने आशय समझ, मुकामो को

एक तिनका थमाया और बोला—'बड़ों की काण मान तू बोल नहीं रही, तिनके की ओट से बोल, यह पचायत की मर्यादा।'

'गांव राम है, पंच परमेश्वर।' मर्यादा की ओट से मुकामो बोली—'तो मैं दोनों की दुहाई दे पूछती हूं कि मेरे ससुर के चलित्तर (चरित्र) को मैं ज्यादा जानती हूं या गांव राम ?'

मुकामो ने पत्थर सा भारी प्रश्न रख दिया। पंचायत मौन। बूढ़ों के हुक्कों की निगालियों से उठता धुआ ठहर सा गया। विवाह के समय थूकके डालने वाली बुढ़िया जो थोड़ी देर पहले हिकारत से थू-थू कर रही थी, उनकी जुबान हलक तले चली गयी। पर जवान बहुओं में सुगबुगाहट होने लगी। जवान लड़के फैसला सुनने के लिए उतावला हो उठे। तभी सरपंच ने चुप्पी तोड़ी—'चौधरी पंचायत तुम्हारे बेटे का बयान चाहती है।'

बेटा करम का मारा, धरम से हारा। मा अंजली बांधे बैठी। बाप की नजर में जहर। पत्नी की पत्त रखे तो कुल की लाज जाये। न रखे तो भी कुल की मर्यादा पर तो कालिख ही लगे। मन से हारा। तन से थका। कुछ न बोल, कमर झुकाये एक ओर चल दिया, चौधरी मारने को दौड़ा तो पंचायत ने रोक दिया।

'मुकामो नोहर मे रहेगी।'

पचायत तो फैसला सुनाकर उठ गयी, पर कई दिनों तक बूढ़े पीपल का पात-पात बोलता रहा, शाख-शाख चौधरी का भेद खोलती रही, लोग कहें, पीपल पर ग्राम देवता का वासा (बगैरा), जो झूठ कहे, वह कोढ़ी हो जाये।

गांव के जोहड़ किनारे पीपल। जोहड़ का घाट बोला— 'मुकामो के ससुर के काम खोटे।' जात-कुजात मानस बोला—'मुकामो सत्त की साख।' गाव ने लीक निकाली।

और मुकामो ने अपने बाप से दहेज मे मिली पाच बीघा जमीन के चौगिर्द लकीर निकाली तो उसकी उलंघना कोई न कर पाया।

मुकामो लकीर की बांधी चलती रही। धरमू धसान में धंसता गया। खेत पर खटिया में पड़ा पीता रहा और एक दिन मर गया, तो उस नाजोगते मानस के लिए, मुकामो ना रोयी, ना चूड़ियां फोड़ीं, ज्यू की त्यूं महेजकर अपनी संदूकची में धर दी।

चूड़िया तो तब न फोड़ती जबकि वह बोदा मानस बाप की दहशत से निकलता। उसके पास आता। वह इनकार करती तो दो झापड़ मार, उठाकर घर ले जाता, पौरुष का पर्याय ही तो पति है।

मेह बरता रहा। मुकामो का कोठा ढहता रहा। करमू मे कसाव भरता रहा।

ओसारे का छाजन पूरी तरह उड गया। दीवारें ढह गयीं, भीगती, धूजती अपनी खुली बाखल मे बैठ रही। न हटी सो न हटी।

तिरिया-हठ मर्द को सुहाता तो है, पर एक सीमा तक। करमू के भीतर का बब्बर जागा। पौरुष तन गया। धुंधलका खुलने लगा।

'दीवार की उलघना नही करती तो उस दिन क्यो की, जब पारो दब गयी थी। संकट की घडियां सब बराबर।'

आसमान मे बिजली कड़की। करमू के दांत किटकिटाये। हथेली का ढासना दे, दीवार पर चढ़ने लगा, तो मुंडेर ढह गयी। ढही दीवार पार कर उस ओर पहुच गया। पहले भीगते जानवरों की सांकलें खोल दीवार के टूटे हिस्से से छलांग लगवा दी, फिर टिटहरी सी धूजती मुकामो को उठाने की चेष्टा की तो वह काट खाने को उद्यत हुई। तड़तड़ एक-दो चार झापड़। गठरी सी दबोच दीवार के इस पार अपने कोठे मे धरी चारपाई पर ला पटका।

'चुपचाप भीगा लहंगा और लोगड़ी उतार।' और फिर अपना तहमद और चद्दर उसके पास रख, बाहर से कुंडी चढा, खुद ओसारे में माची पर आ बैठा।

थोडी देर मे मुकामो किवाडो को भडभड़ाती बोली—'कुडी खोल। मेरा दम घुटे जा रैया है।'

'कपडे बदल लिये?'

'हां, तैंने जो पोशाक दी, वह लपेट ली।'

करमू ने दरवाजा खोल दिया तो विचित्र धज मे अपने को नंगा समझ वह दौड़ चली। हवा का झोंका, चद्दर उड़ी। उरोज निरावरण। वैसे में ही करमू ने लपक-कर उसकी चोटी थाम ली और दो झापड और रसीद कर दिये। मुकामो ढह गयी। करमू ने सहारा देकर उठाया तो पाया कि देही ज्वर से जली जा रही है। उसने आहिस्ता से मांची पर लिटा दिया और खुद चाय बनाने के लिए चूल्हा फूंकने लगा। पर चूल्हे ने आंच न पकड़ी। वह फू-फू करता रहा। मुकामो पडी देखती रही। चूल्हा भले ही न जले, पर उसके भीतर का नारीत्व आंच खाने लगा।

यह एक मर्द है। आण भी रखता है। वक्त-मौके त्राण भी देता है। पर ज्यादा तकरार-हुज्जत करने पर ताडना भी देता है, मार भी बैठता है। अब उसे यही पछतावा था कि ऐसा जोर मेंह पहले क्यों नही बरसा? क्यो नही उसका कोठा पहले धसका।

पतीली चूल्हे पर धरी। पर आग थी कि कभी जलती, कभी बुझती, जैसे उसे मुंह चिढ़ाये जा रही थी, करमू को लगा जैसे ससुरी आग ने भी मुकामो का स्वभाव पाया है।

तभी मुकामो खिलखिलाती बोली—'आज यह तेरे जलाये न जलेगी।'

'पर क्यूं न जलेगी? रोज तो जलती है।'

'तू नहीं जानता रे चूल्हा मर्द जात। तब लुगाई नजदीक नहीं होती थी, आज लुगाई को देख, उसी के हाथ आंच पाना चाहता है।'

और यह कहते वह करमू के बगल में आ बैठी। उसकी एक फूंक पाते ही चूल्हा हड़हड़ जल उठा। पतीली में पानी खदबदाने लगा।

करमू हैरान। भरमेह में वह रिरियाता रहा तो मुकामो बल खाती रही। अब झाड़ खाकर हग रही है। आग और लुगाई की गत न्यारी। इनको ताबे लेने के दांव उलटे।

वह उठकर माची पर जाने लगा तो मुकामो ने हाथ के ओसाले से रोक दिया।

चाय तैयार हो गयी।

दोनों पास बैठ पीने लगे।

'कोठे के बीच की दीवार भी धसक गयी लगती है रे।'

'नहीं, अभी दरारें भर पड़ी हैं, पर भोर में जब धूप चिटकेगी, हवा जोर से चलेगी तो सारी ढह पड़ेगी।'

'क्यों?'

'यही परकीरती (प्रकृति) का नियम है।'

'और लीक कब मिटती है?'

'रातभर के मेह-तूफान में तो मेड़ें भी टूट चुकी होंगी, फिर बेचारी लीक की कौन बिसात कि बनी रहे।'

बादल पश्चिम में ढल गये। पूर्व में उजास फूटने लगा। मुकामो उठ चली तो करमू ने टोका—'जूड़ी-बुखार में किधर चली?'

'अपने घर।'

'वह तो ढह चुका।'

'फिर बना लूंगी।''

'पर तेरी ईंटें भी बह गयी होंगी।'

मुकामो चुप। पर रुकी नहीं तो करमू ने चेताया—'जाना ही है तो अपने जनाना कपड़ों में तो जा।'

'मर्द राह न दिखाये तो औरत गार में गिर जाये। मुकामो ने महसूसा। जीभ काटती कोठे में जा बदल आयी। करमू ने इस दफा राह न रोकी। जानवरों ने उसे जाते देखा, उस पर एक उड़ती नजर डाली पर उसका साथ न दिया।

'निगोड़े ये भी मर्द की गंध में रस-बस गये। यह मर्द के जिस्म की गंध हरामखोर बड़ी कसैली जो होती है।'

अभी वह दो कदम ही चली थी कि सीगमारनी डिडकारने लगी। कटखनी रंभाने लगी। दोनो ने पूंछ उठाई और दौड़कर दोनों घरों के बीच की दीवार के पास जा पहुंची। मार सीग, मार सीग। दीवार ढहाने लगी। पिंडारी और जब्बरा भी भों-भों करते आ पहुंचे। पंजो से मिट्टी उकेर दूर फेंकने लगे।

'तो ये भी यही चाहते है। जानवरो के अंतर की सूझ।' मुकामो ठिठकी, फिर जल्दी-जल्दी मे दीवार की ओर बढ़ी। फिर ठिठक गयी, इधर से जाना नही, यह तो आने का रास्ता है। अतः करमू का दरवाजा पार कर सीधे रास्ते अपने घर के अहाते मे घुसी।

थोड़ी देर पहले घर में अथाह पानी भरा था, किंतु अब काफी बह चुका था, जो बच रहा, वह बहे जा रहा था। कोठे की तीन ओर की दीवारें पूरी तरह ढह चुकी थी। जिस दीवार मे ताख थी वह करमू की भीत के सहारे खड़ी थी। 'हूं।' तो यह न गिरी, न गिरेगी, जब तक कि करमू का कोठा भी न गिर जाये और यह भी हो सकता है इसी के सहारे करमू का कोठा बच रहा हो। बेजुबान दीवार न बोली, न मुकामो के लिए बोलने की राह बच रही।

उसने ताख मे रखी संदूकची और गंडासा उठाया और जानवरों द्वारा ढहाई जाती दीवार मे कुछ हटकर बैठ गयी। वह इस कदर हांफ रही थी जैसे भटकाव भरी मंजिल तय कर अब चिर विश्राम चाहती हो।

पूर्व दिशा से बादल पूरी तरह छिटक गये, पश्चिम क्षितिज पर बिजली अंतिम बार कौंधकर विलुप्त हो गयी और उजली धूप चिटक गयी।

मुकामो ने पुकारा—'करमू ! ओ···करमू।'

करमू ढहती दीवार के मलवे पर आ खड़ा हुआ। मुकामो भी उठी। चटक धूप में बेल की गुलझन खुल चुकी थी।

'तैने रात मुझे मारा रे···।'

'हां, अगर अपने आपको मारने की चेष्टा करती रही तो अभी और मारूंगा।'

'अब मेरा कौन है रे, जानवरों के सहारे बैठी थी, पर वे तो बदकार निकले। देख, कैसे ताबड-तोड़ दीवार ढहाये जा रहे हैं। अब मैं किस ओट मे बैठूंगी रे।'

मुकामो का दर्प विगलित होने की हद पर आकर रुक गया। दर्प का एक टुकड़ा अभी संजोये रखा, अतः स्वर में बदलाव आ गया। 'पर देख रे, अभी इस गंडासे की धार चोखी बनी है, मोथरी नही हुई। भले मुकामो की धार मोथरी पड़ गयी हो। जे कभी नाहक हाथ उठाया तो यह सर पर झूल जायेगा। पर दिखता तो ऐसा नही रे, जो नाहक जोरू जात पै हाथ उठाये। नामर्द की अव्वल निशानी ये कि औरत को पाव की जूती समझे और औकात समझाने के लिए मारे। पर

जब्बर से साबिका पड़े तो पीठ दिखा जाये।'

वह जरा रुकी, फिर दबकार भरी आवाज में बोली—'अब खड़ा मेरा मुंह क्या देख रैया है। कस्सी ला। दीवार ढहा, बेचारे जानवरों की मदद कर। यह जमीन हमवार कर दे। लकीर मिटा दे।'

करमू जब तक जमीन हमवार करता रहा, मुकामो संदूकची से निकाल-निकाल, धरमू की सुहाग की लाल हिंगलू की चूड़ियों को एक-एक कर गंडासे से तोड़ती रही।

त्रिकाल

नेहरा बाबा की नाली से निकलकर मेढक झाड़ी में जा घुसा और वहां पर कुण्डली मारकर दुबक बैठे सांप ने उसे निगल लिया। बाबा के साथ-साथ लगड़ शेरा और कसूम्बो ने भी साप को जुगाली लेते देखा तो लंगड़ ने लाठी संभाली और अपनी एक असल टांग पर दूसरी लकड़ी की टाग का सन्तुलन साधते मेंढक अदाज मे फुदक चाल चलते झाड़ी के पास आकर उस पर दे मार वार करने लगा। धूल उडती रही। लाठी टूट गयी पर सांप न मिला और वह लीक पीटते हार गया।

कसूम्बो को लहगे को कछड़ के अन्दाज मे समेटते थोड़ी देर लगी। फिर कुदाली साधे वह भी आ गयी। झाड़ी का पूरा थला खोद डाला पर सांप था कि फिर भी न मिला।

सांप न सही, यदि उसकी बाम्बी भी मिल जाती तो कसूम्बो उसमें हाथ डाल, पूंछ पकड़, सांप को बाहर घसीट लाती और हवा मे घुमाकर धरती पर तड़ से दे मारती। दोशाख लकड़ी से उसका फन दबाती और मुह खोलकर विष की थैली तोड डालती।

यह साप-सधाई की विद्या उसने कालबेलियों के बूढ़े गुरु सिद्ध सारंगनाथ से सीखी थी। सिद्ध उस पर मेहरबान था क्योंकि वह गंवई छोरी वनजीवी सपेरो के छोरो पर जबर पडती थी। एवड़ को अड़ावे (गैर कृषि भूमि) मे छोड़कर यह कालबेलियो के डेरो की ओर चली आती और उनके छोरो के साथ दाव बदती।

वह जल्दी ही गुरु-कृपा से कई किस्म की जड़ी-बूटियों का प्रयोग करना भी सीख जाती कि तभी गाव का धन्ना पण्डित बीच में आ गया और उसकी सिखलाई रुक गई।

नेहरा बाबा के साथ धन्ना की तीन-छः चलती थी। सात गांव सतरह ढाणियो में धन्ना की पुरोहिताई थी। पर उसकी पंचाग मे पढ़ी से ज्यादा बाबा द्वारा दोहा-साखियो मे कही को उसके यजमान सच्च मानने लगे तो पाधा बाबा

से वैर खाने लगा।

नेहरा ब्राह्मण नहीं था। पुरोहिताई उसका पेशा भी न था। बारहठ बाबा को उसने बचपने में मगा-गुरु माना था और उनके द्वारा रटाये गये भड्डरी के कुछ दोहे रटे थे। दोहों में मेह-लक्षण थे और आषाढ़ी पूनम के दिन पेड़ की शाख पर झंडी बांधकर, हवा का रुख पहचानकर आगत अकाल, दुकाल तथा सुकाल का भविष्यत बताने का गुर था।

पर मरुभूमि में तो जो कोई मेंह-झड़ी की आगत बतलाये वही सौ सयानों का एक सयाना। पर इधर प्रकृति न जाने क्यों बावली हो गयी कि छिनालपने पर उतर आई। झंडी जो बतलाती, प्रकृति के लक्षण उससे उलट प्रकट होने लगे।

कसुम्बो ने बाबा को शकुन शोधने से बरजा-बरका तो बाबा का भी मन उचाट हो गया।

कसुम्बो को वह सयानी मानता था। केवल इसलिए नहीं कि उसने गांव की पाठशाला से आठवीं तक की पढ़ाई की थी, बल्कि शहर से घणी सारी पोथियां पढ़कर आये पन्ना के बेटे सुन्दर ने भी उसे काफी सिखाया था। पुराने तने जहां थे, वहीं बने रहे पर उन पर फूट आई शाखाएं एक-दूसरे के काफी नजदीक आ गयी थी।

कसुम्बो का कहा बाबा को ठीक लगा।

'बाबा तिरिया-चरित्र। प्रकृति के लक्षण और तीतर पांखी बादली के लखन किसने पहचाने है। इनकी फंट में फसकर भर्तृहरि भोगी से जोगी और फिर भटक-टिटैया हो गया। मधे तो जोग, ना मधे तो जोगीड़ा। गुरु-बाचा का भी क्या। गुरु का बाचा कभी झूठा, कभी साचा।' बाबा ने कंठी उतार धरी। पर मन में भटकाव बना रहा। और उधर गंवई समाज था कि जिसे एक बार सयाना मान लिया तो वह चिर सयाना ही बन गया।

नेहरा बाबा अकाल, दुकाल तो कितने ही देखे था, पर त्रिकाल भी यह उसकी जिन्दगी में सातवां गहराने लगा था। गांव में डिबड़ की करी जोहड़ का पानी सूख गया। टिबुक टिटहरियां उड़ गयीं। मोर-मोरनियां पिछवाही में चले गये। हिरण-हिरणियां दाब दे गये। बिना पनिहारिनों के जोहड़ की पाल भांय-भांय करती रही।

धन्ना पण्डित और गांव के सेठ रोकड़ीलाल की गर्दनें जुड़ गयी। आधी (सारी) रात खुसर-फुसर चलने लगी। अकाल-दुकाल में दोनों की दाल खूब गलती थी। कितने ढोर कहां मरे, पाधा की टोह पक्की होती। वह रिन्धरोही में जाकर टोह लेने लगा कि इसी टोह में किसी दिन कालबेलियों के डेरों से उठते कोलाहल ने उसके पांव रोक दिये। एक छोरी अकेली कालबेलियों के कई छोरों से इज्जत

कर रही थी। आवाज पहचानी। स्वर कसुम्बो का ही तो था।

'अरे, ये लोसांप दोशाखी तले आ ही तो गया।' सीधा पहुंचा नेहरा के दरवाजे पर! नेहरा पगड़ी बांधकर कहीं जाने को था कि ब्रह्म-पिशाच ने राह रोक ली और गुड़ लिपटी कहने लगा।

' सुन नेहरा, एक पण्डित दूसरे सयाने का विरोधी तो हो सकता है पर वैरी नहीं। और तेरा-मेरा तो न रोटी का सीर न बेटी का व्यवहार। फिर भी तेरी बेटी सो मेरी कन्या। इसी से भले वक्त चेताने आया हूं कि अब तेरी बेटी की उमर और लक्षण दोनों ही यह बतलाते हैं कि उसे पिटारी मे बन्द करके रख।

' मैंने देखा तो धक्क रह गया। वह अपनी कसुम्बो ही तो थी जो कालबेलियों के छोरों से गुथमगुथा हो रही थी। छोरी को पन्दरहवीं बरसी चढ़ चुकी है, अब संभाल। पिटारी में डाल। वरना किसी दिन तेरी पगड़ी गुवाड़ में रुलती नजर आयेगी।'

नेहरा बमना की विडाल-चाल मे फसकर पगड़ी उसके पांवों में धरने को हुआ कि तभी कसुम्बो आ पहुंची। वह चुगल का व्याख्यान सुन चुकी थी। अतः नाक मे पड़े लौंग को मरोड़ती, धचाक से पाव पटकती बोली।

'जा रे बमना, मुझे पिटारी में बन्द करवाने से पहले अपने घर जाकर अपनी बेटी को सन्दूक मे बन्द करके, ताली को कहीं धरकर भूल जा। छाज बोले सो बोले, छलनी किस मुंह से बोल रही है! क्या तेरे से छानी (छिपा) है कि तेरी जवान धीगड़ी बानिये के छोरे के साथ किस्सा तोता-मैना चला रही है। कान की कीट काढ़ के सुन ले। जो मेरे बाबा की पगड़ी पर हाथ डालने की नियत रखी तो तेरा भारी पगड़ साल से पहले गली-गुवाड़ रुलता नजर आयेगा।'

छोरी की एक दबक पर ही ब्रम्ना के हाथ लगी बटेर उड़ गयी। पगड़ को हाथ से दबाये यह जा, वह जा। पर सीधे स्वभाव नेहरा को चैन कहा। कसुम्बो की नजर बचाकर, गोधूली वेला मे भूरी भैंस का हण्डिया भर घी पाधा की भेंट कर ही तो आया।

भूरी का घी खाकर पाधा की जीभ और भी चिकना गयी और कई दिनों तक चब्बरबाजी करती रही। पर शीघ्र ही सांपो की लकीरें आड़े आ गयी और उसकी लब्बारबाजी धोरा-धूल मे दब गयी।

सांपों की लकीर गावभर में फैल गयी। झाड़-बाड़ खंगारे गये। पर सांपो को तो जैसे पाताल निगल रहा था और पीछे छोड़े जा रहा था, चूहों, मेंढकों की कुतरी-खाई ठठरियां।

गाव-ढाणियों में दहशत फैल गयी। सांपों के देवता गोगा का प्रकोप है—डिमक-डिमिक-डरूम् डरूम् डेरू (मृदग) गूंजने लगे। बाबा गोरखनाथ की जात जाओ। झमझमा झमाक् झमाक्। चिमटे खड़के।

मरु-प्रदेश का आदमी साप से ज्यादा नहीं डरता। अनहोनी से डरता है। डग-डग काला। पग-पग पीला। मेंढक को निगलकर धरती का जीव अकसर धरती में समा जाता है। कोई अनहोनी नहीं। पर इधर हो रही है।

नेहरा के घर से निकले मेंढकों को निगलकर धरती में समा जाने वाला काल भुजंग जब किसी जमींदोज बाम्बी से निकलकर नीम पर चढ़ने लगता है तो नेहरा भी हिल जाता है।

अनहोनी तो नहीं, पर जो हो गुजरा है, वही फिर होगा। काला-भुजंग के रूप में त्रिकाल पिशाच ने दृष्टान्त दिया है।

फन उठाये, आटे डालते फुत्कारते, ऊपर चढ़ते सांप को कसूम्बो ने देखा तो तानकर ढेला मारने को हुई। लंगड़ की भी तन्द्रा टूटी। लाठी ऊंचाई।

नेहरा हुर्राया—'नहीं, नहीं कालीन्दर बिफर जाये तो साखात (साक्षात्) महादेव के ही ताबे आयें। ओर कोई चुटियाये तो चूस चढ़ाकर देही तोड़ डाले। नाग मर जाये तो नागिन सारे परिवार को डंस-डंस मार डाले। सूंघ-सूंघकर खोजे।'

बाबा ने नागिन के बदला लेऊ स्वभाव का बखान किया तो कसूम्बो सोचने लगी—'मानुखी लुगाई ऐसी क्यों नहीं होती?'

कसूम्बो सोचती रही। सांप सरसराता रहा। दिनभर का तपा-तपाया सूरज का गोला एक छम् के साथ आकाशी गंगा में डूब गया। कहीं से चांद आकर अपनी नोकों से आकाश की छाती गोंडने लगा। ऊपर नीम की पात-पाती भरी शाखों पर डैनों के नीचे चूजों को समोये पड़ी पांखिनियां सांप की निरन्तर फूत्कार से डरकर चूजों को प्रकृति के आसरे छोड़ उड़ गयीं।

पर कौओं की ढीठ जमात ने सहज में शाखों का सहवास न छोड़ा। वे बड़ी देर तक गाल बांधे, कांव-कांव करते सांप को परेशान करते रहे। पर सांप की बहरी जात जब विचलित न हुई तो उनका दल नेहरा की भीत के सहारे उठ आये टीले की ढाल वाली बूढ़ी कीकर पर पांत बांधकर जा बैठा पर कोलाहल न रुका।

कसूम्बो को पड़ताल की आदत पड़ चुकी थी। अभी नागिन और मानुखी के स्वभाव की पड़ताल में उलझी थी, अब कौओं की जात पहचानने लगी।

'है कौओं की जात, पर आदमी से कहीं दमदार है। द्रोहा छुड़ाने वाले का घेराव तो करती है। पर निकाल आता है कि आदमी घर-थर छोड़कर चुपके से निकल पड़ता है। आदमी न खुद लड़ता है, न उन्हें मजबूर करता है जो उच्चासनों पर दखल किये हैं। कहें उनमें हूर आदमी।'

'उठाओ कुदाल, खोदो धरती। लाओ पानी। मारो छींट और भगाओ विनास को।'

कसूम्बो सोच में खो गयी। लंगड़ ढेले मारकर कौओ को उड़ा देने के लिए कीकर की ओर चला गया। वह नही चाहता इस कीकर पर कोई काला पांखी बैठे। अन्नकौर से विवाह पूर्व वह यही तो मिलता था।

कौओं को भगाकर वह वही रात की शीत खाई बालू पर पसर गया। पर बाबा साप की हरकतो को गुनता रहा।

अष्टमी का आधा चांद आकाश की छाती में अपने नोकीले सिरो से घाव घालता आगे बढ़ा जा रहा था। पर माची पर औंधे पड़े नेहरा बाबा का ध्यान चांद पर नही सांप पर जमा था। सांप कुण्डली खोलकर ऊपर और ऊपर की शाख की ओर बढ़े जा रहा था। पर देखते-देखते वह काल-भुजंग अदृश्य हो गया और उसके स्थान पर एक कुबड़ा प्रेत आकर शाख पर उकड़ू बैठ गया।

प्रेत के दांत सफ्फाफ उजले थे। रंग घटाटोप स्याह था। तम्बोल लाल आखों पर न बरौनियां थी, न ही पलकें। उसके हाथ लक्कड़बग्गा के पैरो के आकार के थे जो तनिक-सी हरकत पर तड़क बोल उठते। वह एक धूसर लबादा लपेटे था, जिसमें उसका एक हाथ छिपा था। उसके दूसरे हाथ में एक पीली थैली थी। जिसके सुर्ख सिरे पर लाल फीता बंधा था।

धीरे-धीरे प्रेत अपना जबड़ा खोलने लगा और अन्त में किसी पुराने दरख्त में पड़ी खोखर-सा उसका भूरा मुह खुल गया। उस खोखर से घुघू (उल्लू) की आवाज जैसा निकलता घुटा स्वर नेहरा को सुनाई देने लगा।

'सुन नेहरा। सात दिन बाद आषाढ़ी पूर्णिमा है। उस दिन तू भोर की भूरी तारी की उगाली के साथ नीम की डाल पर झंडी बाधकर, शकुन शोधकर, पुरानी चाल पर आ जाना। वर्ना गुरु को दिये बाचा त्रिकाल बनकर तेरे सारे परिवार को निगल जायेगा।

'ठीक, तब मैं अपनी थैली का फीता खोलूंगा। उससे निकलती हवा के वर्तुल का रुख देखकर तू आगत की भविष्यवाणी करना।'

नेहरा का मन भीतर तक डोल गया। चेतावनी देने के बाद प्रेत का गात सिकुड़ने लगा और वह गिद्ध के डेनों के समान अपने लबादे के छोरों को हवा में फड़फड़ाता पश्चिम दिशा की ओर उड़ गया।

नेहरा के भीतर से चीख निकली। कसूम्बो ने सभाला। लगड़ की भी तन्द्रा भंग हो गयी। पर उसकी लकड़ी की टाग ऐन मौके पर बिगड़ गयी। वह उसे गदा के अंदाज मे कंधे पर झुलाता फुदक दौड़ दौड़ता चला आया।

सहसा बाबा उठ बैठा। उसने अपनी पलको को झंपझंपाया तो उसे लगा मानो चारो दिशाओ से गन्दमी गर्द घिरे आ रही है। उसने पानी मांगा। कसूम्बो ने काई खायी मटकी का लोटा भर गंदला पानी दिया तो बाबा ने किफायतसारी से आखो पर छींटे मारे। फिर घूट-घूट गिनते पानी पीने लगा।

यह त्रिकाल घुमंतू पिशाच है। इसका मायावी तन सैंकड़ों योजन तक फैला है।

'पग पूंगल धड़ कोटड़े, बाहू बाहड़मेर।
फिरतो फिरतो बीकपुर, ठावो जैसलमेर ॥'

पैर पुगल प्रदेश में, धड़ कोटड़े की धरती पर और भुजा जैसलमेर मे, पर यह जब-तब पूरे आकार में बीकानेर आ जाता है।'

कसूम्बो थोड़ी देर प्राथमिक कक्षा के भूगोल में फंसी रहती और फिर सहसा पूछती—'और बाबा त्रिकाल के लक्षण क्या है?'

'''और पूर्णिमा की भोर की भूरी तारी की उगाली के साथ त्रिकाल-रूपी प्रेत नीम की शाखा पर फिर आ बैठा। इन सात दिनों के अन्तराल में बहुत कुछ हो गुजरा था। ठगोरा त्रिकाल ठगता रहा था। उसके प्रभाव से मन्त्र-बिद्ध-सी प्रकृति प्रत्यक्षतः सुकाल के लक्षण प्रकट करती रही थी। सूरज इस कदर तपता रहा था मानो सात समुन्द्रों की नमी सोख लायेगा और बादल बनकर मरुभूमि को सरसा जायेगा। जीव-जानवर भी सुलक्षण दरसाने लगे। टिहरियां टिहुक टर्टर्र बोली। चीटियो के दल-बादल मुंह में अण्डे दबाकर रेंगते रहे। चिड़कोलियों ने मगन होकर रेतस्नान किया, कांसे के बर्तन शब्द नीले पड़ गये। भडुरी और डक के बखाने शकुन एक-एक कर सध गये। पर बादल न उमड़े। यदि कोई भूली-भटकी भूरी बदली मरु-प्रदेश मे आ भी गयी तो लूओं से जल गयी। बूंद-बूंद न पिघली।

और तब पलीडों, नालियो से निकल-निकलकर मेढक झाडो में घुसने लगे, सांप उन्हें निगलने लगे। चूहे पगलाकर गलियो में दौड़ने लगे। चील, गिद्ध उन्हें दबोचने लगे। रात को काग दिन में सियार बोलने लगे। धोरो के अन्तराल से उठते गर्म वर्तुल भूतिहा आकार मे आकाश मे डोलने लगे और दरख्त जलने लगे।

नेहरा के आगन का नीम तो उसी दिन जलने लगा था, जिस दिन सांप उसकी शाखों पर चढा था। पहले एक-एक कर शाखाएं सूखती रहीं, फिर तना भी सुखान खाने लगा। टहनियां तड़कने लगीं। पत्ते सिकुड़कर रह गये। और शाखो पर लटकती निबौलियां जहां की तहां पककर सड़ने लगीं।

भर सात रातो प्रेत नेहरा को डराता रहा। और पूर्णिमा के चौथे पहर वह शाख पर फिर आ बैठा। नेहरा को धमकाया—'उठ नेहरा, सवेरा हो गया।'

नेहरा हबड़ककर उठा तो कुनबुनाया। इधर कसूम्बो उसी की नींद सोती-जागती रही थी। बाबा के उठने के साथ वह लोटाभर पानी ले आयी। सदा दोपहरी तक पड़ा ऊंघते रहने वाला लंगड़ भी आश्चर्यजनक रूप मे उठकर चिलम भर लाया। बाबा ने कुरला किया और चिलम के दम लगाये। वह उनके उठने से पहले काम सुलटा लेना चाहता था, पर कसूम्बो थी कि प्रस्ताव

रही थी--'बाबा मैं नीम पर चढ़कर झंडी बांध दूं।'

बाबा कसूम्बो को सम्पूर्णता में देखना चाहता था। व्यक्ति अपने विश्वास से उलट जब भी कुछ करता है उसके भीतर दरार पड़ती है। दरारों से झांकती दुविधा स्वयं नेहरा को साल रही थी। अतः उसने गर्दन हिलाकर ना कर दी।

कसूम्बो ने बाबा की पीड़ को समझा। कबीर की उलटवासियों का घोट लगाने के बावजूद बाबा उनका अर्थ नहीं बोध पाया था। और नाद-विमोहित हिरण सा उलझे जा रहा था। अतः कसूम्बो ने उसे बरजा-बरका नहीं।

बाबा ने लपककर नीम की एक सुखान खाई टहनी को तोड़ा तो उसके हाथ कांप गये। चेहरे पर पीड़ा झलक आयी।

वह दतौन के लिए भी कभी नीम की टहनी न तोड़ता था। घाव धोने के लिए उसकी पत्ती न नोचता था। क्योंकि नेहरा और नीम भाई थे। उसके बाप ने अपने पुरुषार्थ से नेहरा को पैदा कर और उसके जन्म के समय ही अपने आंगन में नीम का बिरवा रोपित कर दो महत्त्वपूर्ण काम अंजाम दिये थे। और इस दुहरे कर्म से फारिग होकर उसने अपनी सहज बुद्धि के अनुसार इहलोक और परलोक दोनों सुधार लिये थे। और शेष जीवन वह घर में बैठे गुजारकर, अपने ही भूतों के बीच मरकर चिर शान्ति पाना चाहता था।

पर त्रिकाल ने उसे परभूमि और पराये भूतों के बीच मारा। पर नेहरा इस समय अतीत के अवसाद में नहीं खो जाना चाहता था। बारहठ जी को दिये वचनों के अनुरूप उसे साक्षी-रूप में अपने बाप के हाथों रोपित नीम की टहनी बीच में रखनी थी। सो रखी। टहनी को धरती पर धरने के साथ ही उसके भीतर कोई प्रेतशक्ति सरसराई और वह एक फलांक में नीम के तने पर और दूसरी उछाल में जहां प्रेत बैठा था उसकी बगल वाली शाख पर पहुंच गया। झंडी को शाख से बांधा और उसी रफ्तार से नीचे उतर आया। पर जैसे ही माची पर लेटा कि ढह गया।

उसने देखा, प्रेत एक हाथ से लबादे का छोर हिलाये जा रहा था और दूसरे से थैली के मुंह पर बंधा फीता खोल रहा था।

फीता खुलने के साथ ही हवा झपाटे के साथ बहने लगी। नीम की सूखी पत्तियां और सड़ी निबोलियां झड़-झड़कर नेहरा की माची पर गिरने लगीं। नेहरा बेबस भाव से नीम भाई का रोम झड़ान देखता रहा।

तीसरे पहर तक तेज हवा चलती रही। भतूल उठते रहे। लंगड़ ने खबर फैला दी--'बाबा ने फिर झंडी बांधी है।'

शुभ शकुन की आश लगाये लोगों के ठठ के ठठ टीबे पर जमा होने लगे। दिन के चौथे पहर से कुछ पहले हवा का वेग रुक गया। उमस घिर आयी।

नेहरा ने देखा, पश्चिम क्षितिज पर प्रेत फिर प्रकट हो रहा है। वह लबादा

लहरा रहा है।

सहसा धरती और आकाश के छोर पर एक उजली सी बदली उभरी और देखते-देखते वह धूसर रंग का विशाल बादल बन गयी। बादल तड़ककर गड़गड़ाने लगा। महा-अकाल ने भी करवट बदली। उसकी सहस्र जिह्वाए बिजलियां बन-कर लपलपाने लगी। कही दूर जलते धोरो पर कुछ बूंदें टपकी तो धोरो की धूल पानी का छींटा खाये कास्टिक के समान उफनने लगी। और साथ ही आंधी भांय-भांय कर चलने लगी।

बादल आंधी के झोको में फटकर विलुप्त हो गया। आषाढ़ी पूर्णिमा को बादल गरजा। छींटें पड़ी। किन्तु खुलकर बरसे बिना ही बादल धूलि-धूसरित हो गया। 'पूणम पड़वा गाजै, दिन बहत्तर बाजे।' पूनो पड़वा गाज गयी। तो क्या बहत्तर दिनो तक आंधी यू ही चलती रहेगी।

'हा, चलेगी। नेहरा ने प्रेत का घरंघर्र स्वर सुना और देखा कि जाते-जाते प्रेत आकाश की छाती पर एक काला धब्बा छोड़ता गया।

दिनभर छिनाल नार की तरह चारों दिशाओं मे भटकाव खाती झडी सहसा अशकुनी दक्षिण-पश्चिम दिशा के नीर्य कोण मे फैलकर ठहर गयी। बाबा ने निराशा में गर्दन हिलाई। मांची के नीचे हाथ फैलाकर मुट्ठी में धूल भरी और उड़ाकर देखा। धूल भी अशकुनी दिशा मे जा रही थी।

निराश भीड़ लौट गयी। और उसी रात वह प्रेत द्वारा छोड़ा गया काला धब्बा चांद की चौड़ी चकचल छाती पर चिपककर परछाई रूप में धोरों की ढलानो पर उतरने लगा। चाद ज्यू-ज्यूं गदला होता गया, परछाई त्यू-त्यू बढ़तो गयी। और त्रिकाल गांव ढाणियों पर उतर आया।

गायें रम्भाने लगी। ऊटों की थुथनिया धूल में धंस गयी। बैलों की जुगालियां रुक गयी। झाड़ों में बिलाव लड़ने लगे। राह चलते ढोर गिरने लगे। गिद्ध घिर आने लगे। मरु-भूमि मे फिर एक बार उजाड़ बेला आयी।

नेहरा निढाल होकर बौराया।

सांवरिया के पास कई बिध छुलावे हैं, फिर वह बारबार मेह बिना ही क्यों मारता है?

'छल बल कई-कई सांवरा, तो हाथो किरतार।
मारण मारग मोकला, मेह बिना मत मार॥'

उसके संस्कार बंधे हाथ सांवरा की अरदास में जुड़े ही रह गये। वह अचेत हो गया। उसका अन्तरमन अतीत को भटकान में खो गया। त्रिकाल ने उसे कई बार दर-बदर भटकाया था। अतः बारह-बारह दिनो के अन्तराल से वह उन्ही ठौरो में भटकता रहा, जहा कभी पहले भटक चुका था। हर बारहवें दिन नीम की एक शाख टूटती गयी और वह नये पड़ाव पर पहुंचता रहा।

उसका पहला पड़ाव मऊ-मालवा की हरियल भूमि थी जहां उसका बाप उसको दस वर्ष की अवस्था में ले गया था। वह उसकी समझ का पहला त्रिकाल था।

घर छोड़कर जाते उसके बाप ने उसकी बांह थामकर नीम की प्रदक्षिणा की थी और कहा था—'हमारी अनुपस्थिति में वह नीम भाई तुम्हारी मा की रक्षा करेगा।'

मऊ-मालवा में उनके ढोरों को चारा-पानी तथा उन्हें मजदूरी मिल गयी। जंगल काटकर खेती के लिए जमीन हमवार की जा रही थी कि उसके बाप की कस्सी के फाल तले आकर एक काला नाग कट मरा। और उसी रात उसकी जोड़ायत नागिन आकर उसके बाप को डंस गयी।

नेहरा अकेला लौटकर आया तो मां को नीम के नीचे उकड़ू बैठे पाया। मां अपने धणी (पति) के लिये रोयी। अकेले बालक के पास से चोरी गये ढोरों के लिए कलपी पर तुरन्त ही संभलकर नेहरा के भविष्य को फिर से संजोने में जुट गयी। नेहरा और नीम साथ-साथ बढ़ने लगे। एकसाथ जवान होने लगे कि नेहरा की तन्द्रा बारहवें दिन टूट गयी तो देखा नीम की एक टूटी शाख उसकी मांची से थोड़ी दूर पड़ी है।

नेहरा फिर अतीत ढीहों में भटकने लगा। इस भटकाव में उसके साथ उसकी मां थी। पर गांव लौटकर आया तो फिर अकेला था। जिस सड़क पर उन्हें काम मिला था, उसका ठेकेदार एक पंजाबी था। यह मालवा नहीं पंजाब था। अधेड़ ठेकेदार मर्द की उस लुगाई की शारीरिक उठान और बागड़ू मुसकान पर पहले ही दिन ऐसा लुभाया कि अन्त में उसे पार ही करवा दिया। और उसके लठैत नेहरा को बागड़ की सीमा पर पटक गये।

नीम की एक शाख और टूट चुकी थी। नेहरा ने कसूम्बो के हाथों थोड़ी सी सामग्री चाटी और फिर औंधा गया। त्रिकाल के तीसरे फेरे में उसके साथ उसका बेटा शेरा था। इस दफा नेहरा को रोड़ी कुटाई का और शेरा को तारकोल पिघलाने का काम मिला था। पर उसे भी बाप की शकुन-शोधाई की आदत पड़ चुकी थी।

सहसा उसके गांव की दिशा में बिजली चमकी। शेरा उस चमक को टकटकी बांधकर देखता रहा और भट्ठी के नीचे कुन्दे भी पलटता रहा कि अचानक खौलता कनस्तर उलट गया। उसकी दांयी टांग भुट्टे के समान झुलस गयी। और जब नेहरा गाव लौटकर आया तो उसका बेटा एक पाव पर लकड़ी की टांग चढ़ाये उसके पीछे-पीछे चला आ रहा था। और धन्ना की कृपा से वह शीघ्र ही इलाके-भर में लंगड़ नाम से विख्यात हो गया।

नेहरा छत्तीसवें दिन तीसरी बार जरा होश में आया तो नीम की तीसरी शाख

को टूटा पाया। लपसी चाटकर वह फिर चौथे पड़ाव की ओर चल पड़ा।

जिन्दगी के चौथे त्रिकाल की जद में आकर जब वह गड्डुलिये पर गृहस्थी के गूदड़ लादे अपनी व शेरा की घरवाली के साथ कसूम्बो को बैठाये गांव की सरहद पर आया तो ढोरों के अंजर-पंजर के बीच खड़ा धन्ना पण्डित मिल गया। अब वह पण्डिताई के साथ-साथ रोकड़ीलाल के साझे में हाड़ों की ठेकेदारी भी करने लगा था। शकुन खोटे हुए जानकर नेहरा ने बायें पैर की जूती की धूल झाड़कर अशकुन को झाड़ा।

हल्ला-हड़कम्प, भागम-भाग। पूरा मरु-प्रदेश सर पर पांव धरकर भागे जा रहा था। नेहरा की लुगाई राजा-प्रजा को कोसे जा रही थी। निगोड़ा राज। कागज पर नहर खोदकर उसमें कागज की ही नाव चलाता है। फिट्टे मुंह ऐसे कागजी नाथ को। कांकड़ पर पड़ा पानी उफन रहा है और इधर की सीमा का आदमी प्यासा पैदा होकर, बिना पानी ही मर जाता है। ऐसे लोग हैं पर किसी में इत्ता भी जोर नहीं कि धोबा (चुल्लू) भर पानी इधर भी धकेल लाये।

वह कोसती-कलपती रही और उसके परिवार का एक-एक प्राणी अपने से ज्यादा जरूरतमन्दों को गड्डुलिये में जगह देकर खुद पदाति हुए जाते रहा। लंगड़ की लकड़ी की टांग बालू में धंसे जा रही थी। कसूम्बो ने दो नवजात मेमनों के लिए अपनी जगह छोड़ दी तो उसने मां होने के नाते बकरी को ही अपनी जगह ला बैठाया।

नेहरा कहे जा रहा था—'अकाल-दुकाल में आदमी आदमी के काम आने लगे तो अकाल मर जाये और आदमी जीने लगे।' काफले के लोग जहां, जिधर से काम मिलने की भनक पाते उधर ही छितरते गये। और अनन्त भागदौड़ के बाद नेहरा के पूरे परिवार को एक सिंचित प्रदेश में फसल कटाई का काम मिल गया।

फार्म का मालिक रणजीत सैकड़ों एकड़ धरती का मालिक था। उसके खेतों पर पक्के कोठे, बिजली की रोशनी तथा भकाभक पानी उगलने वाले ट्यूबवेल थे। नहर का बड़ा बम्बा उसीके खेतों में खुलता था।

कटाईदारों की पूरी पलटन उसके खेतों पर दिहाड़ी करती थी। रणजीत का खयाल था कि बागड़ी लोग रोटी खाने के बाद काम नहीं कर सकते अतः वह कमेरों को सुबह की चाय में अफीम घोलकर पिलाता और ढल-दोपहर तक उनसे कसकर काम लेता।

रोटियों का लंगर देर रात तक चलता। शेरा की लुगाई अन्नकौर को रोटियां सेंकने और कसूम्बो को बेलने का काम मिला। दोपहर तक कटाईदार दूर ऊंचे धान की जद में खो जाते तो रणजीत मूंछों पर आंटे देते, तहमद फड़फड़ाते, कन्धे पर बन्दूक झुलाये आता।

कसूम्बो को तो उसने कच्ची अम्बिया समझकर पकने तक दरगुजर कर दिया, किन्तु पकी बेरी सी झुकाल खायी अन्नकौर पर उसका मन पूरे तौर पर उतर आया। गरीब की गोरड़ी का यौवन फटी चुदड़ी से छन-छनकर पड़ता रहता।

पर रणजीत मरु की लुगाई की सिफत जानता था। वहां के मर्दों की आदत पहचानता था। जर के लिए चाहे न लड़ें पर जोरू की इज्जत के लिए गोन बांधकर घिर आते हैं।

रणजीत नवसीखिया राजा था। अतः सरमायेदार का छोरा छल-बल पर उतर आया। एक रात शेरा की लकड़ी को टांग चोरी चली गयी, जिसे वह शस्त्र के अंदाज मे सिरहाने रखकर सोता था। अगली रात रणजीत ने कमेरों को दावत दी तो सब धुत होकर पड़ गये। अन्नकौर के भेजे में भी नशा घुल आया। पर दूसरे कोठे मे मोती कसूम्बो को नींद उचटती रही। जी मचलता रहा।

आधी रात को बिजली गुल हो गयी। अन्नकौर की छाती पर अजगर सरसराने लगा। वह चाहकर भी गात न हिला पायी। अजगर ने उसे कुण्डली में जकड़ लिया।

रणजीत कोठे से बाहर आया कि तभी एक ढेले की मार से उसकी खोपड़ी झन्ना गयी। वह नया इक्किया था अतः कसूम्बो की हरकत पर प्रतिकार से कतराकर भाग गया।

पर भोर होने तक अन्नकौर पगला गयी। मन की ग्लानि उसे खाने लगी। वह रोने लगी और थोड़े-थोड़े अन्तराल पर दौड़-भागने लगी।

नेहरा ने चतुराई से काम लिया। साथ के कमेरों को कह दिया—बहू को जब-तब दौरे पड़ते हैं। पर नेहरा की घरवाली सब समझकर मुंह ढाककर बैठ गयी। कसूम्बो वहां से हट गयी। लगड़ को खुटक लगी और वह एक कीकर तले जा पसरा।

नेहरा बहू को हौले-हौले समझाता रहा—'जानता हूं बहू, तुझे पनियन पी गया। यह पहले भी मरु की अनेक मरवणों को पीता रहा है। इसलिए पीता है कि मरु का आदमी पानी पीने व जीने के लिए पराये घाटों पर आता है। अपनी धरती पर पानी के अभाव में मरु के आदमी के चेहरे का पानी रोज उतरता है।'

नेहरा को लगा बहू बहल गयी थी। वह बहते आंसू धोने के अदाज में नहर की ओर गयी पर एक बूढ़ी कीकर की ओट मे झुकी और फिर छपाक.से पानी में उतर गयी। कीकर की शाखो पर बैठी कौओ की पांतें बड़ी दूर तक उसके बहते शरीर के साथ उड़ती चली गयीं और जब उसका शरीर पूरी तरह पानी में डूब गया तो फिर कीकर पर आ बैठी और स्यापा करने लगी। उधर खोज मे आये लोगों को अन्नकौर तो न मिली पर लंगड़ की खोई टांग जरूर मिल गयी।

गांव लौट आने तक नेहरा बुझ चुका था और शरा बौरा गया था।

अड़तालीसवें दिन नेहरा के होश में आने से पहले ही नीम की चौथी शाख टूट चुकी थी।

साठवें दिन पांचवी शाख टूटने से पहले जब तक उसका अतीत का सपना टूटा उसकी घरवाली पाचवें चकफेरे में हैजे के हवाले हो चुकी थी।

छठे फेरे तक कसूम्बो जवान हो चुकी थी। नेहरा का चेहरा भोजपत्र पर लिखी गयी पोथी बन चुका था। वह पोथी न जाने कितने अकालों की कथा संजोये थी। पर काल-क्षरण मे वह इस कदर जर्जर हो चुकी थी कि वर्क उलटने के प्रयास में भोजपत्र कुतरे-कुतरे होकर झड़ जाता। कसूम्बो ने छठे प्रवास पर जाने से पहले उस पोथी को संजोया।

बतलाया—'बाबा, मैं अन्नकौर नहीं कसूम्बो हूं। छूईमुई और कटीली झाड़ में फर्क होता है। देख बाबा, चलाचली का मेला फिर लगा है। जिसका जिधर सींग समाता है, वह उधर ही भाग रहा है। कुएं-बावड़ी फिर सूख गये हैं। बनिये और पाधा की पानी की कुण्डों पर ताले पड़ गये हैं।'

नेहरा का बचा-खुचा परिवार फिर पनियल परदेश में आया। घर कूचा घर मंजिला। रिंधरोही मे एक बूढ़ी कीकर आयी। लंगड़ उसके तने तले आकर पसर गया—'मैं यह जगह छोडकर नही जाऊंगा। मेरी अन्नकौर का डेरा इस कीकर पर है।'

नेहरा की आंखें चौसारा बह चलीं। पर कसूम्बो की घुड़क पर लंगड़ फिर चलने लगा। इस दफा इनके साथ अपने ढंगर भी थे। नई बन रही सड़क की दोनों ओर की पटरियों के पार-हरियल खेत थे। कांटे की बाड़ों के इस ओर पानी के खाले थे। सरमायेदारों के ढंगर थानों पर खड़े पगरा रहे थे। पर गरीब के ढंगरो को मुंह मारने को भी कहीं गैरजोत की बित्ताभर जगह न थी।

कसूम्बो पड़ताल कर आई थी। नहर की पटरी के परली पार झाडियों मे सिर उठाऊ घास थी—'बापू डर नही। उधर कालबेलियों के डेरे हैं। धीरा-धनिया, पनिया सब उधर ही हैं। अब वे छनक जवान नाथ-सपेरे बन चुके हैं। उनके साथ उनकी घरवालियां भी हैं। मुझे देखा तो नाथों ने फट्ट पहचान लिया। पनिया अभी उतना ही बुरा बना है, बाबा।

'आव देखा न ताव, देखने के साथ ही मुझे झट घसीट चला। आ चल, दाव बदें। पहले तू मुझे पछाड़ती थी, अब मैं तुझे हराऊंगा।

'यह सब देखकर पहले तो उसकी घरवाली के तेवर बदले। उसने हाथ की दरांती को हवा में ऊंचाया। पर फिर मुट्ठी ढीली पड़ने लगी। और अन्त मे वह इस कदर हड़हड़ हंसी कि पनिया का दम खुश्क हो गया।

'जा निगोड़े तू जानता भी है कि जे तू जनानी के हाथों हार गया तो मेरी

कमुम्बो को तो उसने कच्ची अमिया समझकर पकने तक दरगुजर कर दिया, किन्तु पकी बेरी सी झुकान खायी अन्नकौर पर उसका मन पूरे तौर पर उतर आया। गरीब की गोरडी का यौवन फटी चुंदड़ी से छन-छनकर पड़ता रहता।

पर रणजीत मरु की लुगाई की सिफ्त जानता था। वहां के मर्दों की आदत पहचानता था। जर के लिए चाहे न लड़ें पर जोरू की इज्जत के लिए गोल बांधकर घिर आते हैं।

रणजीत नवसीखिया राजा था। अतः सरमायेदार का छोरा छल-बल पर उतर आया। एक रात मेरा की लकड़ी की टांग चोरी चली गयी, जिसे वह शस्त्र के अंदाज में सिरहाने रखकर सोता था। अगली रात रणजीत ने कमेरों को दावत दी तो सब धुत होकर पड़ गये। अन्नकौर के भेजे में भी नशा घुल आया। पर दूसरे कोठे में सोती कमुम्बो की नींद उचटती रही। जी मचलता रहा।

आधी रात को बिजली गुल हो गयी। अन्नकौर की छाती पर अजगर सरसराने लगा। वह चाहकर भी गात न हिला पायी। अजगर ने उसे कुण्डली में जकड़ लिया।

रणजीत कोठे से बाहर आया कि तभी एक ढेले की मार से उसकी खोपड़ी झन्ना गयी। वह नया इश्किया था अतः कमुम्बो की हरकत पर प्रतिकार से कतराकर भाग गया।

पर भोर होने तक अन्नकौर पगला गयी। मन की ग्लानि उसे खाने लगी। वह रोने लगी और थोड़े-थोड़े अन्तराल पर दौड़-भागने लगी।

नेहरा ने चतुराई से काम लिया। साथ के कमेरों को कह दिया—बहू को जब-तब दौरे पड़ते हैं। पर नेहरा की घरवाली सब समझकर मुंह ढोककर बैठ गयी। कमुम्बो वहां से हट गयी। लंगड़ की खुटक लेगी और वह एक कीकर तले जा पसरा।

नेहरा बहू को हौले-हौले समझाता रहा—'जानता हूं बहू, तुझे पनियन पी गया। यह पहले भी मरु की अनेक मरवणों को पीता रहा है। इसलिए पीता है कि मरु का आदमी पानी पीने व जीने के लिए पराये घाटों पर आता है। अपनी धरती पर पानी के अभाव में मरु के आदमी के चेहरे का पानी रोज उतरता है।'

नेहरा को लगा बहू बहल गयी थी। वह बहते आंसू धोने के अंदाज में नहर की ओर गयी पर एक बूढ़ी कीकर की ओट में झुकी और फिर छपाक से पानी में उतर गयी। कीकर की शाखों पर बैठी कौओं की पांतें बड़ी दूर तक उसके बहते शरीर के साथ उड़ती चली गयीं और जब उसका शरीर पूरी तरह पानी में डूब गया तो फिर कीकर पर आ बैठीं और स्यापा करने लगीं। उधर खोज में आये लोगों को अन्नकौर तो न मिली पर लंगड़ की खोई टांग जरूर मिल गयी।

गांव लौट आने तक नेहरा बुझ चुका था और शरा बौरा गया था।

अड़तालीसवें दिन नेहरा के होश मे आने से पहले ही नीम की चौथी शाख टूट चुकी थी।

साठवें दिन पांचवी शाख टूटने से पहले जब तक उसका अतीत का सपना टूटा उसकी घरवाली पांचवें चकफेरे में हैजे के हवाले हो चुकी थी।

छठे फेरे तक कसूम्बो जवान हो चुकी थी। नेहरा का चेहरा भोजपत्र पर लिखी गयी पोथी बन चुका था। वह पोथी न जाने कितने अकालो की कथा संजोये थी। पर काल-क्षरण में वह इस कदर जर्जर हो चुकी थी कि वर्क उलटने के प्रयास मे भोजपत्र कुतरे-कुतरे होकर झड़ जाता। कसूम्बो ने छठे प्रवास पर जाने से पहले उस पोथी को संजोया।

बतलाया—'बाबा, मैं अन्नकौर नहीं कसूम्बो हूं। छुईमुई और कंटीली झाड़ में फर्क होता है। देख बाबा, चलाचली का मेला फिर लगा है। जिसका जिधर सींग समाता है, वह उधर ही भाग रहा है। कुएं-बावड़ी फिर सूख गये है। बनिये और पाधा की पानी की कुण्डों पर ताले पड़ गये हैं।'

नेहरा का बचा-खुचा परिवार फिर पनियल परदेश में आया। घर कूचा घर मंजिला। रिंधरोही मे एक बूढ़ी कीकर आयी। लंगड़ उसके तने तले आकर पसर गया—'मैं यह जगह छोडकर नही जाऊंगा। मेरी अन्नकौर का डेरा इस कीकर पर है।'

नेहरा की आखें चौधारा बह चली। पर कसूम्बो की घुड़क पर लंगड़ फिर चलने लगा। इस दफा इनके साथ अपने डंगर भी थे। नई बन रही सड़क की दोनों ओर की पटरियों के पार हरियल खेत थे। कांटे की बाड़ों के इस ओर पानी के खाले थे। सरमायेदारों के डंगर थानों पर खड़े पगरा रहे थे। पर गरीब के डंगरों को मुंह मारने को भी कही गैरजोत की बित्ताभर जगह न थी।

कसूम्बो पड़ताल कर आई थी। नहर की पटरी के परली पार झाड़ियों में सिर उठाऊ घास थी—'बापू डर नही। उधर कालबेलियों के डेरे हैं। धीरा-धनिया, पनिया सब उधर ही हैं। अब वे छक्क जवान नाथ-सपेरे बन चुके हैं। उनके साथ उनकी घरवालियां भी हैं। मुझे देखा तो नाथो ने फट्ट पहचान लिया। पनिया अभी उतना ही बुरा बना है, बाबा।

'आव देखा न ताव, देखने के साथ ही मुझे झट घमीट चला। आ [illegible], [illegible] बदें। पहले [illegible] मुझे पछाड़ती थी, अब मैं तुझे हराऊंगा।

'यह सब देखकर पहले तो उसकी घरवाली के तेवर बदले। [illegible] दरांती को हवा में ऊंचाया। पर फिर मुट्ठी ढीली पड़ने लगी। [illegible] इस कदर हड़हड हंसी कि पनिया का दम [illegible] गया।

'जा निगोड़े तू जानता भी है कि [illegible]

क्या गत बनेगी। साथ की जोगनें मुझे जनखे की लुगाई कहकर ताना देंगी। भलाई इसी में है कि जनानी जात से न भिड़।'

'और वह मुझे धकेलकर ले चली—आ ननदल, तुझे भंगड़ा सिखाऊं, जो मैं पंजाब के धुर निहंग गांव से सीखकर आई हूं।'

और फिर कुसूम्बो हाथ में कीकर की दहनी थामे झाड़ियों में बेधड़क ढोर चराने लगी। शीघ्र ही उसकी दखल खेतों के भीतर तक हो गयी, पर कालबेलियों की मुंहबोली बहिन से किसी ने तकरार न की। उसकी सूरत पर नजर न डाली।

इस फेरे में नेहरा परिवार का कोई रोम न झड़ा। बहत्तरवें दिन उसके उठ-बैठने तक नीम की कोई शाख भी न गिरी। आंधी रुक चुकी थी। पर गांव में एक नयी ही हवा बह रही थी। सुन्दर अब अकेला न था। उसके कई और साथी शहर से इधर के गांव-ढाणियों में आ चुके थे। वे कन्धों पर झोले लटकाये, तराशदार दाढ़ियां रखे, खड़ी कालर के चोले पहिने लड़के बाबा को पहली नजर में ऐसे लगे मानो अकाल के मारे गांवों में वे लफंगाई करने आये हों।

पर बाबा ने कबीर की जिन उलटवासियों को न समझा था, उन छोकड़ों ने जब उन्हीं का अर्थ खोल धरा तो बाबा की आंखें खुल गयीं।

आंखें पूरी खुली तो देखा नीम के मुखान थामे तने की जड़ से नई कोंपलें फूटने लगी थीं। कसूम्बो नीम की ब[illegible]ईदार का पानी उसके गले में सींचने लगी थी। नीम इस परिवार का सदस्य है, फिर वह अपनी बांट का पानी क्यों न पाये?

एक ओर बाबा के गिर्द तराशी दाढ़ियों वाले लड़के इकट्ठा हो रहे थे तो दूसरी ओर रोकड़ीलाल की हवेली में न जाने कहां-कहां से आये गो-सेवकों का माजमा जुड़ा था। रोकड़ीलाल के नोहरे में गो-सेवा शिविर खुल गया। सेठ अध्यक्ष और धन्ना पण्डित सचिव बना। चन्दा आया। सरकारी अनु[illegible] । पर गौओं [illegible] भी न मिल
से दूना प्रबन्धक चरने लगे। [illegible] की जब क[illegible] तो मुन्द[illegible]
रही थी, [illegible] पशु की [illegible] मो ब[illegible] आई त[illegible]
शिकायती कागज भेजने लगा। [illegible] कोई प्र[illegible]
वह रू-ब-रू शिकायत करने के [illegible] ।

न्यौता दे आया।

'अरे कोढ़िया तेरे हाथों आहुति खाया जग्य ना फलापे। शास्त्रों में कोढी के के लिए जग्य की पाधाई करने की बरजना है।'

'परमाण किसने धरा?' लोगों ने पूछा।

'इस कोढी के बेटे ने मनुस्मृति से पढ़कर सुनाया था।'

कसूम्बो की बात लोगों के मगज में बैठ गयी। पिछले तीन सालों से धन्ना के चेहरे पर धोले-धोले चिकते उभरे आ रहे थे। और वह श्मशान के चितकबरे तीतर जैसा लगने लगा था। वह कहता, 'रक्त-विकार से दाग बन गये हैं' पर उनमें पीव भी पड़ने लगा तो वह श्मशान की हड्डी रगड़कर उन पर लेप करने लगा था।

'बामन होकर मशान की हड्डी मुंह पर लगाता है!'

'अरे यह कुकर्मी जोई करे वही थोड़ा।'

इसी बीच नेहरा की धोली गाय हड़कानी होकर मर गयी। कबरी खो गयी। उसकी खोज में कसूम्बो ढोरों के मशान में गयी तो धन्ना ने घेर लिया।

'तू भले ही मेरा बुरा चिंते, मैं तो तेरा भला ही चाऊ हूं। सिविर मे काम करने आ जाया कर। काम भले ही न करना पगार मिल जायेगी।'

'सुन्दर को आने दे। उसी से पूछकर आऊंगी।' सुन्दर का नाम सुना कि कि पाधा खिसक गया।

घर की बखारी का अनाज मुकने लगा था। गाव के जोहड़ की खुदाई का काम शुरू हुआ। कसूम्बो वहां दिहाड़ी करने लगी।

कसूम्बो अकेली जाने लगी तो लंगड़ जोहड की पाल पर लकड़ी की टांग कन्धे से अटाकर और हाथ मे गुलेल साधकर बैठने लगा। लोग उसकी पगलाई पर हंसते पर अन्नकौर की मौत के बाद वह कसूम्बो के प्रति अतिरिक्त सावधानी बरतने लगा था।

सुन्दर शहर से लौट आया। शिविर की जांच के आदेश हो चुके थे। बाबा के गिर्द लड़कों का समूह बढ़ने लगा, जैसे ताजगी ने आ घेरा हो।

अब गांवों मे प्रेस रिपोर्टर आने लगे थे। इधर भी आये। 'बाबा, तुमने अकाल के कई दौर देखे हैं। अपने संस्मरण सुनाओ। संदेश दो।'

'धोले कपड़े पहनकर त्रिकाल देखने आये हो। जाओ, डर जाओगे।' बाबा ने करवट बदल ली।

कसूम्बो लपकी—'मैं देती हूं सन्देश। तुम्हारे कागज मे छाप देना। राज-दरबार तक पहुंचा देना। जो गांव-ढाणियों में पानी न पहुंचा पाये। मगर उनके गले तर है। पढ़कर हलक न सूखेंगे। जाने दो।'

कसूम्बो के तेवर देखकर प्रेस वाले ढीले पड़ गये। पर जब वे फोटो खीचने

लगे तो वह हंग दी। फ्लेश मादट की चमक मे राह चलती बकरियां बिदक गयी। कसूम्बो 'उरं, उरं' कर उन्हें और बिदयाने लगी। रिपोर्टरों के कपड़े धूल से सन गये। फिर भी वे खुश थे।

'कल पाठक खबरें नही ये तसवीरें पढ़ेंगे। अकाल के बावजूद एक ताजादम चेहरा।'

गंवई लोग लड़कों की बातें सुनने लगे। उनके साथ घुलने-मिलने लगे।

'इनमे दूर रहो। ये झंडा-पार्टी वाले हैं।' पर पाधा तथा रोकड़ीलाल का प्रचार उलट पड़ने लगा। लोग और ज्यादा जुड़ने लगे।'

तब ऊंचे कद, नाप और ओहदों वाले अफसर आने लगे। उनसे ज्यादा रौब-दाब वाले पुलिसिये-पलटनिये आये। रोकड़ीलाल के पिछवाड़े 'कच्ची की भट्ठी' चलने लगी। फिर नेता आने लगे।

'देश-धणी आयेगा। मरु में गंगा लायेगा। कोई गांव छोड़कर न जाये।

'जिसे जाना हो जाये। राज-काज तो चलते-चलते ही चलेगा।' अफसरों की आदत। नेताओं के सर पर चढ़कर जो बोलने लगे हैं।

'कोई नही जायेगा। ये क्या जानें, घर छोड़कर जाने की पीड़ा।' सुन्दर ने प्रतिवाद किया।

'देश का धणी कौन? कौन आयेगा?' कोई न आया। तो लोग चले। पर मऊ-मालवा नही। देश धणी को ढूंढने। अपने हलक की प्यास उड़लने। त्रिकाल की अर्थी उनके कन्धों पर थी।

'रुको लड़को। चौपडो की अर्थी न ले जाओ।' बाबा हुमक से उठते बोला—'अर्थी उठानी हो तो असल त्रिकालमारे की उठाओ। उठाओ, उठाओ। मेरी मांची उठाओ। मैं बताऊं। अब मेरे भीतर का आदमी जागा है। देखो, नीम में फिर शाख फूट आयी है। लाल ललछौहा सूरज निकला है।'

कसूम्बो हरी बेरड़ी की छड़ी तोड़ लायी। लंगड़ सबके आगे-आगे बांके सिपहसालार के अंदाज में चल रहा था।

बाबा की महा-प्रयाण यात्रा चली।

सहस्र कदमों के साथ रिंघरोही के जानवरों की चाल भी मिल गयी। नंगे झाड़ों की शाख पर अपने ही पंखों के छतर ओढ़कर जलती दोपहरी बिताते पांख-पखेरू अब उड-उडकर महा-प्रयाण यात्रियों को छांव कर रहे थे।

कुबड़ा प्रेत एक बूढ़े खेजड़े की खोखर मे बैठा उजड़े प्रदेश मे अपनी विनाश-लीला देख-देखकर हर्षा रहा था। तभी हजारो-हजार कण्ठों से निकलता समवेत स्वर उसने सुना और चौंका।

'अरे यह क्या ? मानुख ही नहीं, जी-जिनावर तक एकजुट हो गये है ।'

त्रिकाल ने गर्दन उठाई। पपोटों में धंसी पुतलियां खोली। उसकी दृष्टि बाबा की त्रिकाल दृष्टि से मिली। अब वह शकुन-शोधी नहीं, प्रकृति और परपंच के विरुद्ध लड़ने वाला योद्धा था।

उसकी दृष्टि से प्रेत के लबादे के एक छोर में आग लग गयी। वह आग की लपटों में लिपटा उड़ने लगा।

वह दहल उठा। उड़ता रहा। उड़ान में हवा की रगड़ खाकर सारा लबादा जलने लगा और कुबड़ा प्रेत डगमगाता, गिरता, ढलता पश्चिम क्षितिज की ढलानों में जा गिरा।

सड़क

ऐसी भी क्या सड़क सीधी सपाट, सुलिहा। न कहीं मोड़ न कहीं बोर्ड। कहीं तो लिखा होना चाहिए—'आगे खतरनाक मोड़ है।'

पर ठीक तो है, इस सड़क पर खतरे का बोर्ड लगाने की, सावधानी से चलने की जरूरत भी कितनी है? आदमी आदमी से सावधानी बरतता है। पर इस सड़क पर, भोर हो कि दोपहरी, आदमजाद कम ही आता है। आदमी नंगा चले तो भी इस सड़क पर शरमाने की नौबत न आये।

सड़क खुद नंगी। बिलकती धूप, अंधी धधकाल। नंगई को नंग से कौन शर्म, झिझक। न कोई वाहन, न कोई पाहुन। सड़क अपने घर की आप अतिथि। पटरी के दोनों ओर लू-जली, काली पड़ी कीकरें, जिनके तनों में केवल सूलों की कीलें भर चुभी पड़ी, दर्राती हैं तो हवा की सरसराहट के बहाने सिसकारी भर-कर रह जाती है।

न हरियल पात, न डहडही पत्ती। सूखी शाखों की आँतें समेट खड़ी काली धी: ठठरी। इसी से मोर-मोरनी के जोड़े नहीं बैठते। तीतर नहीं, कठफोड़े नहीं। कठफोड़े भी तो हरियल काठ में सुराख बनाते हैं।

किन्तु जब कोई भूली-भटकी, बिछुड़ी-बिसुरी मादा गोडावन इधर आ जाती है तो शिकरों (बाजों) द्वारा उसे झपट ले जाने का अंदेशा जरूर बना रहता है। सुनहेड़ भरी रोही में शिकरों का साम्राज्य।

पर मैं शिकरा-शिकारी नहीं। कहीं आसपास बित्ताभर हरियाली का एहसास भी पा जाता तो नमी का ग्रास निगल गले का खरखरापन मिटा पाता। नजरें नाउम्मीदी के एहसास के बावजूद इधर-उधर टहलने लगीं तो उनके बावले-पन पर हंसी आ गयी। मन किया, अकेलेपन का साथ लूं, फेफड़ों में भरपूर हवा भर हंस लूं। सभ्यता के महुवास में हंसी में भी खोखर भर गयी है। आदमी जब हंसना भूलता है तो धरती ऊसर होती है। जांचना चाहता था कि भीतर महज खोखर-भर ही रह गयी है या कहीं भराव भी है कि सुनहेड़ बियाबान में चूहियों

की खनक सुन सन्न रह गया। नजरें पसर गयीं। रिंधरोही में चूड़ियों की खनक ने ललक जगाने के बदले भय की अनुभूति जगा दी। एक परिवेश में जो सुहाती है, दूसरे में वही काट खाती है।

नजरों में भरी समझ को समेटकर देखा। एक नंग-धड़ंग कीकर का ढासना लगाये एक औरत बैठी है। उसने भी जैसे मुझे देख सायास तन ढका, केवल मुह भर खुला रखा।

मैं अभी खड़ा सोच ही रहा था कि उसके पास जाकर पूछूं भी कि, वह कौन है? कहां से आई है और इस रिंधरोही में अकेली क्यों पड़ी है?

अनजानी औरत से बतियाने न बतियाने की गुत्थी मेरा अद्यतन शहरी संस्कार खोल भी न पायी कि औरत स्वयं मेरे पास चली आई। मैंने सायास संयत स्वर में पूछा—

'कौन हो तुम?'

'एक लुगाई हूं मैं!'

'सो तो हो। पर इस जेठी धूप में यहां क्यों आई हो?'

'आना पड़ा इसमें आ गयी।'

मैंने देखा औरत जवान भी थी। सुन्दर भी कही जा सकती थी। चेहरे की धूप खाई गोराई पर कुछ-कुछ तांबई बरण झांई तो चढ़ आयी थी पर आखों की पुतलियों का पानी सुरमे का तलबगार न था। कुल मिलाकर वह एक 'औरत' थी। अत. अब मैंने बात में पहल ली। परिवेश के अनुरूप प्रश्न किया।

'तुम्हें डर नहीं लगता इस उजाड़ में?'

'लगता तो है।'

'मुझे तो नहीं लगता।' क्षणभर पहले चढ़ी झुरझुरी को नकारता मेरा पौरुष बोला। पर नारी सहज बनी रही। उसका उत्तर झीना-झीना सत्य था—'मुझे डर लगता है, लुगाई जो हूं।' उसने सहज ही वह सत्य सिकारा जो नारी का पर्याय बन चुका है।

पर उसके जवाब ने मेरे 'मर्द' को अटंगी लगा दी। फिर भी धूल झाड़ पाने की गर्ज से पलटकर पूछा।

'फिर यहां आई क्यों?'

चकचाहट में मैंने मूल प्रश्न को ही दोहरा दिया। पर उसने अलग तथ्य उजागर किया।

'मर्द ने घर से निकाल दिया तो आना पड़ा। अपनी रजामन्दी से तो आयी नहीं।'

'पर मर्द ने घर से क्यों निकाल दिया?' मैंने कदम बढ़ाते प्रश्न किया पर उसके उत्तर में भी ठहराव न था।

'मैं हरजाई (बदचलन) जो थी, इसी से निकाल दिया।'

मैं रुक गया। अजीब औरत का बेतुका जवाब। ऐसी होने के बावजूद भी उसने सच्चाई को छिपाने का प्रयास न किया जैसा कि एक कोठे की औरत भी करती है। पर उसने सिकारा तो मैंने कारण भी पूछ लिया।

'तुम ऐसी हुई क्यों?'

'मजबूरी की मारी हो गयी। न होती तो मर्द मारता।'

अजीब अफसाना सुनाती है यह औरत। हरजाई न होते मर्द ने मारा?'

'रोज मारता।'

'तब क्या शिकायत थी?'

'बस यही कि मैं हरजाई हो न पा रही थी।'

जब तक हरजाई न हो पायी तो हो जाने के तकाजे पर मार खाती रही। जब हो गयी तो मारकर घर से निकाल दिया! औरत जरूर मुझ बनाती है।

'क्या तुम्हारा मर्द पहले तुम्हें इसलिए मारता कि तुम सच्चरित्रा थी?

'उसे चरितर की नहीं, दारू की तलब थी। उसे जुआ खेलने के लिए पैसे की तलब थी, वह खाट पर पड़ रहते रोटी तोड़े जाने का तलबगार था।'

'और उसकी ये सब जरूरतें तुम पूरी करती रही।'

'हां।'

'तो फिर उसने तुम्हें घर से निकाला क्यों?'

औरत ने मुझे ऐसी नजरों घूरा मानो उसे मेरे मर्द होने पर संदेह होने लगा था। अतः समझाती सी बोली।

'मैं हार चुकी थी। टूट चुकी थी। और नहीं चल पा रही थी।'

'इसी से उसने निकाल दिया?....'

फिर जरा रुककर जोड़ा।

'मर्द हो। समझो।'

उसने संवाद को क्षणिक विराम दिया। मुझे भांपा। जान गयी। मर्द-मर्द के बीच का फर्क पहचान गयी। अतः उसी समझावनभरे स्वर में फिर बोली।

'वह न चलने के बावजूद भी मुझे घर में बसाये रख सकता था। पर ज्यूं-ज्यूं उसकी जर की जरूरत बढ़ती गयी उसकी जोरू की बदचलनी भी उजागर होती रही, भला जग-जाहिर हरजाई को कोई मर्द-मानस घर में बसाये रख सकता है, बाबूजी! गांव-गली में नाक का सवाल। जात-बिरादरी में मुंह न दिखा पाता।'

सवाल मेरे मन में अटककर रह गया। सुनते आया था, ऐसा भी होता है। आज सबूत सामने नमूदार हुआ तो धचका-सा खा गया, फिर भी पूरा खोदने की तलब ने पूछा।

'तुमने एतराज न किया ?'

'लुगाई का एतराज भला मर्द ने कभी माना कि वही अकेला मानता ! शोर मचाती तो मेरे भोगता ही सबसे पहले मेरे खिलाफ बोलते । उस नामर्दुए की कलई न खुल, सराफत तो उन सबकी उजागर होती जो चाल-चलन के पहरुए है ।'

नंगा सत्य यही था । अतः अब मैंने सीधा सवाल किया ।

'अब तुम कहा जाओगी ?'

'जो भी मिलेगा उसके साथ हो लूंगी ।'

'पर इस सुनहेड़ मे तुम्हे कौन मिलेगा ?'

'आप मिल तो गये ।' उसके जवाब मे सहजता थी पर मेरे गले में उसका जवाब घुडी बनकर अटक गया । वह मुझे सालने लगे, उससे पहले ही गांठ ढीली कर बोला—'नही, मैं बाल-बच्चेदार आदमी हू । मैं अपने साथ नही ले जा सकता ।' और उसकी उलझन में अपने को न उलझाने की गर्ज से उसे उसकी असहायता के ही हवाले कर लम्बे डग भर चला । जानने की कोशिश भी न की, कि वह चली आ रही है, कि मेरे रूखेपन पर अटक गयी ।

सडक चाहे कितनी सपाट क्यो न हो, उसकी नियति है कही मोड़ खा जाना । जिन्दगी और सड़क की हकीकत एक है ।

पर वह न मुड़ी । एक घुमावदार मोड़ पर आया तो उसकी परछाई देख-कर जाना कि वह पीछे लगे चली आ रही है ।

मुझे फिर ठिठकना पड़ा । उसे मना भी तो नही कर सकता था । सड़क तो वैशाली की नगर-वधू है । उसका कोई एक ऐकान्तिक भोगता है, ऐसा दावा कोई नही कर सकता । जो भी आयेगा, सड़क पर चलेगा, उसे रौदेगा, भोगेगा और फिर ठोकरों के जख्म छोड़ अपनी डगर गुजर जायेगा । भुगतते जाना और भोगी जाते रहना ही सड़क की सनातन नियति है । पर एक सड़क पर एक और सड़क को आते देखा तो उसे अटकाने की गर्ज से बोला ।

'शायद तुम भूखी हो ?'

'हूं तो ।'

'पर मेरे पास तो खिलाने लायक कुछ भी नही है ।'

'आपकी केतली मे पानी तो होगा ?' कन्धे से झूलते थर्मस को प्यासी नजरों निहारती वह बोली ।

पहले मन किया कह दू, खाली हो चुका । शायद मायूस हो चली जाये, पर मेरे भीतर आदमियत का कोई बचा-खुचा टुकड़ा कही चिपककर रह गया था, वही मुखर हो बोला ।

'प्यासी हो तो लो पिओ ।' और मेरे भीतर के उस गैरशहराती आदमी ने

थर्मस का मुंह खोल दिया। उसने हथेलियों की अंजुली बनाई और लगभग सारा पानी सुड़क गयी।

वह अभी खड़ी पल्लू से मुंह पोंछ ही रही थी कि मैं दामन बचाने की गर्ज से खिसकने लगा। पहले की अपेक्षा मेरी चाल में इस दफा ऐसी तेजी थी मानो मन कहीं कुछ और न बहक जाये, इस एहसास से चला जा रहा हूं। पर वह भी पानी पीकर पर्याप्त ताजादम हो चुकी थी, अतः लगभग मेरे बराबर चलने लगी। सूरज मध्याह्न में था, अतः उसकी परछाई भी गायब थी। मेरा मन एक नये भय का आगाज बन गया। मैं सिहरा—'भूतनी !' यह कोई भटकी प्रेतात्मा तो नहीं है ? सुनते और नकारते आया था कि मझ दोपरी में, बियाबान रोही में भूतनियां डोलती है और आदमी को अकेला पा उसके साथ हो लेती हैं।

यद्यपि मैं विज्ञान का अध्येता हू। भूत आत्माओ की किवदन्तियो पर विश्वास नही करता। पर सुनसान उजाड़ मे पुश्त-दर-पुश्त भूत-विश्वासी संस्कार डराने लगते हैं। मैं भी डरा। मेरी दृष्टि उसके चेहरे से फिसलकर उसके पैरो पर जा टिकी। कहा जाता है, भूत के पांव उलटे होते हैं। उसकी छाया भी नहीं होती। पर उसके सामान्य पैरों मे नायलोन की पुरानी चप्पलें पड़ी थीं। बिवाइयां फटी थी। मोड़ पर पड़ती छाया भी देख चुका था। मैं आश्वस्त हो चला। है तो मानवी ही। थोडी दूर स्वस्थ-मन चला कि मन में एक खुदक जागी। आदमी की आदिम वासना फुफकारने लगी। बियाबान में आदमी गुफा-युग की ओर लौटने लगता है। वह फौलाद के नही, हड्डियो के हथियार वाला आदमी बन जाता है। मन किया, मनमानी कर गुजरूं। कौन देखेगा यहां ! आदमी आदमी की नजर की जद तक ही सभ्य हो पाया है। सजातीय नजर का खौफ मिटा कि आदमी डिगा। वह तो वही दीवार है ही। ऊपर से फांद जाऊं तो कौन इनकारी है। पर तभी संस्कारगत शालीनता कहो कि अद्यतन कायरता, कोई एक आड़े आ गयी। मन का आदिम आदमी दब गया। तब खुदक ने दिशा बदली।

मुझे याद आया किसी दिन पहले भी इसी सड़क पर एक कुतिया पाच मील तक पीछे लगी मेरे घर तक साथ आ गयी थी। मोनू-सोनू ने उसे देखा। पसन्द आ गयी।

रोटी डाली तो पहले सूंघा फिर खा गयी। बच्चो ने गले में पट्टा डाल दिया तो भी गुर्रायी नहीं। पालतू बन गयी। अब वह हर गर्मी मे कुत्तों की भीड़ जुटाती है और सरदी के मौसम मे एकसाथ कई पिल्ले जनती है।

यह औरत भी तो उसी तरह मेरे घर में रह सकती है। पट्टे मे बंधकर, पालतू बनकर न सही, नौकरानी बनकर रहे तो किसी को क्या एतराज हो सकता है।

कविता को एक नौकरानी की जरूरत भी तो है। कई दफा कह चुकी है। इस विचार के साथ ही मैं औरत से मुखातिब हुआ।

'तुमने कहा था'''।'

'हां, कहा था।'

औरत काफी सयानी साबित हो रही थी। उसने सहज ग्रामीण सूझ से मेरा आशय भांप लिया तो मैं विराम पर आते बोला।

'नौकरानी बनकर रह सकोगी?'

'नौकरानी छोड़ पटरानी बनाकर कौन मुझे अपने घर रखेगा।' औरत ने हाशिये पर खड़ी होते उत्तर दिया।

'चौका,पोछा, बुहारी झाड़ू, जूठे बर्तन'''और''''

'और' के अलावा सब संभाल लूंगी। बस, इसी एक 'और' के सिवा, जिसकी घिन से घिनाकर घर छोड़ आई हूं।'

जैसे तपते तवे पर ठण्डा छींटा पड़ गया। तवा छन्‌छन् कर शांत हो गया। पर अपने से ही शर्मिंदा होने से पहले अपने को छला। आदमी औरों से ज्यादा अपने को छलता है। हर औरत यही तो सोचती है, यह तो सड़क है एक गली भी हो तो भी मर्द के सदाशय को चाहत की चटक ही समझती है।' अब उस औरत के सम्बन्ध में मन में कोई ऊहापोह न रह गयी। अपने कॉटेज के सामने आने तक यही सोचे आया कि कविता को वस्तुस्थिति का विवरण किन शब्दों में दूं।

कविता बाहरी गेट की दीवार का टासना लगाये मेरे इन्तजार में खड़ी सड़क की ओर घूर रही थी। बच्चे भी प्रतीक्षारत थे। मैं भीतर चला गया। औरत सड़क पर ही खड़ी रही। पर कविता दूर से ही उसे मेरे साथ लगे आती देख चुकी थी। उसकी प्रतीक्षित जिज्ञासा मुझसे देरी होने का सबब जानने के स्थान पर सीधे प्रश्न पर उतर आयी।

'वह'''वह'''कौन है?' उसकी तर्जनी इंगित करते जैसे सीधे उसके सर पर जा टिकी।

'तुम एक नौकरानी चाहती थी न?'

'हूं।' कविता ने पूरी हथेली फैलाते औरत को नजदीक आने के लिए इशारा किया। वह सड़क छोड़, पटरी पर आ लगभग गेट का सहारा लेती बाहर ही खड़ी हो गयी।

औरत खाली हाथ थी। 'इसका सामान?'

'राह चलते बीच सडक पर मिल गयी थी।'

कविता की आंखों की पुतलियों में जैसे एक विद्रूप तैर गया। जैसे कहना

चाहती हो—'तो ऐसे राह चलते मिल जाती हैं।' पर कहा कुछ नहीं। औरत की जांच-परख में जुट गयी। दंतावली तक का जायजा ले गुजरी। उजले हैं। नुकीले भी। औरत को औरत की जात पहचानते देर नहीं लगती। उद्वेलित सी बोली।

'हिश्श ! ऐसी भी क्या नौकरानी होती है ! चलो, चलो भीतर चलो।' और उसने गेट बन्द कर दिया। औरत मुड़ी, फिर सड़क पर पहुंची, फिर पिघलने लगी और कोलतार में घुल गयी।

सफीनो

हुआ यूं कि रोज की तरह उस दिन भी सफीनो अपनी भैंस को नहलाने गांव की जोहड़ी पर गयी। भैंस पानी मे उतर गयी। पर एक भैंसा भी वहां पहले से मौजूद था। भैंस के डील से उठती कच्ची-कच्ची गंध से जानवर की समझ ने बतलाया भैंस हिसायी (गर्भातुर) थी। भैंसे को देख भैंस भी पहले सींग तानकर सीधी खड़ी हुई पर फिर बिदकी।

सफीनो डरी। वैसे तो उसे एक जोरावर भैंसे की तलाश थी। उसकी भूरी कई दफा फुर चुकी थी। यह भैंसा कद-काठी से ठीक था, पर इसे एक कुटेव भी थी। यह भैंस का टखना भी तोड़ जाया करता था। शायद इसी बदकारी के कारण किसी पड़ोस के गाव वाले इसे इधर खदेड़ गये थे।

सफीनो अपनी भैंस को घर टोर लायी। पर भैंसा भी पीछे लगा चला आया। सफीनो ने भूरी को खूंटे से बांध दिया और झोटे को दूर तक टोर आयी, पर भैंसा थोड़ी देर मे फिर आकर उसके घर के आगे जानवर के स्वभाव से अपने खुरों और सींगों से मिट्टी उकेरकर अपने सर पर डालने लगा। भैंस भी डिडियाती रही। भैंसा मार खाते रहने के बावजूद भी फिर लौट आकर अपने सिर पर मिट्टी डालता रहा।

सफीनो तीन दिन-रात परेशान रही। उसकी रातें आंखो मे कटी, पर पिछली रात उसे गहरी नींद ने आ घेरा। सुबह पाया भैंस हरी तो हो चुकी थी, किन्तु टखना भी तुड़वा बैठी थी।

भैंसा आते-जाते भीत भी ढहाता गया था। भीत का एक सिरा गिरा तो चौखट भी गिर पड़ी थी। उसी धम्माके के साथ सफीनो की नींद खुली थी। भैंसे के भय से उसने चिमनी न बुझायी थी। उसकी लौ ऊंची कर वह थान के पास पहुंची।

भैंस गर्दन झुकाये, एक टांग उठाये खड़ी थी। टखना जरूर टूट गया है, सफीनो को विश्वास हो गया। टखना काफी खम्म खाये है। सूजन भी । पर

तलवार की धार के समान उभर आये। इस उभार के कारण उसके गालों ने जो लुनाई पायी थी, उसकी सराहना गयासुदीन जैसे निरस दूढ़ ने भी की थी पर गबरू इस उभार को देखते ही डर जाया करता था।

वैसे घोड़े बेचकर सोया करता। ढेला मारने पर भी न जागता, पर न जाने क्या होता था कि जब कभी सफ़ीनो सुबह-सुबह दूध देने आती, वह जाग जाया करता था और मुंदी आंखों ही कह देता—'वहां सींके पर ढाककर छोड़ जा।'

उस दिन भी ऐसा ही हुआ तो सफ़ीनो बिफर गयी। चेहरे पर तलवार की धार तन गयी—'मैं दूध लेकर नहीं आयी। उठ, चलकर देख। तू पड़ा सोता रहा और मेरे घर एक झोटा क्या कुछ न कर गया।'

गबरू हड़बड़ाहट में उठ खड़ा हुआ। लुंगी संभालते पूछा—'कौन, भैंसा? कैसा था? क्या किया, अब किधर गया?' एकसाथ इतने सवाल सुनकर सफ़ीनो का मर्म माथा और भी भन्ना गया। उसने भी तुर्स-ब-तुर्स जवाब दिया।

'कौन था, नाम नहीं बतला गया। काला धुं: था। मेरी भीत ढहा गया, चौखट गिरा गया। किधर गया, जानती नहीं। अब तू चल। मेरे घर का हाल देख। भैंसा मेरी भूरी का टखना तोड़ गया। उस पर पुलटिस चढ़ा।' और वह हाथ झटकते लौट चली।। जानती थी, जैसे भैंसा भूरी के पीछे लगा चला आया था, वैसे ही यह भी आयेगा पर दोनों के आने के इरादे में फ़र्क़।

गबरू ने आकर भैंस की हालत का जायजा लिया तो सब देखकर बोला—'तू भी सफ़ीनो भाभी कैसी है! अरणा तेरे दरवाजे पर खुर्री करता रहा। तेरी भैंस का दरवाजा तोड़ गया पर तैंने मुझे खबर तक न की। बेमुराद भैंसा मुझे मिले तो समझूं।'

गैर अख़्लाकी (अनैतिक) अल्फ़ाजों के साथ गबरू ने भैंसे की बेमुरादी बखानी तो वह क्रुद्ध गयी। उसके गालों पर फिर तलवार की धार तन गयी। मन किया फिर तुर्स-ब-तुर्स जवाब दे। कहे—'भैंस की मुराद पूरी कर गया भैंसा बेमुराद नहीं। बेमुराद तू है कि आज तक एक कोपल भी न सींच पाया।'

पर उसने देखा कि उसके गालों पर उभर आई धार को देखकर वह घबरा गया है तो तकरार न बढ़ाई, अगर जुरंत हार गया तो भैंस को उठा भी न पायेगा।

उधर गबरू भी अपनी गैर अख़्लाकी लफ़्फ़ाजी पर शर्मिंदा था। सफ़ीनो के सामने उसने कभी कोई गुस्ताखी न की थी। अतः जीभ काटते बोला—'भूरी को खड़ा करना होगा, तभी टखना सामने आ पायेगा। तूं बस, जरा पूंछ थाम रखना। उठा मैं खुद दूंगा।'.

भैंस के सींग उसकी मुट्ठियों की जुम्बिश में जकड़ गये। भैंस थरथराती-सी उठ खड़ी हुई। सफ़ीनो ने पुलटिस चढ़ाई। कसकर कपड़ा बांधा तो गबरू ने सींग छोड़ दिये। भैंस थिर खड़ी रही।

भैंस को जैसे चुटियाये जाने का एहसास न था। आधी आँखें मूंदे, कान लटकाये वह शान्त खड़ी थी। भैंस के सन्तोष पर सफीनो को एक अनभावना सा रोष हुआ। हर मादा मां बना चाहती है। यह झोटी तो बन जायेगी।

मरी कितने दिनों तो खड़ी डिडियाती रही। खूंटा तुड़ाती रही, पर अब कान तक नहीं हिलाती। पर थरथरा रही है। गिर भी सकती है। तीन टांग पर खड़े रहने का अभ्यास जो नहीं।

सफीनो ने सहलाकर टख़ने की चोट का जायजा लेना चाहा तो भैंस बिदकी और गिर ही पड़ी। चुटियाया टखना उसके डील के नीचे दब गया।

सफीनो ने हड़बड़ी में चूल्हा धधकाया। पतीली चढ़ाकर हल्दी-चूना पकाने लगी। पकते पदार्थ से पतीली के भीतर खदबदाहट होने लगी, पर सफीनो को यह खदबदाहट न सुहायी।

उसने आंच कम कर दी तो खदबदाहट बन्द हो गयी। आंच कम हो तो सहज पके।

पका तो उसके भीतर भी बहुत कुछ था, पर उसने कभी सी तक न की, फिर यह पतीली ही क्यों अपनी जलन दर्शा रही है।

पुलटिम पककर तैयार हो गयी तो उसे गबरू की याद आयी। भैंस को वह अकेली तो उठा न सकेगी। किसी जबर आदमी की सहायता की दरकार थी। वक्त-जरूरत ही वह गबरू के दरवाजे पर जाती थी। क्योंकि मन से वह उसके साथ नाता तोड़ चुकी थी, फिर भी आड़े वक्त जाना ही पड़ता था और उसके एवज में वह उसे यदा-कदा भूरी का खालिश दूध दे आती थी। वैसे थोड़ा-बहुत दे तो रोज ही दे, मगर गबरू मुफ्त नहीं लेता और वह दाम नहीं लेती।

झुटपुटा हो चुका था। गबरू के घर पहुंची तो देखा वह अभी पड़ा सो ही रहा था। पहलवान को तो तड़के उठकर अभ्यास करना चाहिए पर उसे कौन जगाये। छड़ा-छाकटा मलग अपनी नींद सोता है, अपनी जागता है। अखाड़े में सदा जीतता रहा है। यह चित-पटकी कुश्ती भी उल्टी है। हारने वाले का सीना ऊपर रहता है। जीतने वाला पट पड़ता है, इसी से इसे पट सोने की आदत पड़ गयी है।

'अलग घर बनाने के बाद इसकी आदत भी गड़बड़ा गयी है। सुबह के बदले शाम को दण्ड-बैठक निकालने लगा है। आज भी धूल भरा सो गया है। अब कौन इसे तकाजा कर नहाने को मनाये। पर मिट्टी सना भी वैसा ही भला लग रहा है जैसा कि कीचड़ में लिथड़ा वह भैंसा लग रहा था। पर इसने उसके समान हौसला नहीं पाया। उसके समान मन आई नहीं कर पाता।'

बस, इसी खयाल के साथ सफीनो को तर्राटा आ गया। मुंह कसैला हो गया और दोनों गालों पर शीशे के टुकड़ों की खरोंचों से बने दो हलके-हलके निशान

तलवार की धार के समान उभर आये। इस उभार के कारण उसके गालों ने जो लुनाई पायी थी, उसकी सराहना गयासुदीन जैसे निरस ठूंठ ने भी की थी पर गबरू इस उभार को देखते ही डर जाया करता था।

वैसे घोड़े बेचकर सोया करता। ढेला मारने पर भी न जागता, पर न जाने क्या होता था कि जब कभी सफीनो सुबह-सुबह दूध देने आती, वह जाग जाया करता था और मुंदी आंखों ही कह देता—'वहां सीके पर ढाककर छोड़ जा।'

उस दिन भी ऐसा ही हुआ तो सफीनो बिफर गयी। चेहरे पर तलवार की धार तन गयी—'मैं दूध लेकर नहीं आयी। उठ, चलकर देख। तू पड़ा सोता रहा और मेरे घर एक झोटा क्या कुछ न कर गया।'

गबरू हड़बड़ाहट में उठ खड़ा हुआ। लुंगी संभालते पूछा—'कौन, भैंसा? कैसा था? क्या किया, अब किधर गया?' एकसाथ इतने सवाल सुनकर सफीनो का गर्म माथा और भी भन्ना गया। उसने भी तुर्प-ब-तुर्प जवाब दिया।

'कौन था, नाम नहीं बतला गया। काला धैः था। मेरी भीत ढहा गया, चौखट गिरा गया। किधर गया, जानती नहीं। अब तूं चल। मेरे घर का हाल देख। भैंसा मेरी भूरी का टखना तोड़ गया। उस पर पुलटिस चढ़ा।' और वह हाथ झटकते लौट चली।। जानती थी, जैसे भैंसा भूरी के पीछे लगा चला आया था, वैसे ही यह भी आयेगा पर दोनों के आने के इरादे में फर्क।

गबरू ने आकर भैंस की हालत का जायजा लिया तो सब देखकर बोला—'तू भी सफीनो भाभी कैसी है! अरणा तेरे दरवाजे पर खुरीं करता रहा। तेरी भैंस का दरवाजा तोड़ गया पर तैंने मुझे खबर तक न की। बेमुराद भैंसा मुझे मिले तो समझूं।'

गैर अख्लाकी (अनैतिक) अल्फाजो के साथ गबरू ने भैंसे की बेमुरादी बखानी तो वह कुढ़ गयी। उसके गालो पर फिर तलवार की धार तन गयी। मन किया फिर तुर्प-ब-तुर्प जवाब दे। कहे—'भैंस की मुराद पूरी कर गया भैंसा बेमुराद नहीं। बेमुराद तू है कि आज तक एक कोंपल भी न सींच पाया।'

पर उसने देखा कि उसके गालो पर उभर आई धार को देखकर वह घबरा गया है तो तकरार न बढ़ाई, अगर जुरंत हार गया तो भैंस को उठा भी न पायेगा।

उधर गबरू भी अपनी गैर अख्लाकी लफ्फाजी पर शर्मिंदा था। सफीनो के सामने उसने कभी कोई गुस्ताखी न की थी। अतः जीभ काटते बोला—'भूरी को खड़ा करना होगा, तभी टखना सामने आ पायेगा। तू बस, जरा पूछ थाम रखना। उठा मैं खुद दूंगा।'

भैंस के सींग उसकी मुट्ठियों की जुम्बिश में जकड़ गये। भैंस थरथराती-सी उठ खड़ी हुई। सफीनो ने पुलटिस चढ़ाई। कसकर कपड़ा बांधा तो गबरू ने सींग छोड़ दिये। भैंस थिर खड़ी रही।

'टखना टूटा नहीं है। मोच भर खा गया है। तीन दिन बाद पुलटिस पलटनी है। तेरे ताबे जख्मायल भैंस न आयेगी। मैं आकर पलट जाऊंगा। पर वह भैंसा लौटकर आये तो जरूर बतलाना। उस सूरमा से जोर आजमाई को बड़ा मन करता है।'

सफीनो ने उसे पलटकर देखा, पर उसके गालों पर तनी धार को देखकर गबरू पसीने-पसीने हुआ चला गया और अपने आंगन में आते ही चारपाई पर पट पड़ गया।

और इधर भैंस के गात से उतरी झुरझुरी सफीनो के तन पर चढ़ रही थी और वह अस्थिर हुए जा रही थी। पर भैंस प्रकृतिस्थ होकर सींग चलाने लगी थी पर थान पर मुंह तब भी न मार रही थी। अलबत्ता जुगाली लेने लगी थी। उसे जुगाली लेते देख सफीनो ने उबासी ली। दोनों बांहें उठाकर तन तोड़ा पर मन अलसाया ही रहा।

'ले तेरा मन भरा है तो अब पेट भी भर। मुरादों वालिये। मूंह खोल, तुझे गुड़ खिलाऊं। दुधारू न होती तो मरी का मुंह झलोंस देती। अब अपनी गरज तुझे चरी डाल रहीं हूं, खली खिला रही हूं। ले, चने की चूरी भी डाले देती हूं।'

चने की सूखी चूरी की गन्ध नथुनों में समायी तो भैंस मुंह मारने लगी।

'तब बड़ी छिडिया रही थी। खूंटा तुड़ा रही थी। हरी होने को जोहड़ी का किनारा तो था फिर उस यार को घर तक क्यों लायी? खयाल मौन हो गये। खूटे पर जबरी बांध दिया तो वह कैसे जाती। जबरी को हर कोई मारी है। वैसे यह जानवर की जात सुखी है। हरी होने तक हिरस, (चाह) हो जब गयी तो याद भी न रहा—कौन था, किधर गया। भाग्य से आज इसे दान्ना (जबर) झोटा भी मिला, एक फदाक में ढूढी कर गया, पर यह गबरू तो उसे सदा जलाता ही रहा है।

'''उसके गांव में दंगल चल रहा था। एक नई उठान का छोरा अपने से दुगने जोड़ वाले पहलवानों को पटकी दिये जा रहा था। मर्द मानस चोख-चोख-कार उसे थ़ापा दिये जा रहे थे, पर कुंवारियां दूर बैठी मुंह बाये देखे जा रहीं थीं। वह भी उनमें एक थी।

उसी रात उसके अब्बा-अम्मी के बीच बात चली—'छोरा सफीनो के हाण-जोड़ (हमउम्र) है। जात-बिरादरी का भी है। उसके लिए ठीक तो रहेगा।' उसके अब्बा ने भी छोरे की सराहना की।

'तो बात चला देखो।'

'मगर किससे? उसके वालिदहून तो हैं नहीं। एक बड़ा भाई है पर जराम-पेशा।' 'तब और भी आसान है। गबरू खुदमुख्तियार है। बात आसानी से बन जायेगी।'

और फिर कैसे, क्या बात चली, सफीनो यह तो न जान पायी पर जल्द ही निकाह हो गयी। पर पहली ही रात उसकी मुराद मर गयी। आधी रात गये जो मर्द आया उसके पांव लड़खड़ा रहे थे। वह दारू में धुत था। स्याहा-काला चेचक-रु-चेहरा। जहां-तहां मुंहासे भरे। वह आया तो कोठे में बदबू का भमका सा छुटा। उसने न सफीनो का मुह देखा न बात की। अपने रुखड़े, कड़े हाथ फैलाये एक झोंके के समान वह उसकी ओर बढ़ा पर बीच में ही ढह पड़ा। उस झोंके की चपेट में आकर लालटेन भी औंधा गयी। भक्क-भक्क करने लगी। शीशा उसका भी स्याह हुआ और तड़क गया। वह भागने को हुई, पर मर्द की अटंगी बीच में अड़ गयी। मुह के बल गिरी और शीशे के टुकड़े उसके दोनों गालों पर झरीट मार गये। उसके जेहन में भी एक तारिकी (कालिमा) घिर आकर बोली।

'तू कौन?'

'मैं तेरा शौहर।'

'पर तू गबरू तो नहीं।'

'वह मुकर गया। उसमें इन्ना (इतना) गुदा (जुरंत) कित्त (कहां) के जोरू दी जहमत पाल सक्के। मैं ओहदा बड़ा भ्रा गयासुदीन।'

सफीनो को एक धचका सा लगा। उसका मुंह जमीन में गड़ा जा रहा था। उसके तीन दिन चारपाई पर पड़े गुजरे थे। न नींद आयी थी, न कोई दिवा-स्वप्न देखा था। बस, डिडियाती भैंस और मिट्टी उकेरते भैंसे को देखती भर रही थी, किन्तु अब बैठे-ठाले ऊंघने लगी थी और बीते भूतहा विगत के डरावने ख्वाब देखने लगी थी।

वह अपनी गर्दन को झटका देती उठ खड़ी हुई। आधे खुले बाल उसके चेहरे पर आ पड़े। नितान्त रुखड़े, न कोई गन्ध न सुगन्ध। कब से तेल भी न डाला था। मन किया नहा ले। मन-तन भरी भैंस खड़ी जुगाली ले रही थी। वह पूरा थान साफ कर चुकी थी। सफीनो को भी कुछ खा लेने का खयाल आया। नहाना मन्सूख कर चूल्हे में फूंक मारी। भीगा सिहलाया अगहनी ईंधन एक बार बुझ गया तो फिर चूल्हा धधकाते आखें लाल तमोल हो जायेंगी। रोटियां सेंकी। तरकारी बनाने की जहमत न की। अकेली लुगाई का क्या; अचार को फांक के साथ निगल लेगी। थाली परसने लगी तो विचार आया—वह भी बड़ा भूखालू है। आज भोर से ही मेरे झंझट में फंस गया था। लौटकर गया तब भी गिरा-गिरा था। जानती हूं, वह मेरे गालों की धार से डरता है। लाख जतन करती हूं, जैसे मन के घाव को वैसे ही तन पड़ी खरोंच को भी ढाककर रखू। वह भी दीदे (नजर) झुकाये ही रहता है। पर जिस चीज से बचो वह नजर आ ही जाती है। चतुर्थी के चाद को कौन देखना चाहता है, पर उस रात अकसर नजर उधर उठ ही

जाती है। वही चौथ के चांद की अशकुनी धार मेरे चेहरे पर चिपक गयी है।

उसे कई दिनों से खालिश दूध भी नहीं मिला। मोल का दूध तो कोरा माठी होता है। जैसे उसे सोता देखा है, आज उसका खाना भी जा देखूं। न पकाया हो तो यहीं खिला दूं।

चौथ के चाद की धार न दिखे इस लिहाज से नाक तक ढंक लिया। गली पार ही तो पचास पावड़ों पर उसका न्यारा घर था। क्षणेक में जा पहुंची। गबरू अभी पड़ा सो रहा था। खुटका न किया। कच्ची नींद उठ खड़ा हुआ था। अब नींद पकने दू। चूल्हा जैसे कई दिनों से ठण्डा पड़ा था। कई मर्द तो रोटियां ऐसी पकाते हैं कि लुगाई देखे तो लार टपक जाये, पर यह अनाड़ी तो गोबर भले पाथ ले, आटा गूथना क्या जाने। घर का भी क्या हाल बना है। इससे गधों का तवेला अच्छा। किसी दिन आकर लीप जाना होगा।

गबरू अलसाया जरूर था पर नींद न आयी थी। मन भारी हो रहा था। सोच रहा था—'अपने को धिक्कार भले लू, पर अपना कोई दोष तो पाता नहीं। घर न्यारा बनाया तो उसी की आबरू बचाने के लिए। मर्द का क्या। दांतो तो औरत चढ़ती है। उसके काम को कभी नाटता नहीं, पर उसके गालों पर धार उभर आती है तो सलीका बिगड़ जाता है। दो से एक घर बना नहीं पाता। वह बर-जोरी है। जिस पर न मेरा जोर न उसका ताबा पर उसकी तो सहनी ही है।'

सफीनो दबे पावों आयी थी। खड़ी भी ओट में थी। पर जैसे गन्ध पहचानी है। गबरू उबासी लेते उठ बैठा।

'फिर कैसे आयी सफीनो भाभी? तेरी भैंस तो खैर कुशल है?'

सफीनो आने का मकसद भूल गयी। धार तन गयी। 'आई तो हूं। तू कहे तो लौट जाऊं।' अब गबरू क्या जवाब दे, मुंह बाये सुनता रहा।

'तुझे भैंस की फिक्र खाये है रे। उसको हुआ क्या? जरा भर टखने में मोच खाकर ब्यावन तो हो गयी। पर जैसे भैंसा भीत फांद आया वैसे ही किसी दिन कोई फदाफकर मेरी मिट्टी पलीत कर जायेगा, तब क्या होगा? कभी सोचा?'

गबरू धरा रह गया। उसकी आंखो में खून उतर आया। तड़पकर उठ बैठा। 'खून न पी जाऊं। किसकी जुर्रत जो गबरू के घर की अस्मत को मानी आंख भी देखे। दीदे फोड़कर मिर्च भर दूं। तू नचेती (निश्चिन्त) सो सफीनो भाभी।'

'अपने जुर्रत पर सोती हूं कि रातें आंखो में निकालती हूं यह तो मैं जानू।' तू क्या जाने रे। दो घरों के बीच अब गली है। भैंसा भीत गिराकर धम्माका तो करता है। चार आदमी तो भनक नहीं पड़ने देता। तू ढोल बजाये तो हटाना नहीं। दूर पड़ा तू क्या पोहरा देगा रे। अपनी चौकस्री याद। [illegible] धनकर भीत भर उठा दे। चौगट जमा दे। धाई तेरी [illegible]'

और सफीनो हाथ झमकती लौट चली। लौटकर वह भी मांची पर औंधी गिर पड़ी। फफकी, रोई। 'तेरा मुंह जलाऊं रे मेरे भीतर की लुगाई। मैं तो गयी थी न्यौता देने और तू झगड़ पड़ी।'

अभी जी भर रो भी न पायी थी कि गबरू आ पहुंचा। उसका तहमद घिसट रहा था। आंखें सूजकर फफोला हो गयी थीं। सफीनो की अपनी छाती में ही धकचाल मच रही थी।

'तू भी रोया है रे। मर्द जब पूरा टूट जाता है तभी रोता है। मैं लड़ने थोड़े गयी थी रे। तू भी कब लड़ा है। वह तो मैं ही हूं जो तनी रहती हूं।' ऐसे ही बहुत कुछ कहना चाहा पर कह न सकी एक बात भी। बस, अपने को भरसक ढीला छोड़ा।

गालों पर धार न खिंच जाये। माथे पर सिकन न पड़ पाये। भरपूर खयाल रखा।

गबरू थोड़ी देर आंय-बांय ताकता रहा। फिर पूछा—'मिट्टी तो होगी?'

'उस कोने में है रे।' सफीनो ने अंगुली के इशारे से बताया। गबरू उसे उकेरने लगा। 'इंटें तो यही जोड़ साध धरूंगा। अभी तो चलेगा। जब जोहड़ी सूखने लगेगी, नई इंट पाथकर मजबूत भीत तामीर कर धरूंगा।'

गबरू गारा बनाने को हुआ तो सफीनो ने टोका—'थोड़ा सुसता ले रे।'

गबरू जमीन पर उकड़ू बैठ गया। सफीनो मांची उठा लायी—'कभी कोई अपने घर मे ऐसे भी बैठता है।'

गबरू मांची के पैताने शरीर सिकोड़कर बैठ गया। सफीनो के गालों पर हलकी सी मुलक झलकी। होंठ झीने-झीने फैले। 'अरे रे'''क्या करता है। तेरे बोझ से तो धरती धमक जाये। गरीब की मांची न तोड़ देना। बीच मे बैठ, जरा बीच में।'

गबरू निहाल था। जब से आया था, हवा ठण्डी सी चल रही थी। पर 'गरीब' विशेषण सुना तो फिर रुंआसा हो गया। बेबस-सा बोला—'तेरे पास धरती। तेरे घर धीना (दुधारू पशु)। तेरा रुस्मत जैसा देवर, फिर तू अपने को गरीब क्यू समझे सफीनो भाभी।'

'कुदरत गरीब जोरावर नही बनाती रे। ये तो तेरी मर्द जात ने सिखाया कि औरत गरीब बनी रहे तो जीये न तो हलाक कर दी जाये।'

'गली भर की दूरी दूर नहीं। जी छोटा न कर। वह तो दीन की दीवार है जो दो घर किये हैं। वैसे मेरा घर तो यही है। कई बार मन होता है। क्या धरा है इस सराफत में। यह इत्ता जबरतन जिन्दगी भर अखाड़े की मिट्टी में घिसने को बना नहीं। मना करता है एक वार सोहदा बन देखूं। पर तब भी दीन ही आड़े आता है।'

'तेरा दीन मर्द को जनखा बनाता है। लुगाई को गरीब बनाता है। दूरियां

और मजबूरियां पैदा करने को ही तेरा दीन बना है। मैं उसे नहीं मानती।'

'तू दीन को नहीं मानती?'

'मैं अल्लाहताला को मानती हूं, जो बड़ा मौला है। वह तोड़ता नहीं जोड़ता है रे।'

उस अल्लाह की मर्जी पर ही तो पैगम्बर ने दीन खड़ा किया है।'

'पैगम्बर बड़े मुन्सिफ (न्यायी) थे। उन्होंने बेइन्साफी कब की। घपला तो दीनदारों ने किया है। पर सरीयत, कुरान की बात न तू जानता है न मैं जानती, फिर बहस क्यूं करें। पहलवान है, भूख की बात कर। सुबू से निराहार है। तू सुसता, मैं रोटियां सेंक लाती हूं।'

हवा हलकी-हलकी थी। गबरू सुसताने लगा। सफीनो ने काफी सारा आटा गूंधा। झाड़ चढ़ी बेल से कच्ची-कच्ची तोरैंया तोड़ लायी। सालन बनाया। पर जब थाली भर लायी तो गबरू चक्कर में पड़ गया। भूख तो सुबू-सुबू ही मर चुकी थी। अब जरा ताजगी महसूसने लगी तो थाली ले आयी। अब अगर नाटा तो उमस फिर-घिर आयेगी। कलेजा ही मुह को आ रहा था। खाये तो कैसे खाये। अतः बात बनाते बोला—'रोटी खाई कि पहलवान गया काम से। फिर तो ऐसा पड़ूगा कि तेरी माची भले ही टूट जाये, मैं तो न उठूगा।'

'चालाकी भी जानता है। बनता बड़ा मासूम है। सीधे से नहीं कहता तेरे हाथ की रोटी नहीं खाता।' सफीनो फिर गर्म झोके में बह चली—'रोटी न खायेगा तो आया ही क्यो? तू कोई कारु-कमान नहीं कि काम की उजरत में तुझे रोटी खिला रही हूं।'

गबरू का मन किया कि अपने को मिट्टी के ढेर तले दबा ले। 'खा लूगा सफीनो भाभी। जब से तेरे हाथ की रोटी छूटी, खाया भी कब है। पेट भराई को कुछ ठूसना पड़ता है। काम निपटाकर आज नेठाव (धीरज) से खाऊगा।'

सफीनो मूहड़े में आंचल दबाकर चली गयी। थाली धरी रही। दोनों की मिली मेहनत से दीवार उठ गयी। दमघोटू खामोशी छाये रही। न वे बोले न दीवार बोल पायी। काम मुक गया तो सफीनो बाल्टी भर पानी भर लायी—'जा, टाट की ओट नहा ले।'

गबरू यदि कहता, घर के दूसरे कपड़े ले आऊं तो फिर तनाव का चदोवा तन जाता। अतः शरमाता रहा, नहाता रहा। अलिफ नंगा तो न था। पर सफीनो पानी धरकर जो कोठे में हुई तो गबरू के टाट की ओट से बाहर आने पर ही लौटकर आयी।

उसने रोटी-भाजी फिर से गर्म की। फिर थाली ला धरी—'ले खा।'

'तू खा चुकी?' इत्ता भी नहीं जानता मर्द से पहले औरत कैसे खाये? पर मुह आयी बात रह गयी—'तू यहां खा। मैं वहा कोठे में खाती हूं।' पर दोनों ने

एक-दूसरे से चोरी की। न यह खा पाया न उसने खाया।

'मुद्दत बाद ऐसी अकरी रोटी मिली है।' और गबरू ने टाट की ओट ठण्डी जगह घुस आये कुत्ते की ओर एक बड़ा-सा कोर फेंक दिया।

'तेरे मुंह का जायका अभी बना है रे। शुक्र-खुदा का। सालन भी खा।' और सफीनो ने बड़ा सा टुकड़ा कोने में दुबकी बैठी बिल्ली की ओर सरका दिया। यूं आंगन और कोठा बतियाते रहे। टुकड़े फेंकते गये। शेष रह गया दोनों ओर सालन। सो तीती जीभ वाली सफीनो तो सारा सटक गयी। पर लुगाई के हाथों तर मिर्चें पड़ी भाजी खाते गबरू पसीने-पसीने हो गया। तभी सफीनो मुंह पोंछते बाहर आयी तो गबरू ने डकार लेना चाहा। पर डकार न आयी। आंखें जलजली हो गयीं। गला जलने लगा।

सफीनो के ओठ वक्र हुए। उज्जले दांत कुछ चमके। हंसी भी तो बड़ी झीनी। 'जहर खाने को तो औरत ही बनी है। मर्द तो बस मीठे का मारा है। थोड़ी शक्कर चाट ले।' और वह घी से तर कटोरा भर शक्कर ले आयी। 'सुना है शक्करखोर का दम नहीं उखड़ता। रोज खाया कर, तेरी पहलवानी चलती रहेगी।'

'तू न खायेगी।'

'हिश्श! औरत शक्करखोर हो जाये तो घर कैसे चला पाये। और औरत की जीभ वैसे भी तीती होती है। चटपटे पर चलती है।'

गबरू शक्कर खाता रहा। सफीनो भांड़े मलती रही। 'यह कैसा शक्कर-खोर? जीभ से खाता है, पर आंखें मीठी नहीं करता। देखता नहीं सामने मिसरी की डलिया पड़ी है।' देगची की कालिख न उतर रही थी।

'यह काण का मारा है कि लोग ठीक कहते हैं कि पहलवान नहीं'''वह तो चेहरे पर उतर आता है। इसका चेहरा तो पनियल है। नजर इसलिए नहीं उठाता कि मर्द की नजर एक बार उठी एक कि कुफ्र कर गुजरने पर ही झुकती है।'

भांड़े रसोई में धर, हाथ-मुंह धोकर लौटी तो गबरू जा चुका था। 'आदत गयी नहीं। तब भी यूं ही खिसक जाया करता था, जब गयासुद्दीन उसके सर तोहमत धरा करता था। उसके सर शुरू में ही शक का सांप चढ़ गया था। दारू के भभके छोड़ते घर में आता और दीवारें सूंघने लग जाता। कुछ दिन दीवारों को सुना कर ताने कसता रहा और जब वह झगड़ने पर उतर आई और गबरू उसकी तरफदारी करने लगा तो लोगों को सुना-सुनाकर देवर-भाभी के बीच रिश्ते कायम करने लगा।

'हरामजादी मफरूर (गुप्त) तौर पर इस भैंसे के इश्क में मुबतिला (फंसी) है। किसी दिन धौली चद्दर उढ़ाके एणू दफा कर छड्डूंगा।'

गबरू जरायम पेशा मे तकरार करता तो बात बढती। जग हंसाई होती। इसलिए जब वह बहकता होता वह खिसक जाता। धीरे-धीरे उसे सोता छोड़ घर से निकलने लगा और उसके सो जाने पर गली में मांची ढाल पड़ रहने लगा।

सफीनो गुमसुम बैठ रही। कहीं झोटा डकार रहा था। 'तो गया नहीं। यही कहीं आसपास है।'

थोड़ी देर में गबरू गांव के बढई को साथ लिये फिर आ पहुंचा। 'तुझे खयाल न रहा। मेरे तो ध्यान मे था कि चौखट चढ़ी ही नही है। इसलिए इस बढई के हुक्म को पकड लाया हू। वैसे तो मेरा लंगोटिया है। पर अब जरा बसोली क्या थामने लगा है, पूरा फन्नेखा बन गया है। बड़ी ची-चप्पड़ करता है। हरामी वही झोटा बीच तलैया पडा डकार रहा था। बड़े ढेले मारे पर बाहर न आया। मैं तो बीच जोहड़ी ही जा धरता, पर इसने टोक दिया। बड़ी मुश्किल से तो गांव में एक चोखा झोटा आया है। भैंसे हिर्साई मर रही थी। अब तू इससे सींग अड़ा भगा देगा तो फिर लौटकर न आयेगा। इसी से मन की मुराद पूरी न कर पाया। बात इसकी ठीक लगी।'

बढई चौखट की ठोक-पीट करता रहा। गबरू बोलता गया। अकेले में वह सफीनों के आगे बोल न पाता था। बीच मे तीसरा था तो चुप ही न हो रहा था। चाहत बोले जाती रही।

'हूं। तो मन में चोर तो है इसके भी। चाहत का खेल निराला है। गूंगे के गुड़ का मजा लेता रहा है। यह तो तरबतर है। वह तो मैं ही तार-तार हूं कि भीतर को फाड़ धरे हूं।'

सफीनो ने पहले पहल महसूसा और अपने को छोटा समझने लगी। मन की चाहत चुप्पा होती है। तन की हवस बोलती है। तनी रहती है।

'अपने को ढीला छोड़ सफीनो। बन्द पोथी नहीं। खुली सफीना (किताब) बन। अपने आपर आप पढ़।' उसके भीतर की लुगाई बोल गयी। 'औरत की चाहत मर जाये तो वह चेहेते से नफरत क्यो करे। नफरत की बेल जब परवान चढकर फैलने लगती है तो जलभुन कर फिर चाहत की खाद खाकर फूलने लगती है। भैंसे ने गुर्रा दिया। भैंस हरी हुई तो गबरू से क्यों उलझी। समझा मुंह झोंसी। अब भी अपने को ढीला छोड़।'

तो भीतर वाली नहीं। मैं बाहर वाली ही लड़-भिड़ रही थी।

बढ़ई चोखट चढ़ाकर जा चुका था। गबरू ने कहा—'तो जाऊ भाभी।'

सफीनो चुप।

'हां याद आया। रहीम खां की ढाणी मे बुलावा आया है। वहां कई दिन दण्गल चलेगा। जाऊं कि नहीं? वैसा रात को फिर आ सकता है। तेरी भीत

अभी गीली है। चौखट भी पूरी जमी नहीं। न हो···। न जाऊं।'

'आज पूछता है। जैसे रोज ही पूछकर जाता रहा है। हफ्तों बाद लौटकर आता है। मैं देखती रहती हूं, उस घर में चिराग कब जले। गली पर आंखें बिछाये रहती हूं।'

फिर आपा भूल गयी। तू घर छोड़कर चला गया, मेरी बरजना न मानी। फिर आवारा हो गया। जा, आज भी चला जा, जहां आंख लगी है।'

गबरू धचाक से बैठ गया। यह पहले वाली सफ़ीनो भाभी है कि कोई दूसरी। शायद भैंसे की दहशत बैठ गयी है। इसी से बहक गयी है। मुझे आवारा कहने लगी है। मैं किसी की दिल्लगी का शिकार हूं। मेरे लंगोट की सच्चाई सारा इलाका जानता है।'

अभी-अभी भीतर घटी को याद कर सफ़ीनो बुझ गयी। 'तू जा रे। तेरी रोजी का सवाल है। मैं दिलजली तो यूं ही बहक जाती हूं। यहां भी रहेगा तो कौन मेरे कोठे की रखवाली करेगा।'

····'और हां। सुन, एक बार भैंस को हुरी कर चुका झोटा फिर उसी खूंटे पर नहीं लौटता। और कान फड़ाकर, मुद्रा डालकर, जोगिया बाना धारकर जो घर छोड़ जा चुका वह मर्द फिर उस घर में आकर घरबासा नहीं कर सकता।'

गबरू थोड़ी देर उसका मुंह ताकता रहा। फिर चला गया।

हवा में नमी थी। अगहनी बयार चल रही थी। पर सफ़ीनो का डील गर्म तवा बना था। माथा फटा जा रहा था। वह टाट की ओट बैठकर नहाने लगी। अपने ही उरोजों पर नजर पड़ी तो शरमा गयी। कंपकपी चढ़े जा रही थी। जल्दी जल्दी कपड़े बदल, धूप में खड़ी हो बाल सुखाती रही। घुंघराले, काले कजरारे बाल टखनों तक लटके थे। गर्दन झटकी तो मुंह पर बुर्के के समान पड़ गये। तेल चुपड़ा। रोज कसकर चोटी गूंथती थी। अब बाल ढीले-ढीले छोड़ दिये। शीशे में घूरती रही। गालों पर उभरी धार भली-भली लग रही थी।

आज जानकर गुत्त (चोटी) ढीली छोड़ी थी। तब हड़बड़ी में बाल ढीले रह गये थे। वह भी अगहनी सांझ थी। आसमान अभी-अभी सुरमई था फिर कजरा गया। सफ़ीनो हरीकेन के प्रकाश में गुत्त बना रही थी। तभी चौखट पर खुटका हुआ। गयासुद्दीन आ रहा था। हड़बड़ी में गुत्त बांधी कि वह आ गया। ढीली गुत्तवाली बड़ी सोहनी लगी। लाड़ लड़ाते बोला—'डर नहीं मलकिये (रानी)। मैं कोई गैर मर्द नहीं।' फिर उसकी ठुड्डी उठाकर जी भर घूरा। गालों पर उभरी धार को सराहा।

फिर बदबू का भभका छोड़ते बोला—'ओ ये मैं हरामी। चिन्द दा टुकड़ा मेरे घर बैठा से मैं गली गवाड़ लबदा (ढूंढता) फिरा। चल उठ, पी··· ···

मुराद पूरी कर। मैं वो वन्दा नहीं के तेणू किसी दी हवस दे हवाले करां। पीर जी सिद्ध पुरख हण। फरे आलिया। बस, इक रात तेण आगे बैठा के तस्बीह दे मनके घुमादे रहण। तड़के तक सिद्धि परापत हो जावेगी। ते गण्डा (जंतर) बना के मेरे गले पा देवण। चुप करके मेरे नाल चल। रोला पाया तो घेटवा घोट मारां दा।'

सफीनो नहीं-नहीं करती रही। वह उसे घसीटता रहा। उसकी गुत्त खुल गयी तो मानो साथ ही नागिन पिटारे से निकल आयी। उसने गयासुदीन को धक्का देकर कोठे में पटक दिया और बाहर से सांकल चढ़ाकर दरवाजा रोककर बैठ गयी। गंजेड़ी पड़ा बहकता रहा।

तभी गबरू लौट आया। उसे देख नागिन फुत्कार मारने लगी। मुद्दत से जमा आक्रोश फन बन उफनने लगा। 'नाजोगता तू जरूर खुसरो (नामर्द) है। अपनी लुगाई बनाने की तेरी जुर्रत न थी तो इस जिन के साथ मेरी निकाह क्यों पढ़वाई। यह कलमुहा बेगैरत है। मुझे पीर की सीरनी बना खुद उसके तकिये का वारिश बनना चाहता है। अभी गुत्त पकड़ लिये जा रहा था।'

वह जारवेजार रोने लगी। गबरू की एक लात के साथ कोठे की चौखट वह पड़ी। पीर की संगत में गयासुदीन गले में मनके डालने लगा था। लम्बे-लम्बे पट्टे (केश) रखने लगा था। झटककर पकड़े और मार धुहधड़ दहलीज से बाहर पटक दिया—'अब इस देहली मे लौटकर आया तो दीदे फोड़ दूगा।' मोहल्ले वाले गयासुदीन की हरकतें जानते थे। जब से पीर के तकिये की राह पकड़ी थी, गली-टोले की जनानियों को फुसलाने लगा था। उन्होंने भी टोले में फिर लौट आने पर टांगें तोड़ देने की चेतावनी दी।

कई रातों सफीनो घर के आंगन मे और गबरू गली मे सोता रहा। सरदी बढ़ी तो मोहल्ले वालो ने समझाया—'तू अन्दर ओसारे में सो। बाहर ठण्ड खा जायेगा।'

मोहल्ले वाले उसके लंगोट की सच्चाई के कायल थे। पर वह अपने मन की जानता था। अतः सफीनो से बोला।

'भाभी मैं गली पार बाड़े मे जा बसूगा। यह घर, खेत, जानवर सब तेरे। मैं दगल की आमदनी पर गुजारा कर लूगा।'

'यह तेरी-मेरी बात कैसी रे। और तू बाड़े मे क्यों जायेगा। भाई से न्यारा नही हुआ अब अकेली लुगाई को किसके हवाले कर चला।' अनचाहे के गले तूने डाला। मैंने तो चाहा न था। अब चद्दर डाल। चूड़ी पहना। बोल रे। हा क्यू नी कहता।'

'भाभी तू न वेवा हुई न तलाकशुदा। ऐसे में निकाह कौन करायेगा ?'

और फिर दो घर बन गये ...। बचे तेल से सफीनो ने भैंस के थन चुपड़ाये

सरदी गहरा आयी थी। उसने ओसारे में चारपाई डाली और पड़ रही। चिराग न बुझाई। गवरू से जो कहा वह और था झोटे का क्या भरोसा फिर दीवार फांद आये।

बाहर ओस गिर रही थी। पर सफीनो के भीतर गर्म भांफ घिरी थी। ताहखी लगी थी। पर मीठा पानी नहीं मिल रहा था। खारे समन्दर में बहे जा रही थी। अचानक हबड़क कर उठी। अभी उसके सिरहाने खड़ा भैंसा डकार रहा था। नही'''जंजाल था।

'''कोई दरवाजा भड़भड़ा रहा था। शायद गवरू आया हो। भैंसे के लौट आने की आशका से सभालने आ गया हो। पुकारा—'कौन ?'

प्रश्न हवा की सनसनाहट में खो गया। आंधी चल रही थी। इस मौसम में आंधी। शायद मेंह लेकर आयी है। नीद नही आयी। पड़ रही।

उधर गवरू की नीद उचाट। भैंसे का क्या भरोसा शायद आ ही जाये। सफीनो भी ऐसी कौन ज्ञानी है जो जानवर के मन की जाने। उसकी भीत भी गीली है। चौखट भी अभी जमी नही। न हो, एक बार जाकर संभाल लूं। वह उठा। हाथ में लाठी झुलाते चला। गली पार कर देखा। झोटा तो न था। हां, सफीनो दरवाजे तक आई और चली गयी थी। वह तो अच्छा था मुझे देख न पाई वर्ना न जाने क्या शक धरती। वह लौट गया यह सोचते।

'सो जाऊ। एक बार भैंस को हरी कर गया भैंसा लौटकर न आयेगा। और कान फड़ाकर, मुद्रा डालकर, जोगिया बाना धारकर जो घर छोड़ जा चुका वह मर्द फिर उस घर में आकर मरवासा नही कर सकता।'

पक्की खबर थी। गयासुदीन कनफड़ा जोगी बन चुका।

भोर हो गयी। गवरू सफीनो के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। भीत बराबर थी। चौखट जम चुकी थी। रातभर चली आंधी थम चुकी थी।

सफीनो ने देखा तो हाथ के ओझाले (इशारे) से भीतर बुला लिया।

'सफीनो तेरी भीत पर्क गयी। चोखट जम गयी।' 'स'''फी'''नो! भाभी '''नही। हूं' सफीनो ने गालों को पल्लू की ओट छिपा लिया। कहीं वह कटखानी धार फिर न उभर आये।

'कल तेरी रोटियां अकरी थी। आज भरपेट खानी है।'

'ना रे। तेरी आदत खोटी। तू अपने मुह का कौर कुत्ते को डाल देता है। क्या भरोसा वह कुत्ता फिर लौट आये और तू अपना निगला उसके आगे डाल दे।' और उसे न जाने क्या सूझी। खिलखिला पड़ी।

गवरू बुत्त और उधर सफीनो की गुत्त खुल गयी। बाल टखनों तक लहराने लगे।

ईसाइयो की कब्रगाह से थोडा ऊपर, एक ढलावदार कटाव को अपनी छाया से घेरते, एक सघन देवदार की अवस्थिति आज भी वही की वहीं है। उसकी बगल में बहता पगला झोरा (पागल झरना) आज भी वैसे ही दहाड़-दहाड़कर पछाड़े खाता है। जैसे मेरे वियोग में, मेरी बेवफाई को ललकारता है। कब्रगाह में सलीबों से चिन्हित तरतीबवार चबूतरे। हर चबूतरे पर लगभग तीन फीट ऊंची एक सङ्तीर और उससे झूलती मृत की परिचय-पट्टिका। नीचे अतल में आबाद परियों का शहर। कोहरा छटने पर ही कभी-कवार उनके मकान-महल दृष्टिगोचर होते हैं पर आकाश से उतरी-इपासियो के हाथों सजायी गयी दीप-माला के समान टिमटिम करती विद्युत प्रकाशावली पंक्तिवद्ध सदैव दिखाई देती है। कोहरा होती विद्युत्-घटा, आकाश खुलता हो तो अपरूप छटा।

अपनी अंतिम दार्जिलिंग यात्रा का पूर्वार्घ तो उस वीरानी दफनगाह में एकाकी ही कटा पर उत्तरार्ध मे एक आयाचित साथी मिल गया।

उस संध्या धुंध कुछ ज्यादा ही थी। किन्तु अपराह्न के बाद वर्षा नहीं हुई थी। अचानक एक सलीब के कोण को काटते हुए एक मानवाकृति आती नजर आयी। मैं जिस चट्टान पर बैठा था, उसी पर बगल में मैंने अपना रेन-कोट उतार छोडा था। फिर भी पर्याप्त स्थान खाली था।

आगन्तुक चट्टान के दूसरे छोर पर आकर निर्विकार सा बैठ गया। उसने किसी औपचारिकता का प्रदर्शन नहीं किया। साधारणतया ऐसे अवसरों पर औपचारिकता यूं प्रारम्भ होती है। आगन्तुक पहले से स्थान दखल कर बैठने वाले से पूछता है :

'यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं भी थोड़ी देर के लिए यहां बैठ जाऊं।'

किन्तु औपचारिकता के नाम पर उसने तो दुआ-सलाम तक न की। मेरी ओर घूरा तक नहीं। बगल मे बैठे व्यक्ति की तटस्थता ऊबाती है। मैंने भी ऊब-भरी नजरों से उसे घूरा तो पाया कि उसकी आंखें जैसे प्राकृत न होकर किसी पारदर्शी शीशे की बनी हैं। उसके चेहरे की रंगत ठण्डी राख के मानिंद थी। और दोनों गालों पर लाल-लाल चिकते तथा ठुड्डी के बीचोंबीच एक गहरे घाव का निशान था। उसकी आकृति पर इस प्रकार उदास-उदास पीलापन घिरा था मानो वर्षों बाद किसी ठण्डी, सीलभरी कोठरी से निकलकर आया हो। और वह पादरियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाला सफेद सफाफाफ लबादा धारण किये था। उसके लिबास से एक सीली-सीली गंध उठ रही थी। जैसे खमीर से उठती है। और उसके चोगे के बीचोंबीच कोई एक इंच का गोलाकार सुराख था। जैसे दीमकों ने बनाया हो। उसकी न पलकें झपकती थीं, न पुतलियां हरकत करती थीं। उसकी पथराई दृष्टि निरंतर एक कब्र पर गड़ी थी।

प्रेतकुण्ठा

भूतकाल में जब भी दार्जिलिंग जाता, मेरी सध्याएं उसी एक विशेप स्थान के सान्निध्य मे गुजरती। वह इसाइयो की एक दफनगाह थी। वैसे पहाड़ी स्थानों पर दिन की आयु बहुत थोड़ी और रातें दीर्घजीवी होती हैं। चार बजते न बजते भीगी रात अपना सीला लबादा सरसराते आ पसरती है और दिनभर की दौड़-धूप से हारे-मादे मसृण रोवो वाले बादल रूपी मेमने हरी घास पर दुबककर सो जाते है और शुक्ल-पक्ष हुआ तो कभी कभी-कबार गगन-गंगा के तट पर अधूरा-पूरा चांद चटक चांदनी फैलाते चहलकदमी करते दिखलाई दे जाता है। पर बरसाती मौसम मे अकसर संध्या और रात की अन्तर-रेखा का आभास भी नही होता।

शौक अपना-अपना। ग्रीष्म के अवसान के साथ ही साथ सेहत की तलाश या बदफैली के उल्लास के मारे आने वाले सैलानी मैदानो की ओर लौट जाते है तो मैं वर्षा, कोहरे में धुधलाते पहाड़ पर जनाभाव मे अनावृत हो अपने अग सरसाती पर्वतो की रानी का मादल अंग-विन्यास देखने इधर चला आता हूं।

उस समय नवोढ़ा, अज्ञात-यौवना बदलियां परी-कल्पनाओ सी पर्वतों पर सरगोशियां करने लगती तो मैं सैताबी सा बदहवासी के साथ उन्हे अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठ घूरा करता। कोहरा, धुध, पगलाई बरसात, हिमपात; प्रलयकर रात, युद्धरत दैत्यो से दहाड़ते दीर्घकाय पयोद, रोते, रौरव झरते झरने, घोर नाद करती दरकती चट्टानें और बादल का फट जाना तथा कड़कड़ करती बिजली का गिर जाना मुझे इस कदर लुभावना लगता कि कभी सदेह होने लगता कि मै किसी दुर्दमनीय प्रेत-कुण्ठा का शिकार हूं।

और कोई-न-कोई दमित इच्छा मुझे उस लोकभयोत्पादक मुर्दों की बस्ती में जबरी घसीट ले जाती है। जिस दफनगाह मे बचकर निकलने के लिए आम आदमी दो-तीन मील का चक्कर लगाकर ऊपर-नीचे राह काटते गुजरता था, वही वर्जित स्थान मेरी संध्याओ का शान्त-स्थल था।

ईसाइयों की कब्रगाह से थोड़ा ऊपर, एक ढलावदार कटाव को अपनी छाया से घेरते, एक सघन देवदार की अवस्थिति आज भी वही की वही है। उसकी बगल में बहता पगला झोरा (पागल झरना) आज भी वैसे ही दहाड़-दहाड़कर पछाड़े खाता है। जैसे मेरे वियोग में, मेरी बेवफाई को ललकारता है। कब्रगाह में सलीबों से चिन्हित तरतीबवार चबूतरे। हर चबूतरे पर लगभग तीन फीट ऊंची एक सहतीर और उससे झूलती मृत की परिचय-पट्टिका। नीचे अतल में आबाद परियों का शहर। कोहरा छटने पर ही कभी-कभार उनके मकान-महल दृष्टिगोचर होते हैं पर आकाश से उतरी-रूपासियों के हाथों सजायी गयी दीपमाला के समान टिमटिम करती विद्युत प्रकाशावली पंक्तिबद्ध सदैव दिखाई देती है। कोहरा होती विद्युत्-घटा, आकाश खुलता हो तो अपरूप छटा।

अपनी अंतिम दार्जिलिंग यात्रा का पूर्वार्ध तो उस वीरानी दफनगाह में एकाकी ही कटा पर उत्तरार्ध में एक अयाचित साथी मिल गया।

उस सध्या धुंध कुछ ज्यादा ही थी। किन्तु अपराह्न के बाद वर्षा नही हुई थी। अचानक एक सलीब के कोण को काटते हुए एक मानवाकृति आती नजर आयी। मैं जिस चट्टान पर बैठा था, उसी पर बगल में मैंने अपना रेन-कोट उतार छोड़ा था। फिर भी पर्याप्त स्थान खाली था।

आगन्तुक चट्टान के दूसरे छोर पर आकर निर्विकार सा बैठ गया। उसने किसी औपचारिकता का प्रदर्शन नहीं किया। साधारणतया ऐसे अवसरों पर औपचारिकता यूं प्रारम्भ होती है। आगन्तुक पहले से स्थान दखल कर बैठने वाले से पूछता है :

'यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं भी थोड़ी देर के लिए यहां बैठ जाऊं।'

किन्तु औपचारिकता के नाम पर उसने तो दुआ-सलाम तक न की। मेरी ओर घूरा तक नहीं। बगल में बैठे व्यक्ति की तटस्थता ऊबाती है। मैंने भी ऊबभरी नजरों से उसे घूरा तो पाया कि उसकी आंखें जैसे प्राकृत न होकर किसी पारदर्शी शीशे की बनी हैं। उसके चेहरे की रंगत ठण्डी राख के मानिंद थी। और दोनों गालों पर लाल-लाल चिकत्ते तथा ठुड्ढी के बीचोबीच एक गहरे घाव का निशान था। उसकी आकृति पर इस प्रकार उदास-उदास पीलापन घिरा था मानो वर्षों बाद किसी ठण्डी, सीलभरी कोठरी से निकलकर आया हो। और वह पादरियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाला सफेद सफाफाक लबादा धारण किये था। उसके लिबास से एक सीली-सीली गंध उठ रही थी। जैसे खमीर से उठती है। और उसके चोगे के बीचोबीच कोई एक इंच का गोलाकार सुराख था। जैसे दीमकों ने बनाया हो। उसकी न पलकें झपकती थीं, न पुतलियां हरकत करती थीं। उसकी पथराई दृष्टि निरंतर एक कब्र पर गड़ी थी।

हम दो अनजाने एक लम्बी मुद्दत तक एक-दूसरे से निर्पेक्ष बने बैठ रहे। कुछ क्षण, कुछ मिनट, कुछ घण्टे। मेरा मन शनैः-शनैः जुगुप्सा से भरता गया, भीतर ही भीतर भय घिरता गया और जब सिहरन होने लगी तो जाना कि मैं उसकी उपस्थिति के प्रति निर्पेक्ष न था। वह निरन्तर मुझ पर अपने वजूद का एहसास छोड़े जा रहा था। डर-मापक कोई पैमाना नहीं, किन्तु विदाई के समय मैं भय के उस चरम-बिन्दु पर था जहां भय भावना स्वेद बनकर बहने लगती है और आदमी भागने पर आमादा हो जाता है। पहले मैंने उस भयावह मौन के वितान को तोड़ा। अपने अन्तर, अपने भीतर बचे शेष साहस को सम्पूर्णता से पकड़कर मैंने प्रश्न किया—'क्या जान सकता हू, आप कौन हैं?'

'मैं एक अंगरेज हू।' उत्तर ऐसा था जैसे मानव-मुख से निकली ध्वनि नहीं किसी गह्वर से आती प्रतिध्वनि हो। मैं सिहरा। क्षणेक को मौन पसरा। फिर प्रतिध्वनि सी आई—'नाम जानना चाहोगे तो, जान लो। मुझे जार्ज आलिवर जानो।'

'जार्ज आलिवर।' सहसा मेरा शेष साहस जवाब दे गया। सीली-सरद हवा के बावजूद मै पसीने से सराबोर हो गया।

'वह कब्र भी तो जार्ज आलिवर की ही है।' इंगित में मेरी तर्जनी सीधी उठ गयी। यह वही कब्र थी, जिसे त्रिकोण से काटते वह आया था। आया के स्थान पर प्रकट हुआ जुमला इस्तेमाल करूं तो ज्यादा सटीक होगा।

'हां, वह भी जार्ज आलिवर ही था। पर वह मैं नहीं। वह कभी इस जिले का कमिश्नर था, जबकि मैं महज एक साधारण पादरी ही रहा हू। और वह, उसके बगल में'''।' उसकी सीधी भुजा सहतीर के समान लम्ब उठ गयी। वह ''लूसी है। मैडम लूसी। क्या तुम जानना चाहोगे मेरा, मेरी लूसी और मेरे हमनाम रकीब का इतिहास?'

उसका एक-एक शब्द मेरे हृदय की धड़कन बढ़ाये जा रहा था। बड़े ठण्डे थे वे शब्द। मैंने अपना रेन-कोट उठाया और हड़बड़ी मे इस प्रकार उठ खड़ा हुआ मानो मुझे उसमे व उसकी दास्तान में कोई दिलचस्पी नहीं।

'डर गये। मैं बूढ़ा हूं भी ऐसा ही। प्रायः लोग मेरी व्यथा-कथा सुनने से पहले ही मेरा साथ छोड़ भागते हैं। पर मैं मजबूर हू। मेरे वजूद के आज केवल तीस दिन शेष है। मुझे 'कन्फेशन' करना ही होगा। अन्यथा गॉड मुझे अंगीकार न करेगा। सोचो मित्र। आज रात को सोचना। यदि तुम्हारी जिन्दगी के भी केवल तीस दिन ही शेष बच रहे हों तो तुम अन्तिम निश्चय क्या करोगे?' उसने एक-एक शब्द को चबाते हुए कुछ इस कदर उच्चारित किया मानो चेता रहा हो, मेरे जीवन की समय-सीमा तय हो चुकी है।

मैंने अब आगा-पीछा कुछ न देखा। शक्ति भर भाग चला, पर उसके शब्द

एक वर्तुल बन लगातार मेरे पीछे चले आ रहे थे। किन्तु न जाने कब से मेरे अंतस में गुलझनें, गांठे पड़ती आ रही थी कि मैं एक बुरी आदत का आदी हो चुका था। जब से इस दफनगाह की ओर आने लगा था। आते-जाते रोज मैडम लूसी और ओलिवर की परिचय-पट्टिकाओ पर अंकित इबारत पढ़कर ही चबूतरों की हद्द पार किया करता। आज इस हादसे के वक्त भी उन चबूतरो के पहले छोर पर ही मेरे कदम जम गये। मैं आगे कदम बढ़ाने भर की शक्ति भी न जुटा पाया। रुके रहकर इबारतें पढी तो पैरों की जकड़ खुली और मैं बेतहाशा दौड़ा। पर दौड़ते-दौड़ते पीछे भी पलटकर झांक जाने को मजबूर था। पादरी की पारदर्शी दृष्टि मेरी पीठ पर गड़ी थी।

उस रात मुझे पलभर भी नींद न आयी। जोड़-जोड़ दर्दरा रहा था। उसी रात क्यो, आगामी सम्पूर्ण तीस रातें मुझे दहशत के आगोश में ही बितानी पड़ी। मैं रातों शराबखानों और जुआघरों के फड़ों पर भटकता रहा। मुझे बस एक ही सवाल अभिभूत किये था। क्या मुझे तीस दिन बाद ही मर जाना है। हर रात एक संख्या घटती रही और मेरी दुविधा बढ़ती गयी। मरने से जितना न डरा, उससे कहीं ज्यादा इस आशंका से डरता रहा कि यूं मरा तो अंतकाल तक मेरी आत्मा को उस बूढ़े के घिनौने सहवास मे ही रहना होगा। समय रहते मुझे अपनी नियति आप ही निर्धारित करनी थी। दो ही विकल्प थे। अपनी आत्मा को अनन्तकाल के लिए नरक में झोंक देना या उबार पाना।

पर तात्कालिक निश्चय तो यह करना था कि आइन्दा मैं उस दफनगाह की ओर भूलकर भी न जाऊं। पर विडम्बना तो देखिये कि मुझे अगली तीस संध्याएं उसी चट्टान पर बैठकर खमीरी दुर्गंध झेलते, उसकी दास्तां आद्योपान्त सुनते बितानी पड़ी। हर अगली संध्या मैं बावजूद कठोर मानसिक प्रतिरोध के उसी चट्टान पर जा जमने के लिए छटपटाने लगता। चार बजने के साथ मेरा संकल्प ढीला पड़ने लगता और ठीक तीस मिनट बाद डगमगाते कदमों दफनगाह की ओर चल पड़ता। मेरे पहुंचने के साथ ही पादरी कब्र का त्रिकोण काटते आ पहुंचता और पूर्ववत् चट्टान के छोर पर मौन-भाव से दखल कर बैठता। मेरा रेन-कोट सदा उसकी बगल मे रहता और वह उसके कालर पर लगे लोमड़ी के रोंवों वाले फर को सहलाता रहता और अपना विगत इतिहास सुनाता जाता। और उसके लबादे पर एक और नया सुराख उभर आता। मैं कलेण्डर की तारीखों से नही उन उभरते सुराखों से शेष दिनो का गणित करते जाने का अभ्यस्त हो गया था। वहा न जाता तो शेष अवधि ही भूल जाता। निरन्तर तीस दिन रातों बादल गड़गड़ाते रहे। मैं भीगता रहता पर रेन-कोट उतारना पड़ता। वह परत दर-परत अपनी आत्मकथा उगलता गया और सुराखो का गणित बढ़ता रहा। और अंतिम संध्या उसके सीने पर पूरे तीस सुराख उभर आये थे। प्रेत-गणित

पूरा हो चुका था।

पर मेरी नियति अधर मे थी। उसके शरीर की गंध पहले दुर्गंध बनी और शनै:-शनै: पूरी सड़ने लगी।

उसके तीस रातों के आख्यान का सार संक्षेप यू था। उस वक्त से कोई नव्वे वर्ष पूर्व वह, उसका हमनाम और लूसी तीनों एक ही जहाज पर सवार होकर इंगलैंड से भारत के लिए रवाना हुए थे।

उसकी नियुक्ति दार्जिलिंग के नव-निर्मित चर्च में बतौर पादरी तथा लूसी की बतौर सहायक नन हुई थी।

उसका हमनाम जार्ज आलिवर आई० सी० एस० ऑफिसर बनकर भारत आ रहा था। बाद मे सयोग से उसकी नियुक्ति दार्जिलिंग के कमीश्नर के रूप मे हो गयी।

लूसी का सम्बन्ध इगलैंड के एक अभिजातीय घराने से था, किन्तु पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने व दुश्चरित्रता के दाग के कारण वह किसी उच्च-वर्गीय अंगरेज से सुन्दर होने के बावजूद भी विवाह सम्बन्ध न बना पायी तो निराशा के आवेग मे चर्च की शरण मे जा पहुची और वीतराग जीवन व्यतीत करने के प्रति प्रतिबद्ध हो नन बन गयी।

किन्तु दमित यौवन-ललसाए भारत की राह में ही चलते जहाज के केबिन में ज्वार पर आ गयी। पादरी भी संयम न बना रख पाया। एक दिन ऑफिसर आलिवर ने उन्हे आपत्तिजनक अवस्था मे जा पकड़ा। और अब वह बारी-बारी से आलिवर द्वय की हमबिस्तर होने लगी।

दार्जिलिंग के चर्च में दाखिल होने पर कुछ दिनो तो पादरी आलिवर का ही सहवास रहा, लेकिन एक दिन दूसरा आलिवर भी ऑफिसरी के पूरे तामझाम के साथ दार्जिलिंग का बेताज का बादशाह बनकर आ धमका तो सामान्य पादरी का खुमार लूसी के जेहन से उतर गया। लूसी एक मात्र दूसरे आलिवर की सहशायिनी बनकर रह गयी।

पादरी ने प्रतिशोध मे आर्क बिसप को शिकायत की तो चर्च से लूसी का निष्कासन-पत्र जारी हो गया और चर्च के ही भय से कैथोलिक कमिश्नर बाकायदा तौर पर उसे अपनी पत्नी न बना सका और वह महज रखैल बनकर रह गयी।

पर पादरी का प्रतिशोध पूरा न हुआ। वह कई दिनो द्वेषाग्नि मे धधकता रहा और अन्त मे उसने कमिश्नर की हत्या कर दी। परिणामस्वरूप उसे भी मृत्यु-दण्ड मिला।

उन्तीसवीं सध्या को उसने अपनी फासी का मार्मिक वर्णन किया, उसने अतिम इच्छा पूर्ति के नियमानुसार लूसी से मिलने की दरख्वास्त दी, पर मरते

पादरी के लिए भी सांसारिक एषणापूर्ति की वर्जना थी अतः इजाजत न मिली और वह दमित लालसा लिये झूल गया और उसकी लाश को दफन कर दिया गया। उसकी अंतिम दास्तां सुनते मैं न जाने कैसे सजग हो उठा और दनदनाते हुए प्रश्न पूछा—'फिर तुम रु-ब-रु कैसे हो ?' मेरे सहसा प्रश्न पर उसका पंजर पहली बार खड़खड़ाया।

'इसका उत्तर तुम्हें कल अन्तिम तीसवीं संध्या को ही मिलेगा। और'''आज की रा'''त तुम्हारी भी अंतिम रा'''त है। आज तुम्हे अंतिम फैसला करना है।' उसने पहले दिन के समान एक-एक शब्द चबाते हुए चेतावनी दी। खोखर से निकलकर आती प्रतिध्वनि मेरे जेहन में गहराती रही। उसके उस स्वर में आदेश की गर्माहट सनी थी।

वह मेरे लिए अंतिम संकल्प-संध्या थी, नये जीवन की तलाश या मौत के इंतजार की रात। अनन्त जीवन एषणा या उस गलित अंग प्रेत के साथ आत्म-भटकाव। मैंने रात का पहला पहर शराबखाने में व्यतीत किया, दूसरा जुआ घर में बीता, उस रात मैंने हर दांव जीता और जीतता रहता यदि साथ के लोग पत्ते न छोड़ जाते। तीसरे पहर अपने डेरे पर आकर पड़ रहा। पर मैं शेष रात छटपटाता ही रहा। मेरे आवास के नीचे पहाड़ी तलहटी पर ऊपर से गिरते झरने का अथाह पानी पछाड़ें खाता रहा। दूर घाटियों में गीदड़ हुा, हुुा हुा, हुुा कर रुदन अलापते रहे। पानी इतना बरसा कि तीस रात बाद बादल खाली हो छट गये।

दिन निकला। सब धुला-धुला था। उसी संध्या मुझे उसे जवाब देना था। पर तब मैं काफी स्वस्थ था, जैसे मेरा अंतर्मन तो किसी अंतिम नतीजे पर पहुंच चुका था किन्तु मैं अनजाना था। मैं नही जानता था कि मैंने क्या फैसला किया। पर मन मे ऊहापोह भी न थी।

और संध्या को उसने तीर सा प्रश्न किया—'दोस्त, तुम्हारा अंतिम फैसला क्या है ?'

मेरे भीतर से सम्मोहन-मुक्त शान्त-सा उत्तर उभरा, जो आत्म-विश्वास से संपुष्ट था।

'मेरा'''निश्चय है, मैं'''जिन्दा रहूंगा।'

जवाब सुन उसके कंकाल से एक झंझावात निकला। हवाएं बावली बन सन-सनाने लगी। देवदार चिंघाड़ने लगा और एक वर्तुल उठने लगा। फिर खोखर से आते स्वर ने बस, इतना भर कहा।

'मेरे आखिरी दोस्त, अंतिम समय पर तुम भी मुझे धोखा दे गये। तुम भी मेरा साथ नही दोगे ? अब भी मुझे एकाकी जाना होगा। वक्त हो गया।'

और वह जार्ज आलिवर की दफनगाह की ओर बढ़ा। जैसे चिर-प्रतिद्वन्द्वी

को ललकारकर साथ चलने को आमादा करने जा रहा हो। जैसे ही वह अपने प्रणय-प्रतिद्वन्द्वी की कब्र के नजदीक पहुंचा, उसका वजूद अस्तित्व से ओझल हो गया। और एक अकेला चक्रवात लूसी की कब्र की परिक्रमा पूरी कर वर्तुलाकृति में ऊपर आकाश की ओर उठ चला और फटते-फटते बिखर गया। धुन्ध छट गयी। तब न बादल रहा न कोहरा। तीस दिन बाद क्षितिज के पश्चिम छोर पर सूरज का पूरा गोला अस्ताचल में उतरते दिखाई दिया। मैंने देखा, एक तीसरी कब्र के चबूतरे पर'''जो शायद उसकी थी'''तीस बड़े-बड़े सुराखों से छलनी हुआ एक लबादा-भर पड़ा था।

रब्बो

बक़ौल बुजुर्गान उस मोहल्ले में औबास (आवारा) लौंडो की तादाद न के बराबर थी। शातीर लौंडिया तो थी ही नही।

गो कि कम उम्र, कबूल सूरत, पुर-कशिश और शोलो को खाकिसार बना देने वाली लौंडियां मुतरन्नम लहरों सी आती और इश्तिहा अंगेज खुशबू के समान गुजर जाती। वे स्कूल-कॉलेज जाती, पीर की मजार या देवी की मुजस्सम (मूर्ति) पर मनौतियां मनाने आती तो दस्तूर से कुछ ज्यादे ही बनी-ठनी आती।

औबाम लौंडे जो भी होते, रिवाज के मुजब ताकते झांकते, हिट-क्लास फिल्मी नगमों के तोड़े उछालते, किसी दिलकश गजरा के मिसरे वारते और मजनूई अंदाज में मायूसी के आलम मे खो जाते।

मगर लौंडियां थी कि चाक-चौकस चली जाती, कि बुजुर्ग समझें लौंडियां शर्मसार हैं। चेहतों के दिल मे गुमान हो कि उनकी जानिब भी कोई जां-निसार है।

हमउम्र हमजोलियों की छातियां उन नाजनियो की जानिम जल-जल जाती जो लौंडों के हुजूम मे ज्यादे तौरीक (महत्त्व) पाती। कि ऐसी 'आम' लौंडियां जिस मरहले से गुजर-गुजर आती कि किसी दिन उसी सडक से उनसे जुदा किस्म की एक लड़की गुजरने लगी। वह शायद समानेपन में औरत बन चुकी थी, पर उसके जिस्म मे हाल ही दिलकश कसाव उभार पे आया था—चाल शातीर थी, अंदाज में गुरेज भरा था। मगर लिबास सादा-सादा था।

उसके कफेपा (तलवे) जैसे जमीन को नही छूते कि हवा की गर्दिशो में उड़ी-उड़ी जाती। उसकी नजरें अपनी ही छातियो की ढलान पर फिसल-फिसल जाती। कि लौंडे अव्वल नजर में महसूस करने लगे कि यह कोई छुईमुई किस्म की छोकड़ी नही है। चलचलाती आतिश है जो अपना धुआं अपने में जज्ब किये है। यह कोई और है, संगेमूसा की मीनार के मानिंद। इस मोहल्ले की लौंडियों की दरामोम की मुजस्सम तो कतई नही।

को ललकारकर साथ चलने को आमादा करने जा रहा हो। जैसे ही वह अपने प्रणय-प्रतिद्वन्द्वी की कब्र के नजदीक पहुंचा, उसका वजूद अस्तित्व से ओझल हो गया। और एक अकेला चक्रवात लूमी की कब्र की परिक्रमा पूरी कर वर्तुलाकृति में ऊपर आकाश की ओर उठ चला और फटते-फटते बिखर गया। धुन्ध छट गयी। तब न बादल रहा न कोहरा। तीस दिन बाद क्षितिज के पश्चिम छोर पर सूरज का पूरा गोला अस्ताचल में उतरते दिखाई दिया। मैंने देखा, एक तीसरी कब्र के चबूतरे पर'''जो शायद उसकी थी'''तीस बड़े-बड़े सुराखों से छलनी हुआ एक लबादा-भर पड़ा था।

रब्बो

बक़ौल बुजुर्गान उस मोहल्ले में औबास (आवारा) लौंडो की तादाद न के बराबर थी। शातीर लौंडिया तो थीं ही नही।

गो कि कम उम्र, कबूल सूरत, पुर-कशिश और शोलों को खाकिसार बना देने वाली लौंडिया मुतरन्नम लहरों सी आती और इश्तिहा अंगेज खुशबू के समान गुजर जाती। वे स्कूल-कॉलिज जातीं, पीर की मजार या देवी की मुजस्सम (मूर्ति) पर मनौतियां मनाने आती तो दस्तूर से कुछ ज्यादे ही बनी-ठनी आती।

औबाम लौडे जो भी होते, रिवाज के मुजब ताकते झांकते, हिट-क्लास फिल्मी नगमों के तोड़े उछालते, किसी दिलकश गजल के मिसरे मारते और मजनूई अंदाज में मायूसी के आलम मे खो जाते।

मगर लौंडिया थी कि चाक-चौकस चली जाती, कि बुजुर्ग समझें लौंडियां शर्मसार है। चेहतों के दिल मे गुमान हो कि उनकी जानिब भी कोई जां-निसार है।

हमउम्र हमजोलियो की छातियां उन नाजनियों की जानिब जल-जल जातीं जो लौंडों के हुजूम में ज्यादे तौरीक (महत्त्व) पातीं। कि ऐसी 'क्षाम' लौंडियां जिस मरहले से गुजर-गुजर जाती कि किसी दिन उसी सड़क से उनसे जुदा किस्म की एक लड़की गुजरने लगी। वह शायद सयानेपन में औरत बन चुकी थी, पर उसके जिस्म में हाल ही दिलकश कसाव उभार पै आया था—चाल शातीर थी, अंदाज में गुरेज भरा था। मगर लिबास सादा-सादा था।

उसके कफेपा (तलवे) जैसे जमीन को नही छूते कि हवा की गर्दिशो में उड़ी-उडी जाती। उसकी नजरें अपनी ही छातियों की ढलान पर फिसल-फिसल जातीं। कि लौंडे अव्वल नजर मे महसूस करने लगे कि यह कोई छुईमुई किस्म की छोकड़ी नही है। चलचलाती आतिश है जो अपना धुआं अपने में जज्ब किए है। यह कोई और है, संगेमूसा की मीनार के मानिंद। इस मोहल्ले की लौंडियों की ख़रामोम की मुजस्सम तो कतई नही।

वह चलती तो ऐसी लगती कि मुअत्तर (सुगन्धित) और मुन्नवर (प्रकाशमान) लौ चली जाती है, मगर उसकी वू गुगुल जैसी है। जाफरानी नहीं। उसके जिस्म की गोलाई में कशिश तो है, मगर उसकी उठान देहकते कुमकुमे जैसी है कि लौंडे उसे देख दम-ब-खुद (मौन) व साकित (गतिहीन) हो इस्तादा (सीधे) खड़े रहे और वह मुतहरिक (गतिशील) जलजला सी गुजर जाती गयी।

कोई उस पर फिल्मी-क्लाम गानों के तोड़े ना उछाल पाया कि वे अल्गुरू में ही उससे कट गये। उससे किनारा कस गये। बस एक दाऊद था कि मौके की तलाश में बना रहा।

मगर उस कुमकुमे को रोज-ब-रोज गुजरते देख, मोहल्ले के बुजुर्ग लोग होशियार हो गये, मायें बनीं खातूनें खबरदार हो गयी।

यह मुहल्ला शराफती शरीफों का दरवा है कि मुहल्ले के सारे के सारे बाशिन्दान सफेदपोश मुहज्जब (सभ्य) इन्सान हैं। यहां दीनदार मुसलमान रिहायिस करते हैं, नौकरीपेशा कायस्थ रहते हैं। अमृत छके सिखों का यह मुहल्ला है। हिन्दू यहा के कदीमी बासिन्दे है। होटलो का कारोबार करते एगलो इडियनो की यह मोहल्ला रिहायशगाह है। गरज कि यह सारे हिन्दुस्तान के शरीफो का मोहल्ला है।

यहा सबकी मायें साझे की मायें है। बेटियां, बहनें, बूवा-फूफियां साझे की धरोहर हैं। अलबत्ता बीबियां सबकी जुदा-जुदा निजी है। इस महल्ले की लौंडियां जाहिरा औबास नही है।

जबकि लौंडियां जानती थी कि वे कोई 'खास' नही है। जब किसी कुंवारी का साबिका किसी अफताब (सूरज) से पड़ जाता तब मायें उसकी मददगार होती। कर्ण की पैदाइश का हवाला पोशीदा रहता। इस पर भी वे चाहतीं औबास लौंडो द्वारा छेडी जाना। मगर यह उनकी लाचारी थी कि जाहिरा नाराजगी का इजहार करें।

वे जानती थी कि उनके वालिदान जानते हैं कि उनकी साहबजादियां कैसी क्या हैं, मगर वे मुकफ्फल लब (होठों पर ताले डाले) रहते।

वे मुकफ्फल लब रहते क्यूं कि उनकी वाहिद (औरस) औलादें मजनू के जात की थी, उनके मिलने वालो के साहबजादे फरहाद के नाती थे। एक आध उघड़ती तो सब सिरे से नगे नजर आते। यह सबब था कि मोहल्ले मे अदावत निहां (छिपी हुई) और मुरौवत अया (प्रकट में) थी। खातूनों की ताक-झाक खिड़कियो की फांको से चलती, सदर दरवाजे बन्द रहते।

मगर प्रोफेसर इमतियाज का सदर दरवाजा सदा खुला रहता। रब्बो मुहल्ला शाहीदान से आती और बेझिझक उस गेट में घुस जाती और फिर दरवाजे बन्द हो जाते। खातूनें खिड़कियो मे खड़ी सरगोशिया करती, ताक-झांक चलती और ना-

सल डालतीं।

बकौल बुजुर्गान हया तो उसे छू भी न गयी थी। ऐसा भी क्या आना-जाना। दिन ढलते तरतर आना और आधी रात लौट जाना। जवान-जहान है मगर ना झिझक ना लोक-लाज है। कम-ब-कमतर दिखावा तो चले। ताकने-झांकने वालों के जानिम जरा नजर झुकाकर तो चले। पर रब्बो है कि दीदां चलती है, बराबर आंख में नजर डालकर ताकती है। शरीफों का रिवाज है कि गुनाह करे, मगर सलीके से करे। इश्क का रियाज पोशीदा चले। पर यह लौंढ़ियां है कि बेनकाब कुफ्र किये जाती है।

कंवारी जान इमतियाज और चढ़ते परवान रब्बो। तोबा तो कहो।

खातूनें तो तोबा किये थीं मगर मर्द बेखबर थे कि मोहल्ले की छोकड़ियां कॉलेज में रब्बो की हम-क्लास हैं कि रब्बो कॉलेज में 'खास' है। आतिश से डरते हैं सब। उस धधकानभरी आंच में हाथ गरमाने की ताब किसी में नहीं आती कि वालिदैन नहीं जानते कि वह मोहल्ले की कितनी कुमारियों को आये दिन गलत सड़क पर भटकने से बचाती है, धुड़क-समझाकर पटरी पर लाती है।

मगर बुजुर्गों की समझ से जाहिरा बेहयाई ही कुफ्र थी। बुर्के की जद की ओट तो शरीफों का सगल है। उसकी जद में जो चले वह रब्ब की नजर है।

मौलवी मीर मुश्ताक, सरदार सूबेदारसिंह, लाला रेशमीलाल और मुन्शी गुलशन नंदा मोहल्ले की अमन-असमत कमेटी के सदर-बदर थे। सब हम-मसवरा (एक राय) थे। इमतियाज को मोहल्ला छोड़ जाने का आगाज बतलाकर नोटिस अता कर दिया जाये। ना माने तो जबरी बेदखल किया जाये।

और एक शाम मोहल्ले के अमन-अमलबरदार कैफियत लेने और नोटिस देने प्रोफेसर के डेरे पर जा नमदार हुए। दस्तक सुनकर दरवाजा रब्बो ने खोला। बूढ़े हुए तो क्या, एक बार तो सबकी नजरें अटक गयीं। आने का सबब भूल गये, फिर संभले। सहन में पहुंचे तो इमतियाज का हाल-हुलिया देखकर सकते में आ गये।

फकत तहमद लपेटे, खुली रवेंदार छाती, किताबों के अंबार के बीच पड़ा प्रोफेसर। मगर आदमी सलीके का। बुजुर्गों को आया देख दस्तबदस्ता खड़ा हो गया। पर बुजुर्गों ने उसकी शराफत का नोटिस न लिया। सलाम का जवाब न देते सवालों और नसीहतों की गोलाबारी शुरू कर दी। इमतियाज सुकूत (चुप्पी) साधे रहा। पर रब्बो ने अहमतर सवाल को लपककर गुप लिया।

'यह लड़की''' यानि कि मैं''' यहां हर रोज ढलते दिन क्यों आती हूं? एक जवान लड़की क्यों आती होगी, बुजुर्ग इस हकीकत से बेखबर तो नहीं।'

एक लम्बा सुकूत। इमतियाज सोचे। आखिर रब्बो उलझ ही गयी।

फिर लम्बे अंतराल के बाद एक बुजुर्ग की ज़ुबान खुली—'तो हम शक को अब

सुबूत मानें ?'

रब्बो कोई जुबानी जवाब देने की एवज हंसी। उसकी नजरें आइना बन चौगिर्द घूम गयी। उस स्क्रीन पर बुजुर्गों को चलती तसवीरें नजर आने लगी। अपने घर, आंगन, छज्जे-बालकनिया रफ्ता-रफ्ता सब घूम गये।

मीर की लौंडिया बारजे पर खडी, दुप्पटा हिला-हिलाकर किसी को तखलिये का सिगनल दे रही थी। उसके बगल वाले घर के छज्जे पर एक गड़मड कागज गिरा, बदले में एक बदले पुर्जा हवा मे उड़ा और साया चिलमन की ओट हो गया।

सुबेदारसिंह का हमपेशा ठेकेदार हालांकि सरदार को बाहर जाते देख चुका था। फिर भी सदर पर ही तसल्ली के लिए पूछा—'ओ ता एदर नही हेगा।'

'ओ ये तू मर्द हो के एना डरदा क्यू हेगा ?' और सरदारनी के ओठो की ओट से अनार के दाने बिखर गये।

रेशमीलाल की लुगाई दायी की मिन्नतें कर रही 'छोरी नादान है, पैर फिसल गया। अब लाज तेरे हाथ है।'

गुलशन की बेटी बडी दिलेर है। प्यार किया है, गुनाह नही। फिर छिपाऊं क्यू। पर एंगलो-इन्डियन लड़कियो के खुले अंदाज थे। बिजिनेश का सवाल है। शक्ल-सूरत दी है प्रभु ने तो रेस्टोरेन्ट गुलजार रहते है, वर्ना पादरियो की इबादतगाह न बन जाये। बिजिनेश है। ठण्डी क्रीम के साथ गुनगुनी मुसकान का जायका कस्टमर कभी न भूले। चार गली छेककर आये और बोले—'हेलो माई, स्वीट हार्ट। पैसा पटका कबाब कीमा के साथ सिसकारे, सब हाजिर। .

उफ्। कोफ्त। बुजुर्गों ने एक-दूसरे को कोहनियो से टहोका—'लौंडी फाश है, न जाने अब कुछ बोल भी जाये। और वे बगैर नोटिस तलवाये ही लौट गये तो इमतियाज ने रब्बो को टोका—'तुमने सच्चाई बयान क्यो न की ? खामख्वाह उलझ पड़ी।'

'किताबी फिलसफे से दुनिया का दस्तूर जुदा होता है, इसलिए मैं उलझी प्रोफेसर साहब। कौन मानता है कि आप दयानतदारी के नाते थिसिस मे मेरी इमदाद करते है। अख्लाक (नैतिकता) की हकीकत को बद-अख्लाक (अनैतिक) लोग कभी तस्लीम नही करते। उनके निकट तसल्ली-बक्श उत्तर वही है जो वे खुद पूरी नंगई के साथ नकारते है। स्याहफाम लोग दूसरो को स्याही में डूबा देखकर नाराज नही, खुश होते है।

'अब हम और वे हम-राज है। और वे तुमसे नाराज नही, खुश हैं। नगो के हमाम में तुम भी उनमे से एक हो। वे जरा पर्दानशीनी के तलबदार जरूर हैं। मेरी आवाजाही को अब दरगुजर करेंगे, क्योकि मेरे जवाब ने उनको तस्कीन दी है कि हम भी गुनाहगारो के हमजात हैं।'

और जब वह निस-सब आधी रात को लौटे जा रही थी तो मौलवी साहब अपने आरजे पर चाक-चौकस टहल रहे थे। सूबेदारसिंह के अहाते में अलसेसियन की जंजीर खुली थी। मुन्शी गुलशन नंदा के घर में तकरार चल रही थी। लाला की हट्टी बंद थी। पर एंगलो-इंडियन रेस्तरां में पूरी चहलपहल थी। शेष सारी गली खाली थी, एक अकेला दाऊद बिजली के खम्भे से चिपककर खड़ा था। उसके शागीर्द इधर-उधर बिखरे थे।

रब्बो को देख दाऊद ने दो-चार दिलजले मिसरे उछाले। रब्बो ने सहज भाव से उन्हें लपक लिया तो शातीर बदमाश की हौशला अफजाई हुई। चलती लौडियों के दुपट्टे उचक ले जाने में उसे काफी महारत हासिल थी। वह उकाब की मानिंद झपट्टा मारे कि उसके पहले रब्बो ने अपना दुपट्टा उछाला। झटके के साथ दुपट्टा उसकी गर्दन के गिर्द कस गया।

दाऊद की ठुड्डी टखने पर जा अटकी। पायजामे के पांयचों में उलझते रपटते जाते बांके को रब्बो ने ललकारा—'जरा रुक तो साहबजादे। देखूं तेरी पेशानी में कितना दम-खम है।' पर दाऊद की गैरत ऐसी दौड़ी कि पायजामा चिंद्दी-चिंद्दी होकर रह गया।

रब्बो ने भर नजर अपने गिर्द देखा पर दाऊद के शागीर्द अब नजर न आये।

अगली शाम सारा मुहल्ला मुहर-ब लब (मौन साधे) था। रब्बो को आते देख नुक्कड़ के पनवाड़ी ने रेडियो की कील मरोड़कर उसे गजल गाने से रोक दिया। नीम तारीकी (अंधेरे) के बावजूद गली के आवारा कुत्ते उस पर भौंके नहीं। उंगलियां उसकी ओर उठी नहीं। खिड़कियों की सेंध से खातूनों ने झांका नहीं।

निस-शब सबकी पेशानियों पर स्याह दाग थे। अंधेरे कुफ्र में सब हम-गुनाह थे। हमामों में सब नंगे थे। इस सबब नंगों ने हंगामा किया नहीं कि रब्बो हमाम के नंगों को सरे-सड़क नंगों करने की जुर्रत संजोये थी।

हाड़फरोश

जब माल इफरात से मिलने लगा तो रहमत खां की नियत हराम हो गयी। ढुलाई की दर गिरा दी। बेरुखी से पेश आने लगा। वह धन्धा करने आता है, धूल फांकने नहीं। धन्धे में मुरौवत नहीं मानता। और जरा मुरौवत का जो आगाज थी, जब वही चली गयी तो लिहाज किस भकवे की।

सुबह-सुबह दरवाजे पर आकर भौंकने लग जाता। रात की रोटी पच गयी हो तो उठो, गाड़ी जोतो, आज की खुराक की फिक्र करो। जुरंत न थी, जोरू चली गयी। फिर भी उनका शुक्र मानो। पाक रसूल का दस्तूर याद करो। जर, जोरू जबर की। जिस्म में गुदा होता तो न जाती। चली भी गयी तो सदके सदमें का तो कोई सबब ही नहीं। सोहनी जोरू दोजख जान। अच्छा हुआ सस्ते में छुट्टी कर गयी।

और फिर चलते-चलते शेरू की पीठ थपथपाते। यह कहने एक चुटकी ममक और बुरक जाता—'लगता है बेटे शेरू, अब इस खूटे से तेरी भी छुट्टी जल्दी ही होने वाली है।'

बड़ा कांइया है यह मेवात। भूरी थी तो हजार मुजरे करता था। प्यो, प्यो, (बाप-बाप) कहते, शेरू को आप ही खूंटे बांध गया था। अब भूरी न रही तो बात का सलीका ही भूल गया।

'भकवा हजार दर गिराये।' फत्तू ने उबासी ली। अपनी तो आमदनी बढ़ी ही है। पहले मुश्किल से एक खेप माल मिल पाता था, अब रोज तीन-चार खेप मिल जाता है।

ढोर सुविधा में जो मरने लगे हैं। अकाल की खुराक बढ़ गयी है। मीठा पानी तो सूंघने को भी नहीं मिलता। खाली पेट खारा पानी पी डंगर तो जुगाली भी नहीं ले पाते। यह तो आदमी का हरामी हाजमा है। अकाल-दुकाल में जहर भी हजम करने लगता है। कड़वे आक की जड़ चूसकर भी आदमी जी लेता है।

इधर भूरी की याद इसलिए ज्यादा आने लगी है कि बिछुवे खरीदने की

हैसियत बनी तो वह हरजाई न रही। हरजाई होने के बावजूद वह थी भली। उसकी चाल के मण्डी में चर्चे थे।

भूरी जैसी भी थी भली थी। बस, साहू के साथ उसकी लाग-लपेट के चर्चे ही माड़े थे। पर किस सुन्दर महरिया का दामन रकीबो ने उजला रहने दिया है। वह तो अपनी जोरूथी, इसी से जी जलता था। न होती उसकी अपनी घर-वाली, किसी और की लुगाई होती तो वह भी चटकारो के साथ चर्चा को परवान चढ़ाता। हरजाई लुगाई के किस्सों मे अजीब किस्म का चटपटापन भरा होता है। जीभ का जायका कुछ और सा हो जाता है।

जो भी हो। भूरी थी तो जग भला था। जब वह न रही तो रहमत क्या राम भी बैरी हो गया है। उजाड़ रोही मे उस बेवफा की याद से फत्तू का भेजा गर्मा गया। हजार लाग-डांट के बावजूद उसने भूरी पर कभी हाथ न उठाया था। उसके एवज में जब भी कुछ करना पड़ता, वह पांचू की ठुकाई किया करता।

ऐन वक्त पर कालू ने भोंककर उसका ध्यान बटा लिया, नही तो पांचू की सामत तो अब भी आ ही चुकी थी। हाथ न उठा, केवल डांटते हुए आदेश दिया—''अरे ओ बगाली के तुख्म। शेरू की रास खीचकर उसे कालू के पीछे डाल दे।' पांचू ने तत्परता से आदेश का पालन किया तो वह जल-भुनकर रह गया—'स्याला, आदमी का तुख्म नही, कुत्ते की औलाद है। तभी तो हर घड़ी पिल्ले के माफक दुम हिलाता रहता है। इससे तो यह कालू हजार अच्छा, भौंकता तो है। आदमी से कुत्ता नही बना। असल कुत्ता है। झबराली पूछ को हवा में झुलाते सीधा माल पर चला जाता है। कालू कुत्ता नही है। उसका ससुर है। भूरी किसी कुत्तिया की औलाद थी।

उसके जेहन पर कड़आहट पूरे तौर पर उतर आई। यह कालू इस पिल्ले के माफक नही है। बड़ा कड़क जिनावर है। पूरी हड्डी कड़कड कर चबा जाता है। जबकि यह पाचू स्याला रोटी के टुकड़े को भी कुतर-कुतर कर खाता है। बगाली की औलाद जो है।

पर अब गाव मे कुत्ते भी नही रह गये। ले-देकर यही कोई पाचेक बचे हैं। कुत्तिया तो बस एक ही रह गयी है। वह भी मरियल सी। वह भी एक जमाना था, जब कालू के साथ पूरा हरम चला करता था। अब वही कालू है कि उस मरियल-सी कुत्तिया के लिए दिनभर अन्य कुत्तों से लड़ता-भिड़ता रहता है। और कुत्तिया के लछन (लक्षण) माड़े हैं। पूरी पातुरिया है स्याली। किसी दिन भूरी के समान भाग जायेगी।

कुत्ता अकाल के मारे नही मरता। वह मरता है वफादारी के मारे। अगर एक यह ऐब न हो तो कुत्ते और शाहूकार मे कोई भेद नहीं। अकाल मे दोनों पर चर्बी चढ़ती है। पर बेवकूफ कुत्ते मर-भूखों के पीछे लगकर गांव छोड़ जाते

है पर आदमी किसी से मुरौव्वत नहीं मानता। अकाल का मारा आदमी भी चकमाबाजी से बाज नहीं आता। वह अपने पीछे लगे आते कुत्तों को धोखा देकर शहर में छोड़ जाता है और वहां वे कुत्ते आदमी बन जाते हैं। नेकी की राह पर चलना भूलकर बदी के रास्ते चलने लगते हैं।

सुना है राजा जुधिस्टर के साथ लगा एक कुत्ता भी सुरग के दरवाजे तक चला गया था, पर आदमी के साथ होने के कारण सुरग के फाटक के भीतर न घुस पाया। पर अपन को जुधिस्टर से क्या लेना-देना। अपन तो राजा हरीचन्दर को मानते हैं। पट्ठे ने श्मशान धधकाना मंजूर किया पर वामन को धूल चटाकर ही छोडी। सारी काशी के लोगों को विमान पर बैठाकर गाजेबाजे के साथ सुरग में गया।

पर अब सुरग कहां होगा? अब तो हर जगह अकाल पड़ने लगा है। हर जगह दोजख बन गयी है।' इस खयाल के साथ ही फत्तू को जैसे काफी राहत मिली। उसके विचार हरियाने लगे।

सुना है इधर गाव में एक नई कुतिया आयी है। कालू उसके साथ आशनाई बनाने की फिराक में है। तभी तो इधर कम टैम देने लगा है। पर अपन को तो कालू का खयाल रखना ही है। सब बदल गये पर कालू तो यार बना ही रहा। सारे भकुवे कुत्ते तो टापते रह जायेंगे, जब हम नयी कुतिया को अपने बाड़े में लाकर बाध देंगे और कालू से कहेंगे—आ कालू यार, कर जी भरकर प्यार, देख यारी के दम कैसे होते हैं। उसने अपने साथ निबाही है तो अपन को भी निबाहनी पड़ेगी। यह जरूर बता देंगे उसे कि, जोरू जाते तो खूटे से बंधी ही भली है।

जब कब्रें खोदने का धन्धा चलता था कालू तभी से यारी निबाहता आ रहा है। वह जब कब्रें खोदता होता तब कालू चौकसी किया करता। वह दिन में अगले रोज मरने वालों के लिए कब्रें खोदा करता और रात के वक्त पहले दिन दफन किये गये मुर्दों की कब्र खोदकर उनकी खोपड़ी नदारत कर, ताजा कब्र को फिर से हमवार कर दिया करता। फुर्सत के टैम कालू सूंघकर पुरानी कब्रों की शिनाख्त करता। फत्तू को गले-सड़े अंजर-पंजर से कोई वास्ता नहीं था। उसका सरोकार तो खोपड़ी से था। आदमी के मिजाज के समान उसकी खोपड़ी भी बड़ी सख्त जात होती है। हजार साल मिट्टी में वनी रहने पर भी जरा भी नहीं गलती।

आदमियों की खोपड़ी का वह बगाली अच्छा खरीददार था। वह कहा करता—'फिरंगियों के मुल्कों में काले आदमी की खोपड़ी की खासी माग है।' इसी से वह लोमड़ियों की खालों के साथ खोपड़ियां भी सरहद पार करता रहता था।

अचानक कालू के कान सीधे खड़े हो गये। पूछ हवा में तन गयी। वह

अगले मोर्चे के खोजी सिपाही की मुद्रा में सावधान खड़ा रहा। फिर लौट-लौटकर हवा मे भौंक-भौंककर जिधर माल होने की गुंजाइश थी उस दिशा मे संकेत करने लगा। उसकी नाक में दुर्गंध भर चुकी थी। फत्तू खुद सूंघा था पर धन्धे मे आने के बाद धीरे-धीरे चमार की जोरू बन गया था। दुर्गंध का भान उसे न रहा था।

अब भैंसागाड़ी उन चीलों पर चले जा रही थी जिनके बीच-बीच मे कालू गर्दन गिराये, पूंछ उठाये चले जा रहा था। किन्तु बड़ी दूर तक चलते जाने पर भी माल न मिला तो फत्तू सोचने लगा यह कालू या तो बुढ़ा गया है या नई कुत्तिया की चाहत ने इसे बावला बना दिया है।

माल न मिलने पर फत्तू की आंखों में लाल डोरे तन गये। उसने खारी नजरों से पांचू को तरेरा। इस दोगले ने चलते-चलाते टोक लगा दी। हरामी की जुबान काली और नजर कौवे जैसी है। पांचू समझ गया नजला उस पर उतरने ही वाला है। वह जूवे पर इस प्रकार डौल सिकोड़कर बैठ गया जैसे कि बेगुनाह मुलजिम थानेदार के सामने बैठ जाता है। इस प्रकार मार का एहसास कम होता है।

फत्तू की शातीर नजर ताड़ गयी—'एक न एक दिन स्याला पक्का मुलजिम बन जायेगा।' पर इस खयाल के साथ ही उसे संतोष का भी भान हुआ। अगर पक जायेगा तो दुनिया मे चल निकलेगा, वरना दोजख के कीड़े की जिन्दगी जीते मिट्टी खराब हो जायेगी। पराये हाड़ ढोते किसी दिन इसके हाड़ भी बिक जायेंगे। सुना है मदरसो मे इन दिनो आदमी की लाश चिराई का काम भी सिखाया जाने लगा है।

इस विचार के साथ ही उसकी आंखो में उतर आई ललछौंही लालिमा सफेदी मे बदलने लगी। और डूबती आवाज मे पांचू को गाड़ी रोक देने का आदेश दिया।

गाड़ी से नीचे उतरकर पहले उसने सिलवर की केतली से थोड़ा पानी सुड़का, फिर बगल के टीले पर जा चढ़ा। पांचू भी उसका अनुसरण करते हुए उसकी बगल में आ रहा। चारो ओर भाय-भाय कर धधकता निर्जन, निर्जल रेगिस्तान, आंखें चौंधिया देने वाली चटक धूप। धूल मे भुने जाने से बचकर उठ भागे भूतो के समान भंतूल (रेतीले वर्तुल) दिशाओं मे डोल रहे थे। रेगिस्तान मे भूत भी राह भूल जाता है। सिवाय आक के कोई दरख्त भी नजर न आ रहा था।

फत्तू थोड़ी देर खड़े-खड़े आंखें गड़ाकर टोह लेता रहा, पर जब आंखो मे तारे टूटने लगे तो वह उकडूं बैठ गया। पांचू को सख्त हिदायत थी कि जब वह काम पर हो तो वह सिखलाई के लिहाज से सदा वैसा ही किया करे, जैसा कि फत्तू करता हो।

धीरे-धीरे पाचू काफी शातीर साबित हो रहा था। रोही में दौड़ते उसके मुकाबले बनबांवरी भी हार जाते थे। दुबककर धरती से चिपक जाने में भी वह महारत हासिल कर चुका था। फतू उसे नई लेन (लाईन) में डालना चाहता था। इसी से जब वह हाड़ बटोरी का काम करते होता तो पाचू लोमड़ियों के दड़बे खोजा करता। किसी दिन इक्का-दुक्का जानवरों को अपने सिकंजे में फंसा भी लिया करता। वह साड़ों के बिल खोदकर उन्हें पूछ से खींचकर बाहर घसीट लाता। फतू इस जानवर को तेल में अधभूना कर दर्दनाशक तेल बनाकर कुछ कमाने भी लगा था।

एकाएक एक भतूल हवा में गोल-गोल भंवर बनाता हुआ टीले पर चढ़ आया। दो-चार चक्कर लगाकर भतूल तो गुजर गया पर उन दोनों की आंखें धूल से भर गयी। आंखों से धूल निकालने का प्रयास करते हुए फतू ने सोचा—'क्यों न इस पांचू को नये सिरे से कब्रें खोदने के धन्धे में लगा दिया जाये। इस कदर धूल फाकने से तो वह धन्धा अच्छा है। हां, उसमें खतरा कुछ बेसी (ज्यादा) जरूर है। पर कमाई का अच्छा वसीला है। पुरानी बात तो आयी-गयी हो चुकी है। लोगों की याददास्त बड़ी कमजोर होती है। पर दिक्कत यही है कि रोज-रोज तो दफन होने के लिए कोई मरता नहीं। इससे कोरी कब्र खुदाई से गुजारा चल सकता नहीं, और खोपड़ियों का खरीददार कोई नजर आता नहीं। ले-देकर एक वही बंगाली ही तो था, पर वह अब लौटकर गांव में आने वाला नहीं।

यह तो अच्छा हुआ कि उस दिन मौके पर बंगाली पहुंच गया और उसे लोगों ने घेरा तो ले-देकर मामला रफा-दफा करना पड़ा। वक्त पर उस दिन तो अल्लाह भी बेली बन गया और अपन को वक्त से पहले सुराग मिल गया कि अब लोगों पर कारगुजारी उजागर हो चुकी है। भागने का मौका मिल गया। वरना गांव वाले जो गत बनाते-वो बनाते कि शायद जान ही ले लेते।

गांव वाले बंगाली को लोमड़ियों की खाल के खरीददार के रूप में पहचानते थे। वह बोलता—'लोमड़ी के चमड़ा का फर बड़ा भालो बनता हम।' गांव वाले फर और भालो का अर्थ न समझते हुए भी उसका आशय समझने लगे थे।

पर अब वह खयनीखोर बंगाली इधर लौटकर न आयेगा। उस दिन मजबूरी में कुछ ले-देकर उसने अपनी जान बचाई थी और फतू के लिए भी जानबक्शी का करार पाया था। उसके एवज में वह सूद समेत वसूल कर भागा था। स्याला बंगाली हर समय पिच-पिच कर खयनी का थूक उगलता रहता था। उसकी याद के साथ ही फतू ने भी मारे घिन के थूक दिया।

बंगाली और भूरी के प्रसंग की याद से उसका समय तो कट रहा था पर उसके भीतर उथल-पुथल भी मचा रहा था। पर तभी गीद्धों का एक दल उसके सिर के ऊपर से फरफर करते उड़ गया। उसने गीद्धों के दल पर अपनी नजर

गड़ा दी। गीद्ध ढले और ढलते गये और अन्त में एक ठौर पर दल बांधकर उतर गये। टीले के नीचे खड़ा कालू चंचल हो उठा। वह भौं-भौं कर, गुर्राते हुए फत्तू को सावधान करने लगा। फत्तू भी ताड़ गया था कि माल अब नजदीक ही है।

'चल बैठ शेरू, माल अब दूर नहीं।' और वह खुद जूवे पर आ बैठा। पाचू उसके बगलगीर हो रहा तो उसने उसकी पीठ पर भरपूर धौल जमाई। पर यह झापड़ क्रोध का नहीं अधिकार का द्योतक था।

भूरी पर भी उसका अधिकार था। तभी तो वह भी शाहू की आढ़त पर तब तक ही जा पायी थी जब तक कि फत्तू का वहां दाना-पानी था। उसका मण्डी से अन्नजल उठा तो भूरी की आवा-जाही भी रुक गयी। वह जब जाया करता तो भूरी भी गाड़ी में बैठकर उसके साथ जाया करती। वह अपनी गाडी में दिनभर आढ़ती का माल ढुलाई किया करता और भूरी अनाज को झार लगाया करती।

खाद्य-निगम वालों ने मण्डी में नया-नया गोदाम बनाया था। एक सांझ को फत्तू लौटकर गांव जाने लगा तो शाहू ने उसे अटका लिया। भूरी अन्य धानक औरतों के साथ गांव लौट गयी।

उसके लिए रोटी शाहू के चौबारे से आ गयी। खा-पीकर वह गाड़ी में ही औंधा गया। आधी रात को शाहू के मुनीम ने उसे टहोककर जगाया और गाड़ी हंकवा चला।

निगम के गोदाम के सामने आकर मुनीम ने टार्च के प्रकाश से संकेत किया तो वह एक क्वार्टर से दो बाबू चौकन्ने से बाहर निकले। उन्होंने पहले कनसूए लिये और फिर मैदान साफ पाकर गोदाम का आधा सटर उठा दिया।

'जाओ, अन्दर से बोरे निकालकर गाड़ी में आहिस्ता-आहिस्ता लदाई शुरू कर दो। सावधान! जरा भी खुटका न होने पाये।' पर फत्तू को साहस न हुआ।

'क्या सोचते हो?' मुनीम ने फुसफुसाते हुए अपनी कोहनी शक्ती से उसकी ठुड्डी के नीचे गड़ा दी। 'पर गोदाम तो सरकारी है।' फत्तू मुश्किल से बोल पाया।

'क्या सरकार से तुम्हारी कोई रिश्तेदारी है। सरकार किसी से सरोकार नहीं रखती। काम करो और एवज में दुगुनी मजदूरी लेकर खिसक जाओ।'

पर फत्तू ने सरकारी माल पर हाथ न डाला। किन्तु अगले दिन सरकारी पंजा उसकी गर्दन के गिर्द कस गया। सरकार उसकी दामनगीर हो गयी। मौलाबक्श थानेदार ने वह गत बनाई कि सारी ईमानदारी, खैरख्वाही जोड़-जोड़ से खोज निकाली।

'स्याला चोर, बेईमान! बड़ा खुद्दार बनता है और टेशन के रास्ते में सरकारी बोरों में परखी लगाकर, धान निकालकर, जोरू का छाज भर देता है।' और थानेदार उसका टेंटुवा दबाने लगा।

भूरी को भी थाने में घसीट बुलाया। दो-रातों तक दोनों को अलग-अलग

हवालाती में बन्द कर रखा गया। आखिर शाहू सेठ की जमानददारी पर ही छुटकारा मिल पाया।

थाने से लौटकर आयी भूरी का बुरा हाल था। कई दिनों तक खून चलता रहा था। तभी से फत्तू की सोच बदल गयी। दिल बहलाने और नामर्दी को छुपाने के लिए ईमानदारी का खयाल अच्छा है। हकीकत में ईमानदार की जोरू को थाने में नगा कर बेइज्जत किया जाता है। फत्तू पर यह सच्चाई अयां (प्रकट) हुई तो वह भी दुनियादार बनने पर आमादा हो गया।

जब वह दुनिया की नगई को घूरकर देख-परख रहा था, उन्ही दिनों वह बंगाली गाव मे आया। गाढे वक्त पर उसने मदद की तो दोस्ती भी गाढ़ी हो गयी। दो-चार दिन में बंगाली मोसाय परिवार में घुल-मिल गया। भूरी की तन्दुरुस्ती के लिए उसने खूब खर्च किया। भूरी उसके अटपटे उच्चारण पर पहले मुलककर रह जाती, फिर दिनभर आपस में ठठोली चलने लगी। रात को फत्तू और बगाली के बीच बातो का दौर चलता।

बगाली का भी क्या व्यवसाय था। रोयेंदार बालो वाले जानवरों की खालों का खरीददार। पर फत्तू पर जल्द ही जाहिर हो गया कि बंगाली असल मे क्या चाहता है। वह खोपडियो का सौदागर इधर इसलिए चला आया था कि बगाल में धरपकड होने लग गयी थी, पर इधर अभी कोई जानता भी न था कि खोपडी भी तिजारत की चीज है। उसे खपाने के लिए भी कही मण्डी बन चुकी है?

बगाली ने राह दिखलायी और फत्तू कब्रों मे रच-पच गया। अब न उसे जिन्दों का लिहाज था न मुर्दों के प्रति श्रद्धा। अब उसके लिए जिन्दा मानस मिट्टी और मिट्टी से खोद निकाला गया मुर्दा जिस्म खरी रकम था। संसार में सब बिकाऊ है। वक्त पर जोरू भी बिक जाती है। जो आदमी ईमान बेचने लग जाता है, वह इज्जतदार बन जाता है जो इज्जतदार नही बन पाता उसकी असमत और ईमान बिक जाते है। जिसके बाजू पर चादी का हाथ जड जाता है, वह दुनिया मे हातम ताई बन जाता है।

पर रोज-रोज खोपड़ियां न मिलती। इससे अकसर फाको पर गुजरती। फिर नयी कब्रें खोदने लगा तो कुछ-कुछ गुजारा होने लगा। पर जिन्दगी और मौत का सिरजनहार मौला फेहरिस्त देखकर आदमी मारता है। इससे एक ही कस्बे मे दफन किये जाने लायक आदमी रोज-रोज नही मरते और मरने वालों की भी दो जात होती हैं। एक जात के जो मरते है उनको जला दिया जाता है। दूसरी किस्म के बचे-खुचे मुर्दे ही दफनाये जाते हैं। मजहब ने आदमी की बिरादरी को ऐसा-ऐसा तोड़ा है कि अन्त्येष्टी की विधियां भी न्यारी-न्यारी बना दी हैं। मुर्दों का आलम भी अलग-अलग है। एक कौम के मुर्दे कयामत के रोज तक इन्साफ की इन्तजार में सोते रहते है तो दूसरी जात के मुर्दे को तुरन्त-फुरत इस दोजख

बनी दुनिया में फिर पाप कमाने के लिए भेज दिया जाता है।

फत्तू लूवों की लपटो मे झुलसता हुआ माल के अम्बार पर आ पहुचा। ढोर तो ठौर-ठौर मरते हैं, किन्तु उनकी खाल खींचने वाले डोम ही ठौर पर उनका मसान बना देते हैं।

घीसू डोम के साथ पहले फत्तू की दात काटी थी। पर किसी दिन देशी ठर की दावत के दौर मे आपस में अनबन हो गयी तो घीसू उसे छकाने लगा। बदल-बदलकर ढोरो के मसान बनाने लगा। फत्तू जब तक एक ठिकाने पर पहुच पाता तब तक घीसू अपनी कार्यशाला की जगह बदल चुका होता।

इस नये मैदान मे गीद्धों के पंखों तले माल ढका पड़ा था। बीच-बीच में कौए लूट मचा रहे थे। गीद्ध बडा मनीषी प्राणी होता है। तभी तो राम-भगत बन पाया। राम ने प्रसन्न होकर सेवकाई का वरदान दिया और गीद्ध मरे मास पर गुजारा करते धरती पर तप करने के लिए उतर आया।

माल पर पहुंचकर कालू झपटा और पांचू ने ढेले चलाये तो गीद्ध निष्काम भाव से दूर जाकर कतारें बांधकर बैठ गये।

फत्तू ने केतली मे बचा पानी सुड़का, जब घूट भर ही बचा रहा तो उसे पांचू का खयाल आया। पर एक घूट से तो पांचू का हलक भी न भीग पाया। किन्तु फत्तू तृप्त होकर काम पर जुट गया। अनाज की बोरी के मुकाबले उसे हाड़ काफी हलके लग रहे थे।

स्याला रहमत खा, पूरे पंजर चाहता है। इस शेरू के जितने बड़े जित्ता बडा मया उत्ते ही चोखे दाम। यह (शेरू) ने रहमत ने ही उसे खिलाया। रहमत गांव में तीसरे फेरे आया था। जब-जब भी अकाल होता, वह इधर आ जाता। पंचों की मुट्ठियां गर्माता और माल का एकाधिकार पा जाता। लोग उसे ठेकेदार कहकर पुकारते पर माल बटोरने ढोने वाले आदमी उसे मुश्किल से मिलते।

फत्तू नये धर्म मे नया-नया दीक्षित हुआ था। अब उसकी नजर मे कोई भी दुनियावी कर्म कुकर्म न था। वह पक्का ईमानदार बन चुका था।

रहमत की नजर में फत्तू काम का आदमी था। पर रहमत की रहमत वह भूरी के माध्यम से पा सका था। गरीबी मे गुजर करते भी उसके तन की गौराई गायब न हो पायी थी। जरा दमदार गिजा मिले तो देह भी गदरा जाये।

पर मेवात पूरा मक्कार था। हथेली पर रुपया धरकर रिझाने की कला में निष्णात था। उसने फत्तू को नया भैंसा दिला दिया। किन्तु इस शर्त पर कि जब तक 'सप्लाई' चलती रहेगी, फत्तू उसके माल की ढुलाई करता रहेगा। आधी दिहाड़ी रोज नकद मिल जाया करेगी। आधी रकम भैंसे की किस्तों मे कटती रहेगी। फोरी जरूरत के लिए कुछ रुपया अलग से पेशगी दे दिया। पर उस पर सूद की दर मुकर्रर कर ली। हां, भूरी के लिए घाघरा और जरतारी की ओढ़नी

सेंत-मेंत मे ही मिल गयी।

फत्तू तावड़-तोड़ लादी किये जा रहा था। और शेरू का पुट्ठा झुके जा रहा था। कालू एक ओर जीभ निकालकर पड़ा सिसक रहा था। प्यासा पांचू एक आक मे जा दुबका था।

फत्तू गीद्ध की एकाग्रता से माल की छंटाई कर रहा था। रहमत खां बड़ा पारखी है। गधे का पंजर वह छंटाई मे निकाल देता है। कुत्ते के पंजर की उमे पहचान है। ऊंट के पंजर का एक मन पीछे पूरा पंसेरी तोल काटता है। गीला-सूखा छांटता है। केवल गाय-बछड़ी की अस्थिया ही पूरे तोल तोलता है। अन्य धन्धों के समान इस पेशे के भी कुछ गुर है और रहमत खां वह सब जानता है। उसे कोई ठग नही पाता। हवा में उछालकर हड्डी का ओजन (वजन) कर धरता है।

फत्तू ने शाहू और रहमत में अन्तर पाया था। शाहू होश मे रहते भी ईश्वर को नहीं मानता था। ईश्वर भक्ति उसके निकट एक कला थी। तो रहमत पीकर कर भी पाक-परवरदिगार पर ईमान लाता था। पाक परवर उसके लिए एक पर्दा था। पर पी लेने पर वह अपना तहमद तक न संभाल पाता था।

फत्तू पहले पूरा शाकाहारी था। रहमत खां ने उसे पीना-खाना सिखलाकर दीनदार बनाया था। सोचा था, साला गंवार पीकर पड़ जायेगा और वह भूरी के साथ गुलछर्रे उड़ायेगा। पर फत्तू खैरात की पी भी जाता और होश भी न खोता।

रहमत एक-एक रात मे उसके घर के गिर्द घिरी कांटेदार बाड़ के कई-कई फेरे लगाता और अलसुबह बैठकर पांवो में चुभे कांटे निकालता।

मशक्कत और तपत के बावजूद फत्तू ने एक पूरा पंजर गाड़ी पर फेंकते हुए एक ठहाका लगाया। इसी प्रकार वह रहमत के दम पर पीकर हर रात ठहाके लगाया करता था। और कहता था—'ए भूरी, मै तुझे किसी और की होने का मौका नहीं दूंगा। मन तो करता है तेरा गला घोट दूं पर गजब यह है कि तू मुझे अच्छी लगती है, तू स्याली है भी ऐसी कि हर कुत्ता तुझे चाटना चाहता है। पर मैं तेरी चमड़ी को चाट-चाटकर इस कदर खुरदरी बना छोड़ूंगा कि जो भी कुत्ता तुझे चाटेगा, उसकी जीभ लहूलुहान हो जायेगी।

तेरे गिर्द कई ऊकाब घिर आये हैं, किसी दिन तो मुझे नशे मे गर्क होना ही है और तब कोई ऊकाब तुझे झपट ले जायेगा। और इस खयाल के साथ ही वह सावधान हो जाता। और तावड़तोड़ उसका पसीना चाटने लगता। दारू जब जोर पर होती है तो पसीने का नमकीन जायका अच्छा लगता है। नमकीन से नशा गहराता है और जब वह गर्क होता तो भूरी पर जान छिड़कने लगता और फिर चौकस हो जाता।

लेकिन लाख चौकसी के बावजूद एक लिजलिजा-सा गीद्ध उसे अपनी चोंच

में दबा ही ले गया।

खुशफहम खयालों में वह पूरी गाड़ी भर चुका था। पर भूरी के भाग जाने की दुखदाई याद के साथ अन्तिम पंजर उसके हाथ से फिसल गया। काम से फारिग हो जाने का सन्तोष उसके चेहरे पर न था। उसे पांचू का खयाल आया। स्याला कभी काम में हाथ नहीं बटाता था। खाल उधेड़कर रख दूंगा अभी। पर पांचू जब उसके सामने आया तो वह हाथ न उठा पाया।

तो क्या वह कमजोर हो गया है। चाहकर भी गुस्सा क्यों नहीं कर पा रहा है। क्या नेकी का दौरा उस पर फिर सवार होने लगा है। हो, जो भी हो। बदी की राह चलकर भी तो क्या पाया? आखिर बना तो हाड़फरोश ही न।

कालू कान और पूंछ लटकाये उसकी बगल में आकर खड़ा हो गया। उसने उसकी पीठ थपथपाई। चल दोस्त, आज नई कुतिया से तेरी दोस्ती पक्की करा ही देंगे। नई नेकी की शुरूआत तेरी सगाई से ही सही। अब तू बुढ़ाने लगा है शादी बना ही डाल। बुढ़ौती में जोरू की जरूरत कुछ ज्यादा ही होती है।

इस वार्तालाप के दौरान पांचू उसकी नजर बचाकर गाड़ी के जूवे पर जा बैठा। उसने शेरू की पूंछ मरोड़ी, हाक लगाई और गाड़ी हांकने को हुआ तो फत्तू ने हाथ से छूट पड़े ऊंट के पंजर को उछालकर गाड़ी में फेंक दिया। पर गाड़ी का एक ओर का टायर बालू में धंस चुका था। उसने पीछे से जोर लगाया तो गाड़ी कुछ दूर तक धचकोले खाती चली। उस पर लदे हाड़ खड़खड़ाने लगे। पर थोड़ी दूर जाकर शेरू फिर रुक गया।

उसने धकेलकर पांचू को नीचे उतार दिया और जूवे पर खुद जा बैठा और लपककर आक की एक मोटी-सी शाख तोड़ ली तथा शेरू की पीठ पर प्रहार करने लगा। एक-एक कर आक की शाख के पत्ते झड़ते गये और वे उसकी स्मृति में उतरते गये।

ऐसे ही तो वे पत्ते थे जिनके सहारे उसने तीन दिन-रात गुजारे थे। खोपड़ियां चुराने और बेचने का राज जब खुल गया था तो गांव के हिन्दू भी मुसलमानों के साथ उसकी जान के गाहक हो गये थे। वह वहां छुपा, पत्ते खाता रहा था और आक की जड़ चूस चूसकर प्यास बुझाता रहा था। चौथे दिन पांचू ने उसे ढूंढ़ निकाला था और बतलाया था :

'बापू ! मां चली गयी। वह बंगाली उसे ले भागा। पर जाते-जाते गांव वालों को भी नेम दिलाता गया कि वे तुझे न मारें। तू अब घर चल।'

पर फत्तू ने उस दिन पहले-पहल पांचू को खूब मारा और फिर तो सिलसिला जारी रहा। उसका शक विश्वास में तबदील हो गया कि पांचू बंगाली की औलाद है। वह उससे घृणा करने लगा, डपटकर पूछा—'तू अपने बाप के साथ क्यों न गया?'

सैंत-मैंत मे ही मिल गयी ।

फत्तू तावड़-तोड़ लादी किये जा रहा था । और शेरू का पुट्ठा झुके जा रहा था । कालू एक ओर जीभ निकालकर पड़ा सिसक रहा था । प्यासा पांचू एक आक मे जा दुबका था ।

फत्तू गीद्ध की एकाग्रता से माल की छटाई कर रहा था । रहमत खां वड़ा पारखी है । गधे का पजर वह छंटाई मे निकाल देता है । कुत्ते के पंजर की उसे पहचान है । ऊट के पंजर का एक मन पीछे पूरा पसेरी तोल काटता है । गीला-सूखा छाटता है । केवल गाय-बछड़ी की अस्थियां ही पूरे तोल तोलता है । अन्य धन्धो के समान इस पेशे के भी कुछ गुर है और रहमत खां वह सब जानता है। उसे कोई ठग नही पाता । हवा मे उछालकर हड्डी का ओजन (वजन) कर धरता है।

फत्तू ने शाहू और रहमत में अन्तर पाया था । शाहू होश मे रहते भी ईश्वर को नही मानता था । ईश्वर भक्ति उसके निकट एक कला थी । तो रहमत पीकर कर भी पाक-परवरदिगार पर ईमान लाता था । पाक परवर उसके लिए एक पर्दा था । पर पी लेने पर वह अपना तहमद तक न सभाल पाता था ।

फत्तू पहले पूरा शाकाहारी था । रहमत खां ने उसे पीना-खाना सिखलाकर दीनदार बनाया था । सोचा था, साला गंवार पीकर पड जायेगा और वह भूरी के साथ गुलछर्रे उड़ायेगा । पर फत्तू खैरात की पी भी जाता और होश भी न खोता ।

रहमत एक-एक रात मे उसके घर के गिर्द घिरी कांटेदार बाड़ के कई-कई फेरे लगाता और अलसुबह बैठकर पांवो में चुभे कांटे निकालता ।

मशक्कत और तपत के बावजूद फत्तू ने एक पूरा पजर गाड़ी पर फेंकते हुए एक ठहाका लगाया । इसी प्रकार वह रहमत के दम पर पीकर हर रात ठहाके लगाया करता था । और कहता था—'ए भूरी, मैं तुझे किसी और की होने का मौका नही दूगा । मन तो करता है तेरा गला घोट दू पर गजब यह है कि तू मुझे अच्छी लगती है, तू स्याली है भी ऐसी कि हर कुत्ता तुझे चाटना चाहता है। पर मैं तेरी चमड़ी को चाट-चाटकर इस कदर खुरदरी बना छोड़ूगा कि जो भी कुत्ता तुझे चाटेगा, उसकी जीभ लहूलुहान हो जायेगी ।

तेरे गिर्द कई ऊकाब घिर आये है, किसी दिन तो मुझे नशे में गर्क होना ही है और तब कोई ऊकाब तुझे झपट ले जायेगा । और इस खयाल के साथ ही वह सावधान हो जाता । और तावड़तोड़ उसका पसीना चाटने लगता । दारू जब जोर पर होती है तो पसीने का नमकीन जायका अच्छा लगता है । नमकीन से नशा गहराता है और जब वह गर्क होता तो भूरी पर जान छिड़कने लगता और फिर चौकस हो जाता ।

लेकिन लाख चौकसी के बावजूद एक लिजलिजा-सा गीद्ध उसे अपनी चोंच

'टिशन तक तो गया था। वहां बंगाली ने सिग्रेट लाने के लिए मुझे चवन्नी दी, पर मैं लौटकर आया तो वे मुझे नहीं मिले।'

बंगाली दिन में अकेला भगा था। पर रात को लौटकर भूरी को ले भागा था। फत्तू यह जान गया।

बड़ी दुखद याद थी और वह फट पड़ने को ही था कि अचानक फटाक की आवाज ने उसे चौंका दिया। गाड़ी का एक टायर फट चुका था।

अब क्या होगा? बदहवासी में उसने दो-चार छड़ियां पांचू की पीठ पर झाड़ दी, पर शेरू की तो सामत ही आ गयी। मार से बेहाल बेचारा जानवर जोर लगाकर जरा भर गाड़ी खींच पाता और दो-चार हाड इधर-उधर बिखर जाते। पांचू जब तक उन्हें बटोरकर फिर से लादता और गिर जाते। गाड़ी पूरी धसक चुकी तो फत्तू पर भी पूरे तौर पर बदहवासी का दौर सवार हो गया। आक की छड़ी टूट गयी तो वह शेरू पर हाड़ फेंक-फेंककर मारने लगा।

एक कसैली कड़ुवाहट उसके हलक से होती जेहन में सामने लगी। जबान में कसाव आ गया और उसके सर खून सवार हो गया। शेरू जादुई ढंग से उसकी आंखों के आगे से ओझल हो गया। और शाहू उसकी मार की जद में आ गया, किन्तु वह ज्यादा देर उसके सामने टिक न पाया।

दृश्य बदला, अब शाहू के स्थान पर रहमत खां पिट रहा था। रहमत खां धराशायी हुआ तो एक ओर से उसका पक्का शत्रु बंगाली आ गया। उसे देखते ही फत्तू का खून खौलने लगा। वह उचककर गाड़ी से नीचे आ गया और लपककर बंगाली का टेटुवा दबाने लगा। वह इतने आवेश में था कि जान भी न पाया कि वह बंगाली का नहीं मरे हुए शेरू का गला दबाये जा रहा है।

वह पूरी तरह जंग के जोश में था कि अचानक खुदाबक्स थानेदार ने पीछे से आकर उसे अटंगी दी। वह गिर पड़ा। गिरते-गिरते उसने अपनी आंखों में टूटते कई एक तारों को देखा। और एक सुर्ख पर्दा उसकी दृष्टि पर तनने लगा। वह धरती में धसकने लगा। लाल वितान को कालिख निगल गयी और वह जैसे गर्दीली आंधी और भतूल के चक्रवात में फंस गया।

उसने अपने हाथ झटके, पांव पटके। अंधेरे से टटोला तो अधर में लटकती एक सूखी शाख उसके हाथ आ गयी। उसके सहारे वह एक जगह उतर ही रहा था कि फिर बवण्डर में फंस गया। अपनी हथेलियों को गोल घेरों में उसने अपनी पुतलियों के गिर्द घुमाया किन्तु जब कुछ भी न देख पाया तो बेसाख्ता चिल्लाया। वह चीख सूने उजाड़ रेगिस्तान में प्रतिध्वनित होने लगी।

'पाचू'''ओय पांचू ! सुनता है कहीं तू ? तू कभी आक की पत्ती न चबाना,

उसकी जड़ न चूमना, इस आक का हरामी जहर हड्डी-हड्डी में समा जाता है। जोड़-जोड़ में पैठ जाता है और वर्षों बाद भी अंधा कर मारता है। तू आक और आदमी से सदा सावधान रहना ! और उसके भीतर खोलता लावा शान्त हो गया।

उसकी मुट्ठियां खुल गयी और हाथ पसारे चल दिया। अब वह न नेकी की राह पर था, न बदी की डगर पर। वह उसी पगडण्डी पर चले जा रहा था, जिस पर से होकर आम आदमी चला जाता है।

वह पांचू से भी यही कहना चाहता था कि 'तू कभी नेकी-बदी के फेर में न पड़ना। आदमी से नहीं आदमियत से समझौता करना। इस पर अगर आदमी तुझ पर भौंकने लगे तो कालू जैसे किसी कुत्ते से दोस्ती गांठ लेना।'

पर पांचू उसकी नसीहत सुनने के लिए वहां न था। वह बुबकारी मारते हुए गांव की ओर दौड़ गया था। अकेला कालू कान उठाये उसके पास बैठा था। कालू को आगत सूझ गयी थी।

शीघ्र ही आगत आ गयी। रहमत खां ने आते ही गालियां उगलनी शुरू कर दी। 'स्याला सारी उम्र हराम की खाता रहा और मरते दम तक नमकहरामी से बाज न आया। खुद मरने से पहले शेरू को पीट-पीटकर मार गया। पर इसकी हड्डियों में शेरू की कीमत वसूल न की तो मैं भी असल का तुख्म नहीं।'

बड़बड़ाहट में उसकी नजर कालू पर पड़ी, कालू उस पर झपटने ही वाला था कि लाठी के वार से चुटिला हो गया। बेचारा जानवर रहमत से लड़ न पाया, दो-चार लाठियां खाकर जमीन पर पूछ घसीटते ढोरों के मसान की ओर चल दिया। शायद सोचते जा रहा था कि हरामी मेवात को काट खाता तो कैसा रहता, जैसे आक का जहर वर्षों बाद आदमी के जेहन पर चढ़ मारता, वैसे ही हम कुत्तों का काटा भी किसी दिन पगलाकर मर जाता है।

चीता

'ऐ चवन्नी संभाल तेरा लहगा' चीता गुर्राया।

थ्रिल। ए पॉज।

चवन्नी चौंकी। सब दुरुस्त तो है। पर चीता चौंकाता है। हव्वा से आज की औरत बनाया चाहता है। वह बचपन से किशोरी होने तक हव्वा की जिन्दगी जीती रही थी। शर्म से वाकिफ़ा ही न हो पाया। कपड़े पहनने लगी, तब भी लजवन्ती न बन पायी।

शुरू से निगोड़ी सोहबत ही ऐसी थी कि ह्या जिन्दगी का हिस्सा ही न बन पायी। कलर्कों और ड्राइवरों के छोरों के साथ घरौंदे बनाती। कई एक के साथ घर बसाती, फिर उनसे कुट्टी कर दूसरे के साथ बैठ घर बनाती। जब हाव-भाव से समझ झांकने लगी तो लड़के चवन्नियां दिखाने लगे। बदले में वह भी आंख झपका पच्चीस पैसे ऐंठ 'टिली री···ह···ई' कर भाग जाने में निष्णात होने लगी। और यूं लुक-मिचैया के खेल में ही जवान हो गयी। तब शातीर औरतें कहने लगी।

'लड़की बड़ी बेशर्म है।' जबकि उस बस्ती में शर्म ने कभी टाट की ओट भी न पायी थी। अगर सच कहा जाये तो उसका तो जन्म ही एक आधुनिक बेहयायी थी।

बेतरतीब झोंपड़-पट्टियों, कच्चे घरौंदे जैसे घरों का माहौल। लगभग आदिम डेरावन्द बस्तियों जैसा। नशे की हालत में भी मन को तसल्ली न हो, इससे भी कम दूरियों पर अदवायने उधड़ी चारपाइयों पर, फटे टाट के टुकड़ों के ऊपर दारू की गन्ध के भभके छोड़ते, गाली-गलौज करते लोगों के दरबे से निकलकर, घघरिया पहनकर ऊंचे नेफे के तनाव से कसी तनी-तनी मिल में अनियमित मजदूरिन बनी कि उन्हीं दिनों चीता आ गया। चवन्नी को छोरा अच्छा लगा, पर वह दीवानगी से दूर, कोरा मास्टर भर।

चवन्नी आदतन आंख झंपकाती तो वह झापड़ झाड़ता। तब भी चीते की

दवक से डरी। लहंगा तो दुरुस्त था। पर चीता उसे वक्त-बेवक्त सहूर सिखलाता था।

वैसे चीता भी कोई अभिजात न था। बनैला था, कोरा जानवर। नंगे कुल्लों वाला जानवर। बस, डकराइयां लेता रहता। जुबान से दबकाता। डकार में क्या बोल गया, तुरन्त भूल जाता। इसलिए अपने लोगों को अच्छा तो लगता, पर ऊजड माना जाता। 'फिजिक परसेन्स' कहीं और, चीता सोच में कुदालें भरता कहीं और चला जाता।

स्ट्राइक चलते चालीस दिन हो गये। भागमभाग में उसका सानी नहीं। यहां चीता, वहां चीता। कहां है चीता! 'मास मिटिंग।' जुलूस, आर्गेनाइजेशन। चीता को दम मारने को फुर्सत नहीं। रफीक, नाइक, कलुआ पकड़ गये। चवन्नी पिट गयी। पिटते-पिटते एक को बांह से काट खाया। भाग गयी। किधर गयी। खुद आ जायेगी।

राखाल दा आने वाला है। रात की रात दफ्तर को दुरुस्त करना है। सफाई, किताबों की झड़ाई राखाल दा को पुस्तकों से बेहद लगाव है। इतिहास के अध्येता हैं। आदमी खुद हिस्ट्री है। 'एण्ड ऑल हिस्ट्री हैज बीन ए हिस्ट्री आफ क्लास स्टगल। राजा रानी का स्टोरी। 'आक् छी।' राखाल दा ऐसा बोलता।

'कीप योर सेल्फ बिजी। मोर बिजी।' चवन्नी ताबड़तोड़ किताबों की धूल झाड़-झाड़कर बरबरक को थमा रही। चीता रेक पर जमाता रहा। 'ऐ वो वाला 'वालियम' सो एण्ड सो। सो फोर्थ एण्ड सो आना क्वाइट सो। सब जम गया। 'रिफामिस्ट' इस कन्टरी में कम्पलीट रिवोल्यूशन लायेगा।' वह हंसा। राखाल दा भी ऐसा-ऐसा हंसता।

'मजूर केरे कोउनो औजार।'

'हड़ताल। हड़ताल।'

मजदूरे, र लक्षे कौन?'

'बोलबो। बोलबो।'

राखाल दा को लिवाने ठिग न पर जाना है। 'अभी वो कुछ वैसा-वैसा ही होगा तब'''जब राखाल' दा देहरादून के अस्पताल में बिस्तर पर था। टूर पर आये। 'बीमार' हो गये।

एक लड़का गोरा-चिट्टा, नीली परदेशी आखों वाला। पुतलियों से देशी कालापन नदारद। पेशानियों पर खुलता चौड़ा माथा। सुनहरे बालों के अवारा गुच्छे। कुल मिलाकर दा समझ गये। टामी खून से नेटिव के संसर्ग की उपज। और अब हॉस्पिटल के कैन्टीन में बैयरागीरी करता है। ऐसे बच्चों का यही हश्र होता है।

दा को चाय का चस्का। चुरूट की लत।

लड़का घड़ी-घड़ी में सप्लाइ देता।

'तुम्हारा नाम?'

'चीता।'

'कहाँ तक पढ़े हो?'

'बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेन्टल तक, सर।'

'यह भी कोई पढ़ाई है?'

'फादर डन्कन ने जो पढ़ाया, वही तो पढ़ा, सर।'

'''सर, यह सर कौन होता है?'

'नेई जानता, सर।'

पिल। एपॉज।

और लड़का शनैः-शनैः राखाल दा से हिल गया। बतला दिया।

'हम क्रासब्रीड है, सर। हमारी मम्मी गढ़वाली, सर, नेई, फादर? चर्च के फादर को जानता, अपने बाप को नेई। हमारा मदर—वैगाबाण्ड औरत था।'

'यह कौन-सी भाषा का शब्द है?'

'नेई जानता, सर फादर डन्कन हमारा ममी के खातिर ऐसा बोलता।

'वो फारेनर सोल्जर को 'चेम' करती। सी स्टिल ऑलाइव, सर।

'सी इज ए नॉवेल लेडी। हम उसका बोत रिस्पेक्ट करता। सी केप्ट अस आलाइव। (उसने हमको जिन्दा रखा।) दूसरा ऐसा औरत तो अपना 'बेबी' को 'ब्हेली' में बीक (फेंक) देता।'

चीता बेझिझक, बेहिजाब बोले जा रहा था। जैसे दोगला होना उसके वश की बात न थी। राखाल दा उसे पहचानने की चेष्टा कर रहे थे। 'कहीं यह मातृ-युग के बाद पैदा हुआ, वही लड़का तो नहीं है। जो कह रहा है—'आप मेरे पिता का नाम क्यों जानना चाहते हैं; आचार्य। मेरी माँ का गोत्र ही मेरी अभिजातीयता के लिए काफी है। मेरी माँ यहाँ के सभी ऋषियों की तो दासी है। उन्हीं में से किसी एक की संतान हूँ मैं।'

राखाल दा सुने जा रहे थे। चीता अपने वंश की विरदावली पढ़े जा रहा था।

' हमारा नानी भी सेकिण्ड ग्रेट वार' के टेम ऐसा किया। सी वाज आलसो एन यूनिक लेडी। वार के टेम बोत गौरा पलटनिया देहरादून फरलो पर आता रहा। हमारा नानी सहस्रधारा के रास्ते पर उनको ट्रेप करता। वो अंग्रेजी नेई जानता। बस, एक ठो फोटो'''।

' जे कोई 'टामी' लाइक नेई' करता। तो स्याला फिरंगी को वो वो गाली के पोचा बोवर कुछ नेई समझता। मंकी के माफक हसता। ही'''ही'''ही। वो भी बोत मरसी फुल लेडी था। एक्स्ट्रीमली ब्यूटीफुल। आई सीन हर।

हमारा ममी डन्कन के चर्च में रहता। बट ही चेरड भी आऊट द चर्च।' (लेकिन उसने मुझे चर्च से निकाल दिया।)'

'व्हाई ?'

'ऐसा है, सर। उसने हमको अंग्रेजी सिखलाया। हम बुक-वार्म बन गया। पर वाइबिल का ऐसा-ऐसा गीत गाते हम उसको समझा गया।

'हिंसा उसका ओढ़ना है। उसकी आँखो में चर्बी झलकती है। उसके हृदय में दुष्ट कल्पनाएं उठती है। वे दुष्ट भाव से बातें करते हैं। दुर्जनों के पास जाकर उनकी प्रशंसा करते हैं। इसलिए ये दुर्जन हैं। 'हम जाना सर वो कौन हैं ?'

'शैतान आदमी को हरामी बनाता है।' हम बोत वर्क किया, सर। वो तब भी हमको हरामी बोलता। हर उस आदमी को शैतान बोलता, जो सच्ची किताब पढ़ता। एक ऐसा इन्सान से हमारी भी दोस्ती बन गया। उसका दिया किताब पढ़ते हम एक दिन पकड़ा गया। और चर्च से हरथर आऊट कर दिया गया।'

'नाम क्या था किताब का ?'

'नाम का याद नेई, सर। स्टोरी कुछ याद है। एक कोई पादरी था, सर। फादर डन्कन के माफक कुबड़ा। रोज प्रेयर में बोलता। जब भी धरती पर अनजस्टिस और पाप बढ़ता है, प्रभु औतार लेता है। और फिर फ़ादर रोने लगता। 'अरे प्रभु के मेमनो ! तुम भी उस प्रभु के बेटे के लिए काम करो। उस पर यकीन लाओ। कुछ ऐसा करो कि प्रभु जल्दी औतार ले।'

'....और फादर जितना 'अगली' उसका बीवी उतना ही हेण्डसम। सिम्पलटन।' राखालदा बीच में बोले।

'यस सर। आप ठीक समझा। आप पूरा स्टोरी जानता। यू आर आलसो नोवल सर। हम तो वोत कुछ भूल गया था, सर।'

'भूलना क्या ? वो बेचारी सिम्पल लेडी। एक रात प्रभु को जल्दी जमीन पर बुलाने को काम शुरू करने को था कि तभी पादरी आ धमका। उसने देखा खूटी पर एक भारी-भरकम ओवर-कोट टंगा है। पादरी ने बोत गुस्सा किया। मगर मिलट्री का मेजर जबर था। अपना ओवर-कोट पेहना। हेट उठाया और अपना छड़ी हिलाते चला तो पादरी ने गेट पर उसके लिए रास्ता बनाया। मेजर सीटी बजाते चला गया तो पादरी का बीवी पश्चाताप करते बोला।

'तुमने सब सत्यानाश कर छोड़ा डीयर। गलत वक्त पर आकर तुमने सब गोड़वड़झाला कर दिया। अब प्रभु नेई आयेगा।'

मोपाँसा की कहानी खत्म हुई। उसने अपनी कहानी शुरू कर दी।

'हमारा ममी' मैसोकिस्ट है, सर। वो जैसे पीड़ा भोगने में ही आनन्द लेता है। और फादर डन्कन पूरा-पूरा 'सैडिस्ट' है। वो नाइट में ममी को रुलाता है।

गुरु खुद रोता है और 'केण्डिल' जलाता है। घुटना टेककर रोता है। प्रभु की स्तुति करता है।'

'दिन में प्रभु अपनी करुणा भेजता है।
मैं रात मे उसके गीत गाता हूं।
तू अपने निर्णय में निर्दोष है।
और न्याय में निष्पक्ष है।
जूफा की डाली से इस सबरी को शुद्ध कर।
तब यह पवित्र हो जायेगी।'

थ्री। ए पॉज।

फ्रामग्रीड इन्लेक्च्वुएल होता है। फादर डन्कन ऐसा बोलता रहा।

'पर हम तो इन्टेलीजेन्ट नेई सर।'

'हो जायेगा। हमारे साथ चलो।'

'कहाँ जाना होगा, सर!'

'कलकत्ता।'

'वहां क्या करना होगा, सर?'

'शैतान की दी पुस्तक में जो पढ़ा, उससे आगे पढ़ना होगा। चर्च द्वारा घोषित तथाकथित शैतान स्ट्रगल सिखाता है। मुट्ठी कैसे बन्द की जाती है। सिखाता है।'

राखाल दा के साथ गया तो शीशे का जार फौलाद का पंजा बनकर लौटा। आर्गेनाइज करना। एटस्ट्रा'''(आदि इत्यादि)। अब वह जानता था। बुर्जुआइज वेट इज'''जो कभी कम्पलीट लड़ाई नहीं लड़ता। विक्टरी के ऐन मौके पर बारगेनिंग कर स्ट्रगल को बिट्रे करता है।

वह फीरुड में आया। मोर्चा सभाला। थ्री। ए पॉज।

'ऐ चवन्नी। संभाल तेरा लहंगा और तेरे 'किडबटालियन' को लेन मे लगा।' और आडर देकर जैसे चीता सो गया। हर घड़ी सोता है चीता और पल-पल झपक खुलती है। रातभर करवट बदलता है; दिन में दौड़ता है।

''''आज की ताजा खबर। भूखे मजूर हथियार डालने लगे। आज अपराह्न की ट्रेन से यूनियन के बड़े नेताओ का आगमन। हड़ताल टूटने के आसार।'

'मजदूर का हमदर्द' की एक प्रति हॉकर डाल गया। चवन्नी ने सरसरी नज़र से पढा। फिर फाड़ फेंकने को मन किया कि पर्चा चीता ने झपट लिया।

'आक् छिः।' स्याला येलो जनरलिज्म करता है 'न्यूज पेपर इज नाट आनली ए कोलक्टिव प्रोपेगेनडिस्ट।' यह आन्दोलनकारी और संगठनकर्ता भी होता है। ये पीले पर्चा वाला मूवमेन्ट को 'टारपीडो' करता है। शेम।—

'किधर टूटता है मजूर?' बरबरक की एक आवाज पर पूरा। हुजूम पक्ति-

द्ध। किड बटालियन सावधान। फौरइन वन। चार-चार की कतार में। जिस दिन पंक्ति टूटेगी'''।

'''चालीस दिन पहले की ताजा खबर।

मिल का बायलर अचानक फट गया। अनेक मजदूर आलुओं की तरह भुन गये। ग्यारह मरे। शेष अस्पताल में।' बारीक टाइप।

फिर मोटी हेडलाईन।

'मैनेजमेन्ट की उदारता।'''पांच ठठरियों की सिनाख्त। प्रत्येक मृतक के परिवार को पांच हजार की तुरन्त सहायता। हर परिवार को सालाना एक हजार की अनुदान राशि भी मिलती रहेगी।'

पर जिनकी सिनाख्त हुई उनका अतापता कहीं दर्ज नहीं। मैनेजमेन्ट उलझन में।

फरेब। क्रोकोडाइल टीयर। विशुद्ध दूध फ्राड। बायलर अपने से नहीं फटा है। कई सौ लाख का बीमा था। पहिले भी भूसी में आग लगाकर मैनेजमेन्ट लाखों वसूल चुका है। भेड़ियों का गरोह आदमी मारकर पैसा पीटता है। आज मघई को भून दिया। कल होरी झुलसा जायेगा।

नहीं चलेगा, ऐसा मृत-व्यवसाय। स्ट्राइक। कम्पलीट स्ट्राइक। 'जुडिसियल इन्क्वायरी?' 'नो। 'ड्रामा नेई मांगता वी ट्रेड फर्फेअप। हिफाजत की गारन्टी। नो मोर एक्सीडेन्ट। नो मोर अनहाईजिनिक इन्वायरमैन्ट।

'आवाजें। आवाजें।' मालिकेर जुल्म चोलबे ना। धप्पाबाजी चोलबे ना।

राखाल दा आयेगा। कम्पलीट सोलुशन लायेगा। मजूर स्टेशन पर जमा।

'मालिक तोमी होशियार।' पर प्लेटफार्म पर पुलिस दस्ता चाकचौकस मिला।

तभी एक वालेंटियर आया। 'टेलीग्राम। चीता को दो।'

: रेल से नहीं, दो बजे की फ्लाइट से आ रहे हैं केन्द्रीय नेता।

'राखाल दा प्रोग्राम चेंज नेई करता। हवाई जहाज से नेई चलता।'

'किसने किया टेलीग्राम?'

'सुलेमान ने।'

'तब झूठ नेई होने सकता।' रिट्रीट। एरोड्राम दो मील दूर। वक्त कमती। बरबरक, इस्माइल, रामधन, फिलिप, तुम जीप से जायेगा। शेष सब पैदल। नेई हम जीप में नेई। हम दौड़कर रस्ता में हर कामरेड को बोलता जायेगा। चवन्नी। चवन्नी किधर। हेरी। हमारे साथ दौड़ चलो।

वे दोनों दौड़ते दूर चले गये। एरोड्राम के रास्ते पर सामने से आती दो कारें

मिलीं। दोनों मिल की। भीड़ के कारण रास्ता जाम। कारों को भी रुकना पड़ा।

चीता आगे आया तो कार के विन्डो से एक हाथ निकला। इशारा हुआ। फिर बोला।

'कामरेड चीता इधर आओ।' उसने आवाज पहचानी। स्वर सुलेमान का था। उसकी दायीं ओर दो अपरिचित और। कार की अगली सीट पर ड्राइवर के बराबर 'इन्टरप्राइज ग्रुप' का मैनेजिंग डायरेक्टर बैठा था।

'राखाल, दा किधर? कामरेड सान्याल कहां?' चीता ने चेतावी से पूछा।

'छोड़ो, इनसे मिलो। ये पार्टी के नये जनरल सेक्रेटरी मिस्टर सोनकरे और ये जनाब एतमाद। आओ तुम भी इधर बैठो।' सुलेमान ने अपनी बगल में जगह बनाते कार का दरवाजा खोला।

—नेई, 'हम मिल की कार मे नेई बैठता।'

मैनेजिंग डायरेक्टर की पेशनियों पर सलवटें तन गयी। मिस्टर सोनकरे की ठुड्डी के नीचे जमा मास का लोथड़ा लटकने लगा। एतमाद ने खिड़की के रास्ते पीक थूका। पिच्।

'जिद् न करो। सोनकरे साहब जल्दी मे है, आओ बैठो।' सुलेमान के आग्रह मे दर्द था।

'हम पैदल दौड़ते आपसे अगाड़ी पहुंचेगा।'

कारें भीड़ के रेले मे राह बनाती रहीं और वह मोड़ पार गया। चवन्नी उससे चिपके चली।

'ब्लडी बस्टर्ड।' मैनेजिंग डायरेक्टर के स्वर में हिकारत थी।

'राखाल दा जिन्दाबाद।' कॉमरेड सान्याल ज़िन्दाबाद।' मजूर अभी मुगालते में नारे लगाये जा रहे थे। सोनकरे का थोबड़ा बुलडॉग के चेहरे की अनुकृति बने जा रहा था। एतमाद के गले मे बलगम अटक गया।

रेलवे क्रासिंग का फाटक बन्द। चीता-चवन्नी उछल कर पार। कारें फिर रुक गयीं। पर फाटक खुलने के साथ ही दूसरी ओर पहुंचकर कारों की दिशा बदल गयी। यूनियन के दफ्तर की राह नहीं, वे मिल के गेस्ट-हाउस की ओर दौड़ चलीं। वरवरक ने जोर उनके पीछे लगा दी। नेताओं के इस स्वैच्छिक अपहरण पर वह गुलक्षण भरे धागे समेट रहा था।

स्याला मेनमेविक। रेस्ट हाउस में गू, खाकर अब इधर को झक् मारने आया है। अब बूम मारेगा (बकवास करेगा)।' चक्कर लगाते चीता का जबड़ा जानवर की तरह चलता रहा। मजूरों की मुट्ठियां बन्द थीं।

बेरबरक की जीप मे वे आये। सोनकरे नाक को रूमाल से ढाके। 'ऐसा तुम्हारा दफ्तर। बैठने के सलीके का चेयर नही। फर्श नंगा, डर्टी। आनली दफॉ-रेस्ड आव बुक्स एण्ड फाइल्ज।'

'सोनकरे साहब की औकात का लीडर आया। बट नो स्लागन। नो फ्लेग। नो स्वागत।' एतमाद टाई की नाट ढीली करता गया। बर्राता रहा।

'राखाल दा को ऊपर का टीप-टोप पसन्द नेई था।'

'डेम राखाल सब रफ एण्ड टफ मांगता था। बट ही इज नो लौंगर इन आफिस ब्यूरो।'

चीता का जबड़ा खुलने लगा। नाखून थैलियों से बाहर आने को हुए। सुलेमान के इशारे पर रुक गया, वर्ना झपटने को था।

'मीटिंग की तैयारी है? सुलेमान के प्रश्न में सोद्देश्यता थी।'

'सब तैयारी है। मगर ये लोग पहले उधर कैसे गया?'

'सवाल न करो चीता। मीटिंग होने दो, कलई आप से खुल जायेगा।'

सुलेमान उसे जबरी घसीट ले जाते सुगबुगाया।

'ये मंच है कि मचान?' एतमाद के चेचक-रु-चेहरे पर धंसते फर्श जैसी तरेरें उभरने लगी। नेता बांस की सहतीर के मंच पर। मजूर सामने, अगल-बगल। चीता दीवार का ढासना लगाये खड़ा हुजूम के कानों मे सोनकरे की आवाज घन पर पड़ते हथौड़े की धमक-सी गहराने लगी।

'कोई मैनेजमेन्ट अपने बॉयलर को बरस्ट नही करेगा। मालिक अपना प्रोपरटी मे पलीता नही लगायेगा। प्यारे मजदूर भाइयो। आपको मिसलीड किया गया। मोगालता दिया गया। तरद्दुद मे डाला गया। हमने जांच तो मालूम किया, ऐसा 'रुमर' किसने फैलाया।' 'कैसा जांच किया? कैसा बोलता है, जैसे पैसा ले के आया। नाम बताओ। किसने गलत रुमर फैलाया।' कई आवाजें। सोनकरे सवालों की उपेक्षा कर फिर बूम मारने लगा। कोलाहल।

'सुनो, सुनो। सोनकरे साहब आप लोग के हित का बात बोलता।'

एतमाद ने शान्त करने की कोशिश करते कहा।

'हम बोत-बोत दुखी हुआ। आप लोगों ने कारखाना में तोड़-फोड़ किया। मशीन को डेमेज किया। टूल्ज को डेस्ट्रॉय किया। अपने ही कन्सर्न को बिट्रे किया।'

'किसने किया बिट्रे? मेहनतकस कभी धोखेबाज नही होता। मजूर को अपने औजार से प्यार होता है।'

हुजूम एड़ियों पर खड़ा होने लगा।

'मैनेजमेन्ट को हमने रोक दिया। तो अब कोई केस फाईल नहीं करायेगा। और कोई एरेस्ट नहीं होगा। हमने सेटलमेन्ट किया। 15 परसेन्ट बोनस पर

किया।'

'नहीं, नहीं, मंजूर नहीं।'

'चोप्प, सुनो। सोनकरे साहब ने आपके हित का बात किया।'

'सोनकरे मुर्दाबाद। नकली नेता गो बेक।"

'मुर्दाबाद जिन्दाबाद, गो बेक बोदा-बोसीदा नारा। अब नया स्लोगन चाहिए। उत्पादन का नया नारा। प्रोडक्शन का फ्रेश मूवमेन्ट। ही हज नोट वर्क। नाईदर सैल वी ईट।'

'शर्म। शर्म। स्याला तुम मारता है। वर्क हम करता है। लाभांश स्याला स्पाइडर मकड़ी खाता है। बरबरक काबू रखने में अब लाचार सा अपने से लड़ रहा। चीता को याद आया।

'द जार कोट फाइट, ईस्यूड ए मेनिफेस्ट।
लिबर्टी फार द डेड, फार द लिविंग ऐरेस्ट॥

जार के दरबार ने घोषणा-पत्र जारी किया। मुर्दों को आजादी, जिन्दों को जेल।

'हमारा बात नहीं मानेगा तो तुम सब जेल जायेगा। तुम व्यर्थ में स्टण्ट खड़ा करता। हम पर छोड़ो। हम सब सेटिल करेगा। तुम फैक्टरी—हाईजिनिक का बात करने वाला पहले अपना झुग्गी साफ करो। सब दारू पीता। ताड़ी सुड़कता। तुम जुआ के फड़ पर पैसा बीकता। बेचारा औरत इज्जत बेचता।

हम एलान करता। शुरू से स्ट्राइक ब्रेक। सब लोग वर्क ज्वाइन करेगा। आ गाड़ी का 'टॉक' पार्टी कन्टीन्यू रखेगा। तुम अपना औरत-बच्चा का पेट भरने, उनको जिस्म बेचने से।

अचानक जैसे भीड़ में सैलाब आ गया। 'स्याला सब लेबर की खुद्दारी जिल्लत (जमीर) पर एटैक करता है। मारो। प्लेटफार्म से नीचे उतारो।' चीता चीखता है। 'नहीं, नेई। दुश्मन को मौका न दो। 'ही वान्टस टू ट्रैप अस।'

पर कोलाहल में किसी ने कानोकान न सुनी। 'शान्त। खामोश। हम सेटिल करेगा। हम सेटिल। हम'''। तभी तड़-तड़ातड़। एक-दो-तीन पत्थर मंच पर। होहल्ले में नेता नौ-दो ग्यारह हो गये। गोमिया पाशा का काला जादू उड़न छू।

मजदूर दफ्तर के आजूबाजू जमा। चीता ने इन्क्वायरी की। 'पत्थर किसने चलाया! इस्माइल, फिलिप, रामधन किसी ने नहीं। चवन्नी एक कोने में बैठी निश्चिंत नाखून कुतर रही। उसका लहंगा बिलकुल दुरुस्त।

'हूं। तो अब लहंगे की हिफाजत आप करना सीख गयी। नाभी के नीचे कुण्डली फन उठाने लगी है। बेवक्त दंश फिर मार सकती है।'

चीता हौले से बरबरक के कान के पास मुंह ले जाकर बोला।' की पहर वेलेन्सड कॉमरेड (कॉमरेड उसको शान्त रखना)।'

तभी शोर हुआ। 'मीटिंग। मीटिंग। स्याला जहर उगल गया है। कुछ कम-जोर कलेजा का बकेर नीला पड़कर, ढीला पड़ सकता है। कॉमरेड चीता इधर आओ। यहाँ बालकनी पर खड़ा होकर बोलो।'

' हम कोई लेक्चर नेई करेगा। सीधा-साधा कुछेक सवाल आप सबसे करेगा। आप जवाब देगा। जै आपका मन हो बोलेगा तो स्ट्राइक चलेगा। नेई तो ब्रेक होगा।

'हम पूछता। हम लोग में से अनेक मानसिक रोग 'पोरोबाइया' का शिकार क्यों होता। हमको चर्मरोग क्यों होता?

' माथा काहे चकराता! भरी जवानी में गजा क्यों हो जाता?

' सिलिकोसिस,' एस्बोटोसिस' जैसा रोग क्यों होता?'

चीता ने एक-एक कर चेहरों को पढ़ना शुरू किया। जैसे सब पर एक जैसी इबारत लिखी थी। रासायनिक धूल, धुंआ, गर्मी, कम्पन शोर।

'कारण आप सब लोग जानता। मजूर को बीमारी से बचाने वाली व्यवस्था कोई बेसी महंगी नेई। मगर थोड़ा-सा बेसी मुनाफा के लिए करता नेई। ऐसे मे हम लड़ें कि लड़ाई बन्द कर दें। हमको अकेला लड़ना है। निहत्था लड़ना है। फिडरशिप ब्रिट्रेड अस।'

'हम तुम्हारे साथ है।' अचानक पीछे से प्रकट होते सुलेमान बोला।

'साथी सुलेमान। हुर्रो हुर्रो'''। कॉमरेड चीता। ब्रेवो। हम स्ट्राइक जारी रखेगा। आज भूखे लड़ेंगे, कल की रोटी के लिए।'

'''कि तभी गड़बड़ हुई। भगदड़ पड़ी। मालिकों के गुर्गे निहत्थे न थे। कानून की हिफाजत करने वालों को सिर्फ निगरानी रखने के आदेश थे। दस्त-दाजी का हुक्म न था। लाठियां बड़ी देर तक तड़तड़ बजती रहीं। ढेले भी चले।

'पिटो नही। छिपो।'

आतंक की रात। गुण्डों का उत्पात। उस रात फाँश औरतें भी घरों से न निकलीं। सुबह के धुंधलके में चीता ने चवन्नी को ढूंढ़ निकाला। उसको रक्त स्राव हो रहा था। 'वो सब हमको रातभर रोका। वो चेचक-र-चेहरे वाला भी उनके साथ था।'

'वो स्याला चितवा। साथ में चवन्नी भी। मारो। पकड़ो।' चवन्नी लहंगा संभाल भागी। चीता ने हाथ, पीठ, टखनों पर वार। रोके भागा, फिर पलटा। एक को अटंगी दी। लाठी हथिया ली। पूरी चपलता के साथ हाथ चला। एक गिरा शेष भाग गये। उसने चवन्नी को सहारा दिया।

'हमको छोडो। अपने को सभालो। हम तुम्हारे बरोबर दौड़ चलेगा।'

खून टपकता रहा। दोनों बस्ती की हद्द पार गये। कंटीली झाड़ियों में धंस कर पसर गये। अब कुत्तों की भूख नहीं सुनाई दे रही थी।

नो लोंगर थ्रीत। एक्यूट पॉज।

'ऐ चवन्नी। नेई चिताली। हम अपनी सही ठौर आ गया। हम जानवर है। ब्राउज। पत्ती खाने वाला जानवर। चीता···नेई। हमारी जीभ भी लार मे घुला रसायन हमारा घाव पूर देगा। जानवर का घाव ऐसे ही पुरता है। हम ठीक होकर फिर लौटेगा।···हां ऐसे चाटना। पर वे एक-दूसरे को न चाट पाये। इस डर से कि कोई मानव-रक्त का कतरा हलक से न उतर जाये।

ख़ून

सूरज को पश्चिम क्षितिज में छिपे दैत्य ने जबह किया। सूरज का कत्ल हुआ तो आसमान के उस कोने में ललछौंहे रक्त की लालिमा फैल गयी। कबूतरों के दल-बादल जोड़े 'विक्टोरिया' की गुम्बदों पर आ जुटे। दिन को दोजख रात को जन्नत मानने वाले हमामों के नंगे, सड़कों के शरीफ अपनी ऐशगाहों से बाहर आने लगे। सन्ध्या के रेशमी समां को और खुशगवार बनाती, रोशनाती नियॉन बत्तियों का प्रकाश सर्वत्र फैल गया। अंधकार में डूबने से पहले ही रात—सफफाफन जिस्म हो गयी तो शरीफों की सैरगाह में अमीर जोड़ों की बदफैलियां भी परवान चढ़ने लगी।

अर्ध-नग्न, बेहिजाब, बेइख्तियार पतंगों-सी निरावरण गौरांग तन्वंगियों की मर्दों के प्रति बलात्कारी बहकन को देखते, मजा लेते, सिपाहियों की नजर एक बदनुमा गठरी पर पड़ी। मैले-कुचैले कपड़ों में पड़े आदमी को देख उनकी तबीयत का जायका बिगड़ गया। शरीफ सोहदों के वृन्दावन में यह बदगुमान आदमी कैसे घुस पाया।

सिपाही हरकत में आ गये। शरीफों के रक्षाबोध ने कंगले की सूखी पसलियों को डण्डे की नोंक से टहोका दिया। बार पड़ा कि सूखी हड्डियां टनटना उठी। सिपाही ऐसे आत्म-सुख से हंसा जैसे मन्दिर के घंटे पर टकोर कर पुजारी हंसता है। पर ठठरी ने कुनबुनाते, उमकते करवट ली। पार्श्व के पलटाव के साथ नीचे की पॉकेट ऊपर आ गयी और साथ ही नीले-नीले नोटों की झलक। सिपाही चिहुक उठे।

'स्याला पॉकेटमार है।' पहला सिपाही झुका। नोट झटके। गिने। दस-माले नये अटंग सात थे। पॉकेटमारों को पकड़ने वाले जेबकतरे दो थे। तीन-तीन की तक्सीम आसानी से हो गयी। छुट्टों का झंझट कौन करे। सातवा नोट शराबनोशी के खाता खाते में डाल दिया।

'स्याला यहां भी पॉकेटमारी करेगा। कर चुका होता। पर कच्ची की पूरी

बोतल चढ़ाये है, इसीसे ब्लेड न चला पाया।' दे डण्डा। मार ठोकरठठरी को सचेत किया तो पंजर ढहता-पड़ता दरिद्रों के लिए वर्जित उस जन्निल के बागीचे से आप ही बाहर चला गया। पर बाहर आकर भी उसी पार्क की सफ़ील का सहारा ले पड़ रहा।

पर फुटपाथ के भी तो पुश्तैनी दावेदार होते हैं। कंगालों-कोढ़ियों के सरगना, फुटपाथों के दादा लोग सिपाहियों की सरपरस्ती में यहां भी चौथ वसूलते हैं। रात घिरी त्यों-त्यों भीड़ बढ़ी। उसे खिसकाती गयी और इस खिसकन पट्टी में वह फिर अनजाने ही जिन्निल के बागीचे में आ धंसा। सिपाहियों का वही जोड़ा अभी ड्यूटी पर था। पर अब वह उनकी दृष्टि में एक खाली टीन था। मरियल मानुस, जहां मरे, वहीं दोजख से निजात। सिपाही सूवरों के समान थुथनियां उठाये खुशगवार जोड़ों को निहारने में गर्क हो गये।

'स्साली पार्क की ड्यूटी बेशी खराब तो नहीं। जुल्फों का मेला फोकट में देखिन को मिलता है। बस, दुईएक पॉकिटमार से फिफ्टी का सौदा तैय करना होगा।' फिर सवाब ईहां, शराब मयखाने में।' सिपाही खुशफ़हमी में हंसे।

आखिर खुरमस्तियों से अघाकर शेखशाही जोड़े लौटने लगे। पुलिसियों की भी ड्यूटी खत्म। पार्क के गेट बन्द कर दिये गये। उस पर किसी चौकीदार की नजर न पड़ी। वे खाली बोतलें बटोरने में मशगूल हो गये। ह्विस्की की खाली बोतल का भी टनका पंइसा मिलता है। शीशी बटोवें चले गये। उसके स्याह चेहरे को नियॉन प्रकाश और भी बदसूरत बनाता रहा।

ठण्डी हवा में उसका रेजा-रेजा थर-थराने लगा। पर यह दर्द का एहसास उसके मुर्दा जिस्म में जिन्दगी का जुज पैदा कर रहा था। हाथ हरकत में आया। दर्दीली जगहों को उसने टटोला-पटोला तो खुरदरी अंगुलियों की जुम्बिश में कुछ गूमड़ आ गये। पर खून की चिपचिपाहट में उसकी उंगलियां लिजलिजी न हुई। इतना खून बचा ही कहां था कि साधारण डण्डे की मार से रिसाव होने लगे। चमड़ी में अलबत्ता जान है, इसी से गूमड़ उभरते हैं।

उस दिन तो डाक्टर के हाथ का हुनर ही था कि उसने उसकी सख्त पड़ी धमनियों से सिरिंज के माध्यम से लहू निचोड़ लिया। पावभर से कम तो क्या रहा होगा। उसे आश्चर्य था। बोसीदा अनार से इतना रस निचुड़ गया। हां, सिरिंज के खिचाव के साथ उसने दौड़ते पारे की जलन जरूर महसूस की थी और फिर संज्ञाशून्य हो गया था।

डाक्टर ने उसे उसी हालत में पड़ा रहने दिया। एक सटल में सिरिंज को खाली किया। खून में गाढ़ापन जरा भी न था। लगभग लाश पर\ अब गया काम से।' और डाक्टर ने अप ... ोगी को ... मारा।

डिस्पेन्सरी में कारोबारी घंटे बीत गये। वह अपने में खड़ा न हो पाया तो फिकवा दिया। पर फेंकने वाले भी बेतुजुर्बाकार थे जो उसकी गलित देह को घूरे पर न पटक, गुलमोहर के झुरमुटों से भरे गुलजार पार्क में पटक गये। जहां उसकी घिन से डलडहोर की कलियां मुरझा जातीं, अगर सिपाही बीच में अपनी कार गुजारी न कर गुजरे होते।

पर जो हो गुजरा, वह भगवान (यही उसका नाम था) की चिन्ता का वायस न था। सरद हवाओं के गोत अब उसको काफी कुछ चेतन कर चुके थे। यही उसकी चिन्ता का सबब था। इन दिनों मेडिकल कॉलेजों या न जाने कहां-कहां मुर्दा जिस्मों की जरूरत बढ़ती जा रही है। इस मुल्क में मुर्दा जलाये जाने के रिवाज के कारण माग के मुकाबले पूर्ति कम हो पाती है। इधर उसने सुना, मानुखी खोपड़ियां भी लुके-छिपे हो.नही लायसेन्सी तौर पर 'एक्सपोर्ट' होने लगी है।

खुदा न खास्ता यदि किसी मुर्दाफरोश की नजर उसके बेहोश जिस्म पर पड़ गया तो किसी मेडिकल कॉलेज की शल्य-टेबल पर सीधा पहुंचा दिया जायेगा। कॉलेज के अनाड़ी छोकड़े बगैर जिन्दगी का जायजा लिये उसे मेंढक की मानिंद चीर फरेंगे।

इस दोजखी सम्भावना से बच रहने का एक ही तरीका है कि आज की रात वह होशो-हवाश में रहे। और होश में रहने का एक ही इलाज है कि वह किसी पर गुस्सा कर दांत किटकिटाता रहे। गुस्से में नींद हराम हो जाती है। खून गर्मी खाता है।

पर वह गुस्सा करे किस पर? हां, ठीक तो है, अभी जिन सिपाहियों ने उसे लूटा-पीटा है उन्ही पर गर्माये। पर बावजूद पूर्ण प्रयास के वह ताव न खा पाया। इस प्रकार नामुराद हुआ कि झुंझला भी न पाया।

खैर, गुस्सा न कर पाये, पर कुछ सोच तो सकता है। सचेत बने रहने की प्रक्रिया में सोच बड़ा साथ देता है। मगर वह सोचे क्या? शीघ्र ही उसके जेहन में अपनी बची-खुची शक्ति का जायजा लेने की सोच आयी। वह अपने अवशिष्ट को मन के तराजू पर तौलने लगा। उसने अपनी हड्डियों को टहोका दिया। जिस्म पर जहां-तहां चिकोटियां काटी। दर्द का एहसास बना था। यह दर्द ही तो जिन्दगी की असल पहचान है। जज्बात में दर्द भरा हो तो आदमी जीता है। फिर वह दर्द जिस्मानी हो कि रूहानी। हकीकी (सांसारिक) हो या मजाजी (ईश्वरीय)। जीने के सबब एक किसी दर्द का होना जरूरी है।

मगर उसके लिए तात्कालिक स्थिति में आज के दर्द की अपेक्षा अतीत के सुखद मौसम से जुड़ जाना अच्छा है। अतीत के विस्तृत कैनवास पर नजर दौड़ाते वह काफी समय व्यतीत कर सकता है।

डिस्पेन्सरी में कारोबारी घंटे बीत गये। वह अपने से खड़ा न हो पाया तो फिकवा दिया। पर फेंकने वाले भी बेतुजुर्बाकार थे जो उसकी गलित देह को घूरे पर न पटक, गुलमोहर के झुरमुटों से भरे गुलजारपार्क में पटक गये। जहां उसकी घिन से डलहहोर की कलियां मुरझा जातीं, अगर सिपाही बीच में अपनी कार गुजारी न कर गुजरे होते।

पर जो हो गुजरा, वह भगवान (यही उसका नाम था) की चिन्ता का बायस न था। सरद हवाओं के गोन अब उसको काफी कुछ चेतन कर चुके थे। यही उसकी चिन्ता का सबब था। इन दिनों मेडिकल कॉलेजों या न जाने कहां-कहां मुर्दा जिस्मों की जरूरत बढ़ती जा रही है। इस मुल्क में मुर्दा जलाये जाने के रिवाज के कारण मांग के मुकाबले पूर्ति कम हो पाती है। इधर उसने सुना, मानुखी खोपड़ियां भी लुके-छिपे ही नहीं लायसेन्सी तौर पर 'एक्सपोर्ट' होने लगी हैं।

खुदा न खास्ता यदि किसी मुर्दाफरोश की नजर उसके बेहोश जिस्म पर पड़ गया तो किसी मेडिकल कॉलिज की शल्य-टेबल पर सीधा पहुंचा दिया जायेगा। कॉलिज के अनाड़ी छोकड़े बगैर जिन्दगी का जायजा लिये उसे मेंढक की मानिंद चीर फरेंगे।

इस दोजखी सम्भावना से बच रहने का एक ही तरीका है कि आज की रात वह होशो-हवाश में रहे। और होश में रहने का एक ही इलाज है कि वह किसी पर गुस्सा कर दांत किटकिटाता रहे। गुस्से से नींद हराम हो जाती है। खून गर्मी खाता है।

पर वह गुस्सा करे किस पर? हां, ठीक तो है, अभी जिन सिपाहियों ने उसे कूटा-पीटा है उन्हीं पर गरमाये। पर बावजूद पूर्ण प्रयास के वह ताव न खा पाया। इस प्रकार नामुराद हुआ कि झुंझला भी न पाया।

खैर, गुस्सा न कर पाये, पर कुछ सोच तो सकता है। सचेत बने रहने की प्रक्रिया में सोच बड़ा साथ देता है। मगर वह सोचे क्या? शीघ्र ही उसके जेहन में अपनी बची-खुची शक्ति का जायजा लेने की सोच जागी। वह अपने अवशिष्ट को मन के तराजू पर तौलने लगा। उसने अपनी हड्डियों को टहोका दिया। जिस्म पर जहां-तहां चिकोटियां काटीं। दर्द का एहसास बना था। यह दर्द ही तो जिन्दगी की असल पहचान है। जज्बात में दर्द भरा हो तो आदमी जीता है। फिर वह दर्द जिस्मानी हो कि रूहानी। हकीकी (सांसारिक) हो या मजाजी (ईश्वरीय)। जीने के सबब एक किसी दर्द का होना जरूरी है।

मगर उसके लिए तात्कालिक स्थिति में आज के दर्द की अपेक्षा अतीत के सुखद मौसम से जुड़ जाना अच्छा है। अतीत के विस्तृत केनवास पर नजर दौड़ाते वह काफी समय व्यतीत कर सकता है।

जैसा कि अकसर होता है ऐसे लोग किसी छोटे से गांव में पैदा होते हैं और मरने के लिए देश के सबसे बड़े शहर कलकत्ता में आ जाते हैं। यदि उससे भी बड़ा कोई शहर और होता तो मर भूखे वहां चले जाते।

तो उसने भी एक छोटे गांव में जन्म लिया। षष्टी के दिन पण्डित ने शोध कर नाम धरा तो बाप ने कहा, 'वाह, क्या सगुणी नाम धरा है।'

और कुछ दिनों बाद ही पाधा का सगुण सिद्ध हो गया। भगवान दो महीने का भी न हो पाया था कि घर का इकलौता बैल मर गया। मां भी जैसे कोख खाली होने के ही इन्तजार में बैठी थी। भगवान हाथ-पैर चलाने लगा तो एक गबरू के साथ भाग गयी। बेचारे बाप ने भला किया कि तीन साल उसका मल-मूत्र धोते रहने के बाद ही रामशरण हुआ। और भगवान को चाचा की शरण में जाना पड़ा।

जैसा कि हर गांव में होता है, उसके गांव में भी एक साहूकार था। साहूकार वह इसलिए था कि कई पुरखों से उसके साहूकारे की साख थी। साख इसलिए थी कि उस मण्डल के नेता, परगने के दारोगा और इलाके के गुण्डे, बदमाश उसके साथ थे।

उसने जयपुर के शिल्प बाजार से एक भगवान खरीद मंगवाया था और एक पुजारी को उसकी खातिरदारी और रखवाली के लिए तैनात कर दिया था। पुजारी भगवान की आरती उतारता, पर स्तुति साहूकार की उच्चारता। उस धर्मावतार की वंशावली गाते गंवईयों को सुरता जगाता। साहूकार की बही में साक्षात गनेशजी का वासा। उसमें जो लिखा सो सब साचा। उस पर जो कोई जकीन न लाये उसका लेखा चित्रगुप्त की कचहरी में। साख भरे या बचा दे, निश्चय उसको नरक मिले।

और साहूकार को भला नरक क्यों मिले। जो कोई, जब भी चौरासी पुरवा में मरे, साहूकार उसकी मृत-देही को कफन दे। ब्रह्मभोज को नगद दे। इस किरिया से पिरानी (प्राणी) को लख-चौरासी से छुटकारा मिले। साहूकार अपना खाता खोले। सूद असल से तिगुना बोले। जो भी बोले, जो कोई वाली-वारिश हो वह हाथ बांधे हुकार भरे और इस प्रकार कृपा प्रभु करे कि वारिश धर्मऋण से उऋण हो जाये, बस। मृतक की जोत भर साहूकारी काश्त में मिल जाये।

ग्रामधर्म के मुताबिक भगवान के बाप का खेत भी साहूकारे की तहवील में चला गया तो वह चाचा के संरक्षण में दे दिया गया।

चाची उसकी काहिली पर उसे मारती। चाचा उसे भला आदमी बनाने की ताकीद पर मारता। और वह घर से कुट-पिटकर आता तो गांव-गली के लौंडों की आंखों में गुल्ली दे मारता। इस प्रकार गंवई दस्तूर से बचपन अच्छा-खासा बीता। देहाती अनुमान से कामकाजी हो गया तो साहूकार की चाकरी में आ

गया। बीड़ी के बेशुमार सुट्टे लगाते रहने के बावजूद कद-काठी खासी उठी। शाहनी ने आंखों के गज से नापा तो मुआफिक पाया। अच्छी गिजा देने लगी तो चेहरे से लहू चुहचुहाने लगा। गाल पर चिकौटी काटी तो लौंडे ने भी भरपूर जवाब दिया। शाहनी को चिन्ता हुई, किसी और छिनाल की नजरों पर उसकी पसन्द न चढ़ जाये किन्तु किसी मनचली की नजर चढ़ने से पहले ही अनुभवी साहूकार की नजर में दोनों का चलन आ गया।

साहूकार को गुस्सा तो बहुत आया, पर बुढ़ौती की तीसरी ब्याहेता की चाहत को आसानी से दुत्कार भी न सका। अतः यथा-साध्य शान्तिमय तरीके से भगवान को गांव की सीमा से खदेड़ देने का उपाय बूझता रहा।

जैसे कि और-और गावों से जाते हैं, उस गांव से भी बहुत लोग कलकत्ता जाते। जो जाते उनमें से अधिकांश फिर लौटकर न आते पर जो आते वे खूब बन-ठन कर आते। पान चबाते। खैनी खाते। उनके कपड़े नये झब्ब होते। कलफ चढ़ी होती। उनका सलीका भी नया होता। वे देशी की जगह अंग्रेजी पीते। ताड़ी तो शौकिया ही सुटक लेते। भगवान भी उनकी सोहबत में आया। उनके किस्से सुन रिझाया।

कलकत्ते में कारु का खजाना है जो असंख्य तिजौरियों में भरा है। जो भी कोई नया जाता है, हिस्सेदारी पाता है। खजाने पर काली माई का पोहरा चलता है। वीरभद्र के गण राज करते हैं। पवन वहां पंखा झलता है। चांद-सूरज की ठण्डी-गर्म किरणें उस शहर को समशीतोष्ण बनाये रखती हैं। वहां कोई भी मौज-मजे करने के सिवाय और कुछ नहीं करता। जो कोई काम करता है, वह जब चाहे पकड़कर हाजत (जेल) में धर दिया जाता है। वहां बस, एक ही धन्धा चलता है—आदमी की आंख में धूल झोंकना!

उसने सब सुना। अपनी ओर से गुणा और एक दिन साहूकारिनी से कुछ रुपया नौटंकी मेला देख आने के बहाने लिया और कलकत्ता पहुंच गया।

हावड़ा का अधर-धम्म, बिना पायोंवाला पुल जो काली मैया की हथेली पर टिका है। कभी चलानी का धन्धा करने वाले लाल-मुंहे फिरंगियों का लाल-लाल खम्भों पर टिकी ईमारतों से भरा हाट बाजार आज की स्ट्राण्ड रोड पर आज भी है। फिर कल की हेरीशन रोड जो आज का तथा-कथित गांधी मार्ग है, उसे पार करते न करते मोड़ पार कर वह सत्यनारायण पार्क में आ पहुंचा। कारु के खजाने की पूछताछ बाद में करेगा, अभी जरा दम मार ले, इस इरादे से वह भीड़ के रेले से निकल पार्क में आ गया। सत्यनारायण पार्क में उस जैसे ही कुछ देश-वासी बिहारी पत्तों पर बाजी लगा रहे थे। अभी उनसे बतियाने का इरादा बना ही रहा था कि सबके सब पत्ते छोड़ भाग खड़े हुए। पुलिस 'रेड' आयी थी, वह भी भीड़ के साथ भागा और इस भागमभाग में उसकी गठुरिया-लकुरिया

'सत्यनारायण-शरण' ही हो रही।

भागते जुवारियों के रेले में किसी अज्ञात हादसे की आशंका मे अन्य लोग भी भागने लगे। भागम-भाग कलकत्ते की जिन्दगी का अभिन्न अंग है। भगोड़े एक खुली जगह आकर रुके। वह भी रुक गया। वहां कुछ फटेहाल लोग खोखों के पास खड़े कुछ खा रहे थे। खोखों में बैठे गलीज आदमी अपने गंदे हाथों से दोने भर-भरकर भात दे रहे थे। उसे भी कसकर भूख लगी थी। एक दोना खरीद खाने लगा कि तभी फिर भगदड़ पड़ी। लोग दोने फेंक भाग खड़े हुए। वह भी भागा। थोड़ी दूर भागकर लोग रुके। वह भी रुक गया। अन्य लोग पीछे घूमकर देखने लगे। वह भी देखने लगा। औरो ने जो देखा उसने भी देखा। सिपाही देगें उलट रहे थे। खोखे तोड़कर पटरियां खाली करवा रहे थे। वह समझ गया कि वीरभद्र के गण ये ही सिपाही लोग हैं। जिनकी निर्बाध सत्ता कलकत्ते मे चलती है।

उसके साथ के लोग फिर चलने लगे थे। वह भी उन्ही का अनुसरण करते चला। लोगों का वह रेला एक मैदान के किनारे सड़क पर रुक गया। फिर लोग इधर-उधर छिटके और सांपों के समान सरसराते बिलो में घुसने लगे।

उसने गौर से देखा, बिल नही, दीर्घ व्यास वाले वाटरपाईप थे। हिम्मत कर रात्रि विश्राम के लिए वह भी एक पाईप में घुसने लगा। थोड़ा घुसा कि कमर और सुभानी पडी तभी अन्दर से आते एक पतले से नारी-स्वर ने चौंका दिया और वह जहां का तहां दुबक रहा।

'ई कौने जो हमर घर मां जोरा-जारी घुसतैय आये रहिल छी?' और आवाज के साथ ही टार्च का तेज प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ा। स्त्री को चेहरा पूरी तरह दिखाई दे गया। वह आश्वस्त हो गयी।

'गबरू है। उठती काठी। मांसल शरीर। चढ़ती जवानी। पुरुष गंध की दिशा मे वह आप ही खिसकती आई और उसे घेरे में लेती अर्धचन्द्राकार पसर गयी। टार्च बुझ गयी। औरत जमाना देखे, खायी-खेली थी। वह जानती थी, नये लड़के हमउम्र संकोची लड़कियों की अपेक्षा पूरे-नप औरतों से उनके खुले पखिड़दन्तपने के कारण जल्दी हिल-मिल जाते हैं। और औरतें आसानी से उनकी 'नप उतार धरती' हैं।

उस औरत ने भी भगवान को भरभुजा दबोचा। नाखूनों से करोचा और अपनी गर्म श्वांसों से गर्माया तो वह भी पूरे तौर पर नंगई पर उतर आया।...

'इधर जरा हट के पड़ रहयँ।' औरत ने उसे टहोका—'तू नया इहां एलहीं हन।'

'ठीक, आइ हम बूनी। त आय रात हमर अहां कुटुम छी।' (ठीक यही हमने समझा तो आज की रात हमारा मेहमान रहो।) मुद्दा अहां ध्यान रखयँ। छन

ऊपर लाठिक आवाज होत, अहां चुप पैरे रहब।' (मगर यह ध्यान रखना छत पर लाठी की आवाज हो तो चुपचाप पड़ रहना।)

घड़ीभर बाद ही पाईप पर डण्डा बजा। स्त्री घिसटती हुई बाहर निकल गयी। फिर आयी। पुनः ठकठकाहट हुई। फिर गयी। रातभर आने-जाने का सिलसिला जारी रहा। स्त्री चलती रही।

सुबह फिरोजी रोशनी मे उसने औरत को भर नजर देखा तो वह उरूसे-शब (रजनी-वधू) तब भी उसे लैला-ए सहर (प्रातः सुन्दरी) सी ही नजर आयी। काफी थकान के बावजूद वह अभी डहडही-सी थी। पाईप से बाहर निकल वे खुले में आ बैठे। भगवान की नजर उस पर टिक गयी। उसके गाल का तिल, उसके नीचे पड़ता गढ्ढा और ठुड्डी पर अंकित गोदना, सब उसके मन भा गये। उसकी बेतरतीब जुल्फें उम्र के ढलान को ढंके थी।

औरत ने अपना नाम बीरबहुटिया बतलाया और फिर उसकी तफसील पूछने लगी। वह आधी टागें फैलाये, एक गाल पर हाथ धरे सुनने लगी तो उसने भी अपनी अक्ल दौड़ाई।

मरद औरत को जो भी बतलाये, खालिश सच्च न बतलाये। जो खालिश बतलाये औरत की नजर में पोचा पड़ जाये। इतना वह जान चुका था। और शाहनी के साथ चली थोड़े दिन की लफंगई के सिवाय उसके विगत में ऐसा कुछ और घटित भी न हुआ था कि किसी औरत को सुनाये।

अपनी दास्तां उसने वहां से शुरू की जहा कि वह शाहनी के घर की महरिया के साथ इश्की करते पकड़ा गया था और उसी रात वह शाहनी की बांहों में इस कदर जकड़ा गया था कि जिन्दगी के सारभूत सत्य से साक्षात्कार हो गया। शाहनी के ईर्ष्यालु सलूक से उसने सीखा कि उसूल यही है औरत को पूरी तरह पाने के लिए उसके मुकाबले एक दूसरी औरत को खड़ा कर दो।

शाहनी को बराबर खड़ा पाया तो बीरबहुटिया पर भी अपेक्षित असर पड़ा। वह पूरी तरह उस पर आ गयी तो भगवान ने जिज्ञासा प्रकट की कि कलकत्ते में सचमुच कारू का खजाना है कि नहीं। तो बीरबहुटिया दूसरी कोहनी पर ठुड्डी को साधते सयानेपन से बोली—'तू ठीक सुन ले ही हन। मुदा तू आधा समझ लेही। कलकत्ता म कुबेर का खजान छथ। पै पायब वह सकै छ, जेकर पै काली माय सहाय रहथीन।'

क्योंकि उसका दिल भगवान पर पूरी तौर से आ चुका था, अतः वह उसे काली घाट वाली असली काली मैया की शरण मे लिवा ले गयी। अपने खून का छींटा दिया और उसके खून का छींटा भी काली मैया के प्रति अर्पित करवाया और फिर उसे कारू के खजाने के नजदीक पहुंचा दिया।

बीरबहुटिया पहले बजरंग गुरु की घरेलू रखैल थी। फिर एक

दिल आ गया तो उसे 'चालू' बना दिया। वह रात को पाइप-बस्ती में सिपाहियों को खुश करती, जो कि गुरु के बिजिनेश का एक महत्त्वपूर्ण काम था। दिन होते गुरु के लिए बादाम पीसती, सायंकाल भांग छानती। धन्धे की गरज से ड्यूटी भले ही बदली हो पर गुरु की अभी वह विश्वस्त अनुचरी थी। उसकी परख को वह तरजीह देता था। वह जिस किसी 'कामकाजी' को खोज कर लायी वह सदा खरा ही उतरा।

अतः भगवान को भी उसने प्रस्तुत किया तो मात्र औपचारिक पड़ताल कर गुरु आश्वस्त हो गया। पहले ही दिन ड्यूटी पर लगा दिया। कोठरी खोल, पान की एक टोकरी निकाली। बंसी को आवाज दी। भगवान को समझाया।

'तूम बीस कदम इसके पिछाड़ी चलियो। जहां ये सीटी बजाये, वही टोकरिया धर लौट अहियो।'

बजरंग गुरु प्रकट में दरबानगिरी करता। देर रात तक पान की दूकान पर बैठता। सुबह नौ बजे सोकर उठता। कमर के गिर्द फकत अंगोछा लपेटे नंगे बदन ग्यारह बजे तक दतौन करता, फिर चेले-चाटी जुट आते, गुरु के बदन पर मालिश करते। मालिश चलती रहती। गुरु रात को किये गए धन्धे की तफसील पूछता रहता। माल बटोरता। नये दांव और लक्ष्य बतलाता और फिर दोपहर दो बजे तक निराहार रह गंगा मैया का गुणगान करते नल पर नहाता। अलबत्ता दतौन से पहले केशर सनी, भंग मिली दो-एक किलो रबड़ी का नाश्ता कर चुका होता। दतौन कर बादाम-पिस्टी खा चुका होता।

पहले दिन की खेप पहुंचाकर भगवान लौटा तो सगुन की पहली बोहनी के रूप में बीस रुपये का रूपहला नोट पाकर काली मैया के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित हो गया। अब रोज दो-तीन फेरे होने लगे। बीरबहुटिया उसे गर्म-गर्म रोटियां बनाकर खिलाती और उसकी कमाई सहेज धरती। बतियाती और सुला देती।

किस्सा मुख्तसर। परिशिष्ट सुखद न हुआ। पान के पत्तों की तहों में क्या छिपा होता, भला वह क्या जानता। पर एक दिन पुलिस की तहबील में जो आया, उससे साबित हो गया कि वह किसी 'माफिया' गिरोह के लिए काम करता रहा है। रामर मैया नया-नया दारोगा लगा था। धोबी जात। धुलाई में जुट गया। कई एक धोबी पाट दीं पर इस मशक्कत में भी मूंछों पर बराबर ताव देता रहा।

'माल किसका छिर्य ?' भगवान मौन साधे रहा। पर अगली धोबी पाट पर नाम उगल दिया। गुरु का नाम उजागर किया तो दारोगा ने और धुनाई की।

स्पालहा, अहां पहिले किय ने ई बतेलयं क माल बजरंग गुरु का छीयें। हम समस सोइय कोम अवर गुरु क माल छीयें जे हमरा से अखन सँईक ने ई मिल सय।' (साले पहले क्यों नहीं बतलाया माल बजरंग गुरु का है। यह तो हमारा

आसामी है। हमने समझा था माल किसी और गुरु का है जो हमसे अभी नहीं मिला।')

और फिर अच्छी ठुकाई कर माल समेत उसे गुरु के हवाले कर दिया तो वहां भी मार पड़ी। 'स्यालह पोचा, तनिक ठुकाई पँ नाम उगल दीहन।' और गुरु ने उसे हुक्का आऊट (अपने दाय क्षेत्र से निष्कासित) कर दिया। जाते समय वह बीरबहुटिया से मिल भी न पाया।

पर एक लहूलुहान जवान को सड़क पर आते देखा तो खून के दलाल का जी ललचा गया। जिस्म पर, कपड़ों पर, जमे रक्त के चकते देख उसकी अनुभवी आंखों में चमक आ गयी। कुशल व्यवसायी जान गया कि जवान का जिस्म निश्चय ही अति दुर्लभ ग्रुप वाले रक्त से लबालब भरा है। उसने भगवान को सहारा दिया। हाल हकीकत पूछी और एक भव्य इमारत में ले घुसा।

'घबराना नहीं। डाक्टर ने भर सिरिंज खून खींचा। परीक्षण किया। बाछें खिल गयीं।' एटी बी ग्रुप। लगभग अप्राप्य रक्त।

सौ का नोट थमाते पीठ थपथपायी। साथ में फल, विटामिन की गोलियां और आयरन कैप्सूल भी दिये। 'दो दिन बाद फिर आना।'

दलाल ने उसे काहिलों के डेरे पर पहुंचा दिया। भगवान ने सोचा, पहले दिये गए छींट भर खून से मैया पूरी तृप्त न हुई थी, अब ज्यादे रगत (रक्त) दिया तो एक मुश्त सौ का नोट दिला दिया।

डेरे पर नया मानुस आया देख पुराने भूतहे कंगालों का गोल उसके गिर्द घिर आया। मक्खियों के दल-बादल भी उनके साथ लगे आये। काहिलों ने उसे घूरा। ठहाका लगाकर हंसे—'जीवो, बेटे जीवो। पर अपने पसीने की कमाई खाकर नहीं, अपने जिस्म का खारा खून बेचकर पायी रकम से खरीदी रोटियां खाते जिन्दा रहो।'

'छिः, अपना खून बेचकर खायेगा वह। मारे जुगुप्सा के उसे मितली आने लगी। उसने नोट चिंदी-चिंदी कर फेंका। और काम धन्धे के लिए फेरे लगाने लगा। पर कोई मेहनत का काम भी उसे न मिला। कुलीगीरी, झाकागीरी, टोकरी ढोने का धन्धा, रिक्शा जुताई। हर पेशे में उससे पहले जुटे उसी जैसे काम के तलबगारों ने उसे पटरी पर से ही लौटा दिया और भूख से बेहाल फिर उसी डेरे पर आ पड़ा। दो दिन निराहार रहा। तीसरे दिन खून दिया। पैसे लिये। भर पेट खाया और पूर्णतया काहिलों के टोले में समाहित होकर, जादूगर की 'बोटल आव इण्डिया वाटर' बन गया जो रितने के लिए भरती है और फिर भर-कर रितती रहती है।

वह कलकत्ते का तिलस्म समझ गया। उसके गांव लौट आये लोगों ने झूठ कहा था। वे गांव जाते तो 'सेल' के सस्ते कपड़े पहनकर जाते। कुछ दिन मुट्ठी

फूटानी शान-शौकत दिखाकर लौट आते और यहां आकर फिर कुलीगीरी, फाका-गीरी करने में जुट जाते या आदमी द्वारा खींचा जाने वाला रिक्शा चलाते। अथवा खून बेचते मर जाते।

अढ़ाई वर्षों तक जिन्दा बने रहने की जद्दोजहद में उसने अनगिनत बार खून बेचा। पहले खून खुदरा बिकता रहा। फिर सेठ चिनगारीलाल के रूप में एक स्थाई ग्राहक मिल गया। सेठ को 'थेलसेसिया' का आनुवंशिक रोग था। वह जल्दी-जल्दी 'ब्लड ट्रांसफ्यूजन' लेने का आदी था। एटी० बी० ग्रुप मुश्किल से मिलता। इसलिए उसे लम्बी मुद्दत तक एक ही 'बोटल' पर निर्भर करना पड़ता।

भगवान का रक्त-कोष भी शीघ्र ही रिक्त होने लगा। अन्ततोगत्वा वह जिन्दा भूत की भांति भुगतने लगा। रक्त का गाढ़ापन घटता गया और मूल्य में भी ह्रास होने लगा। चेहरे मे चुहचुहाती अरुणाई स्याही में बदल गयी। मैल से लिपड़ा बदन। चिकटा बदबू भरा लिबास। लिबास की सीवनों में जूओं के जाले गुथ गये। बाल सख्त होकर खड़े हो गये। वह दिनभर बैठा जूएँ मारता या शून्य रग पड़ रहते घूरता रहता। हां, विरल बरौनियों के नीचे जड़ी दो आंखें जरूर मशाल के समान जलती रहने लगी, जिन्हें देख कोई भी डर जाता। न जाने क्यों ऐसे मुरदारों की आंखों में जानलेवा रोशनी की दमक भर जाती है।'

इस अढ़ाई वर्ष की मरण-यात्रा के दौरान वह केवल एक बार बीरबहुटिया से मिल पाया। भेंट अनायास ही हो गयी। बीरबहुटिया की आंखों के नीचे भी गोल स्याह धब्बे बन चुके थे। वह अब पहले वाली लैलये-जुल्मत न रह गयी थी। वह अब विकराल काली मैया की साक्षात सेविका बन चुकी थी। फिर भी दोनों ने एक-दूसरे को पहचाना। दोनों को एक-दूसरे के प्रति घिन हुई। फिर भी एक दूसरे से आपस में आत्मियता दर्शाते बोले-बतलाये। अपना-अपना दुख-दर्द बयान किया।

बीरबहुटिया ने बतलाया—उसे सिपहिया रोग(सिफिलिस) लग चुकी है। उसे मनुष्य मात्र से द्वेष हो गया है। अब वह हर ऐरे-गैरे को मौत की सौगात बांटती फिरती है। जो भी उसके संसर्ग में आता है, कुत्ते की मौत मरता है। अकसर वह उन्हें मरते देखती है और अपनी नियति पर रोती है। उसने भगवान को बतलाया कि वह बदला लेते-लेते मरेगी। किन्तु वह यदि अब भी 'व्यवसाय' छोड़ दे तो जिन्दा रह सकता है। उसने उसे सौगन्ध धरायी और चली गयी।

भगवान ने फिर एक बार संकल्प किया—'वह जिन्दा रहेगा' और इसी संकल्प-पूर्ति हेतु उस दिन अपना अन्तिम रक्त-दोहन करवाया था। उसने निश्चय किया कि प्राप्त रकम के सहारे वह कल अपने गांव लौट जायेगा। गंवई हवा फिर उसे ताजादम बना देगी। पर पार्क में सिपाहियों ने उसकी पॅकिटमारी कर वह

आशा भी धूमिल कर डाली।

उसने करवट ली। आश्चर्यजनक रूप में अपने को काफी सचेत पाया। सोच के सहारे लम्बी-ठण्डी रात अधिकांश अनायास ही गुजर गयी। अन्तिम दौर में उसे चिनगारीलाल का खयाल आया। वह वर्षों उसके जीवन की जड़ों को अपने रक्त से सींचता रहा है। और अब वह उसके काम का नहीं रह गया है। उसे दूसरा रक्त-स्रोत मिल चुका है। वैसे भी सेठ पुरानी बोतल से घृणा करने लगता है। कैसे गन्दे आदमी का रक्त उसकी धमनियों में दौड़ता है, यह एहसास उसे खलने लगता है। वह निश्चय ही इतना तो करेगा कि भाड़े भर की रकम दे देगा।

वह एक निष्कर्ष पर पहुँचकर औंघाने लगा। एक बार झपकी सी आयी। फिर उचककर उठ बैठने को हुआ।

क्या गाँव के लोग उसे इस हालत में पहचान जायेंगे। यह भी हो सकता कि उसे कोई बटमार समझकर ढेलों से मार भगाये। बच्च-उठैया (बच्चे उठाने) वालों का हुलिया भी तो कुछ ऐसा ही होता है। वह थोड़ा डरा। पर जब खयाल आया कि गाँव का ओझा उसे भूत समझकर जलाने जा रहा है तो वह तन्द्रा के बावजूद चीख पड़ा। पर शीघ्र ही अपने को प्रकृतिस्थ कर दुबक रहा। औंघ फिर आने लगी।

औंध में करवट ली। सिपाहियों द्वारा ठोकी गयी पंसुलियों में दर्द गहराया। साथ ही उसके भीतर गुस्सा भी गहराने लगा। उसे आश्चर्य हुआ कि जब उसने गुस्साने की भरसक चेष्टा की तो वह गुस्सैल न हो पाया। अब यह गुस्सा अकारण क्यों गहराने लगा है। अन्त में वह कुटेम के गुस्से पर ही गुस्साने लगा। और अनजाने ही उसके सर पर खून सवार हो गया। खूखान खाती शिराओं में यत्र-तत्र चिपका-चुपड़ा पड़ा थोड़ा-सा अवशिष्ट खून ऊर्ध्वगामी हो द्रुतगति से दौड़ने लगा।

नहीं वह सेठ के पास हाथ फैलाने नहीं, उसका खून कर अपने खून का कर्ज चुकाने जायेगा। मैं गाँव भी लौटकर नहीं जाऊँगा। मैं दौड़कर मरघट पहुँच जाऊँगा।

पर तभी उसके हमपेशा काहिलों की पूरी टोली उसकी राह रोक खड़ी हो गयी। 'तुम मरो।' वह उनको धकेलता, छेंकता आगे निकल गया। वह अट्टहास पर अट्टहास किये जा रहा था। आस्तीनें चढ़ाये आगे बढ़े जा रहा था। तभी उसे लगा कि चिनगारीलाल तो वहीं उसके पीछे लगे आ रहा है। उसके हाथ में एक बड़ी-सी सिरिंज है। उसका साहस जवाब दे गया। लपककर गला घोंट मार डालने की हिम्मत न हुई, उल्टे डरकर दम भर भागा। तभी उसे पार्क के गेट पर खड़ी शाहनी दिखाई दी। बीरबहूटिया पहले दिन की लैलये-दिलकश के रूप में

नजर आयी। वह लपकते हुए उनकी ओर दौड़ा। बिनगारीलाल भी उसके पीछे जैसे दौड़े आ रहा था। वह शाहनी के नजदीक पहुंच ही चुका था कि वह पीछे खिसकने लगी। खिसकते-खिसकते खुले राजपथ पर जा खड़ी हुई। दिन निकले सड़क चलने लगी थी।

वह तीर की-सी तेजी से शाहनी की ओर दौड़ा। सड़क की आधी चौड़ाई पार की कि तभी श्रीच'''श्रीचच श्री'''ई ई यं च्चच च्च।

लारी के ड्राइवर ने भरसक ब्रेक लगाया। किन्तु ऊपर वाला भगवान नीचे उतर आये भगवान को बचा न पाया। और, नीचे वाला कुचल गया। उसकी चमड़ी कुछ टायरों के साथ चिपक चली गयी। कुछ मांस-मज्जा सनी बिखर रही। थोड़ा पीला-पीला पानी भी लिजलिजी धार बन बह चला। हां, गौर से देखने पर उसमें कुछ लालाणु नजर आ सकते थे। शायद उन्हीं अणुओं में शेष बची ऊर्जा धधकी और उसे जबह कर शान्त हो गयी।

फट्टा

दोपहरी पूरे तौर पर धुंधलाई, अग खायी थी। मौसम के घर की तमाम खिड़कियां बंद थीं। उन पर कोहरे के मोटे पर्दे पड़े थे। धुंध इतनी सघन थी कि एक ज़र्रा हवा भी उनमें छन नहीं पा रहा था 'हॉली डे हाऊस' के पारदर्शी शीशों के दरवाजों के पीछे हम महोगनी की लकड़ी की आराम कुर्सियों पर अतिशदान को घेरे बैठे थे। एक कुन्दा पूरी तरह जल भी न पाता कि हम दूसरा कुन्दा आग में झोंक देते।

हम इतनी सिगरेटें पी चुके थे कि अब उबासी के साथ धुआं बाहर उगल रहे थे। इतनी रम निगल चुके थे कि अब एक घूंट भी हलक से उतारा जाना दुस्वार था।

हम चार थे और आपस में कोई लिहाज न थी, प्रोफेसर सौभागनी उम्र के लिहाज से नहीं, अपनी 'इन्टेलेक्शन' (समझाने की विध) के लिहाज से हमारे बीच सम्मानीय थे। अगर वे हमारे बीच न होते तो हम शायद इस कदर 'अनअबाग्ड' हो जाते कि एक-दूसरे पर बोतलें उछालने लगते।

'हॉली डे हाउस' पोर्टिको से कीचन तक भरी दोपहरी में भी नियान बत्तियों से जगमगा रहा था। पर हम इतने उकताये हुए थे कि प्रकाश भी हमें रास नहीं आ रहा था। हम अपने-अपने नाखून सहला रहे थे और आक्रामक रवैया अख्तियार करना चाहते थे। हम प्रो० सौभागनी की उबाऊ वार्ता-शैली से कतराकर किस्सागोई पर उतरा चाहते थे। पर हमारी वाचालता किस्सागोई के भी अनुरूप न थी। वातावरण इतना ठण्डा और उदास था कि प्रकृति भी अपनी वाचालता खो चुकी थी। पेड़ नहीं सनसना रहे थे। चिड़ियां नहीं चहचहा रही थीं। हर पल फुदकते रहने वाली पेंडुकियां भी मौन साध बैठी थीं।

तभी गमगीन मौसम से मेल खाता नजीब का चेहरा हम सबकी दृष्टियों का केंद्र बन गया। उसकी मां पिछले पखवाड़े मरी थी। तभी से वह इस कदर गमगीन बने था कि उसका उतरा चेहरा आधुनिकता का पूरे तौर पर अतिक्रमण

कर चुका था। लोकाचार से आगे बढ़कर किसी बूढ़ी मां के लिए मातमपुर्सी करना जैसे उसके पिछड़ेपन का द्योतक था। अतः उसकी उदासी ही हमारे निकट एक विषय बनकर उभरी।

'नदीम, क्या तुम अपनी गमगीनी मौसम के हवाले कर खुशगवार बनना नहीं चाहते? तुम्हारी मां के मरने का गम हमें भी है किन्तु हम नहीं चाहते कि लोग यह समझने लगें कि तुम एक बूढ़े बच्चे हो।' पर डा० साकरिया का प्रयास व्यर्थ रहा। नदीम अपनी केंचुल से बाहर न निकल पाया। तो मैंने नया प्रहार किया—'हर मां ममतामयी होती है। किन्तु नदीम, तुम्हारी मानसिकता कहीं गहराई से अपनी मां की ममता से जुड़ी है।'

नदीम कंधों से ऊपर-ऊपर हिला। उसने अपने चेस्टर की तनियां ढीली कीं। सरद मौसम के बावजूद उसकी पेशानियों पर पसीना चुहचुहा आया। वह पहले अपने भीतर ही फुसफुसाया, फिर मुश्किल से सुनायी देने वाली आवाज से बोला—'मेरी समस्या है, दोस्तो···।' और वह रुक गया।

हम इन्तजार करते रहे कि वह फिर बोले, पर न बोला तो सबने लगभग एकसाथ कहा—'हमारी सहानुभूति तुम्हारे साथ है। तुम यकीन करो। हम चाहते हैं कि तुम अपने साथियों पर यकीन करना सीखो।'

'कितने औपचारिक हो तुम सब। सहानुभूति, संवेदना के स्वर जैसे किसी खोखर से निकलते हों, फिर भी···लो मैं बतलाये देता हूं। मेरी समस्या यह है कि मैं अपनी मरहूम मां से घृणा करूं या उसे एक पाकीजा मुजस्सम समझकर उसकी पूजा करूं!'

नदीम हमें सवाल के केंद्र में डालकर खुद हाशिये पर जा खड़ा हुआ। प्रोफेसर सौभागनी जो अभी तक अपने पाइप से खेल रहे थे, वे घूंट कम भरते, पाईप को सहलाते ज्यादा रहे थे। मानो उनकी संवेदना का केंद्र वही 'स्मोकिंग पाईप' था। उनका पाइप उनके होंठों की जुम्बिश में था। अब उनके हाथ अपनी खसखसी फ्रेन्चकट दाढ़ी को सहलाने लगे थे। होंठों से पाइप चिपके होने पर भी बोलने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हो रही थी। वे नदीम की ओर मुखातिब हो बोले—'निश्चय ही तुम्हारी तरद्दुद विचारणीय है। हर बेटे के जेहन में अपनी मां के प्रति उलझन हो सकती है। जबकि हर मां ममतामयी होती है यह हमारी मानसिक मान्यता है। पर कम-से-कम वह औरत तो जरूर अपवाद है।' और प्रोफेसर की तर्जनी 'पेम डोर' की ओर उठ गयी।

हम सबकी दृष्टियां भी इंगित की गयी दिशा में उठीं। अब बाहर कोहरा काफी हद तक छंट चुका था।

सामने 'बरकोटा हिल्ज' की बर्फानी चोटियों पर ढलते सूरज की सतरंगी किरणें छितराने लगी थीं। नीचे, तलहटी में कोनिफोर्म, एकेशिया, साईप्रस और

सेहुड़ के पेड़ों की टहनियों पर बैठे परिंदे चहचहाने लगे थे । सीधी चढाई वाले पहाड़ों की पगडण्डियों के किनारे खड़े देवदार, भोजपत्र, और चीड़ के वृक्षों पर बादलों की फुनगियां उतरने लगी थी।

ऐसे अपरूप वातावरण में बाहर पोर्टिको की आड़ में एक औरत अपने चारेक वर्ष के बच्चे की अंगुली पकड़े खड़ी थी। औरत के बालों से पानी झर रहा था, उसकी साड़ी भी लगभग भीग चुकी थी। 'निश्चय ही वह अभी-अभी बाहर से आकर वहां खड़ी हुई थी। बच्चे के तन पर मात्र एक भीगा सा कुर्ता था और वह कंपकंपा रहा था । मां अपनी सीली-गीली साड़ी से उसे ढंक रखने का पूर्ण प्रयास कर रही थी। बावजूद उसके प्रयास के लड़के का सारा तन लगभग नंगा था।

'बाहतौर पर यह मां कितनी ममतामयी है। उसकी ममता आंखों की राह झलक भी रही है।'

निःसंदेह ऐसा था। पर तभी प्रोफेसर ने हमारे विश्वास को धचका दिया। 'यह मां अपने बच्चे के प्रति ममतामयी है, किन्तु क्रूर भी।'

'क्रूर भी?' जैसे हम सब एकसाथ चौंक पड़े हो। नदीम तब भी अपवाद था। प्रोफेसर के भाव में तब भी संतोष था। हम दो, जो चेतन थे उनके कथन से प्रभावित हुए। प्रोफेसर ने नये सिरे से अपने पाईप में तंबाकू जमायी और घूंट भरते धुआं उगलने लगे। अब जैसे वे स्वयं अपने उठाये प्रश्न से तटस्थ थे।

लड़के को निरंतर कंपकंपाते देखकर मां पलथी लगाकर बैठ गयी और लड़के को बहलाकर अपनी गोद में सुलाने का प्रयास करने लगी। किन्तु बच्चा छिटककर बार-बार दूर जा खड़ा होता था।

'इसकी गोद में कीलें ठुकी है।' प्रोफेसर की आवाज हथौड़े के अंदाज मे पड़ी—'बच्चा यहां नही सोना चाहता।'

नदीम ने आतिशदान में नया कुंदा झोका। डॉ० खापरड़े साहब जो अब तक पूर्ण तटस्थ थे। आश्चर्याभिभूत हो बोले—'मां की गोद में और कीलें?'

'''और'''और एक ऐसी मां जो अपनी तार-तार साड़ी में समेटकर भी बच्चे को गर्माना चाहती है, वह निःसंदेह इस हद तक क्रूर नही हो सकती। प्रोफेसर शायद इन दिनों 'मिथिक' को कुछ ज्यादा ही 'एप्रोवेट' (अनुमोदित) करने लगे है। पाताल लोक की कहानियां भी गढ़ने लगे है।'

डॉक्टर तुम कुछ जरूरत से ज्यादा ही एग्रेसिव (आक्रामक) होने लगे हो'। मैं ठीक कहता हूं यह बच्चा दिन मे इसकी आवश्यकता और रात के लिए जंजाल है। इस 'हाली डे हाउस' के वेटर इस औरत के प्रति कुछ ज्यादा ही उदार हैं। वे मेस से चुराकर इसे खाना देते है। और ईंधन की कोठरी मे सोने के लिए जगह, पर बात यह है कि यह बच्चा किसी वेटर और इस औरत के बीच चलते रिश्ते मे बाधा डालता है। क्या तुममे से किसी ने इसे दिन में कसबे के बाजार

मे नहीं देखा ।

'हमने किसी ने नही देखा ।'

'हूं, देखते तो जानते, तब यह लडका एक फट्टा भर होता है । महज लकड़ी का फट्टा । यह औरत इसे अपने हाथों पर सीधी लेटाये दिनभर भीख मांगती घूमती रहती है। यह ऐसे मार्मिक किन्तु अस्पष्ट शब्दों में सदा लगाती है, मानो अपने मरे बच्चे को दफन करने के लिए कुछ पैसे मांगती है । उस समय यह बच्चा न हिल सकता है और न ही करवट ले पाता है। लोगों की दयालुता का दोहन करने का यह एक नायाब तरीका है ।

'पर सोचो। साथ ही साथ कितना क्रूर भी । एक जीवित बच्चा इस प्रकार पड़े रहते कितनी यातना भुगतता होगा । तुम एक वैज्ञानिक हो महाशय खापरड़े । क्या तुम इससे भी ज्यादा क्रूर तरीका ईजाद कर सकते हो ?'

प्रोफेसर चुप लगा बैठे। उनका पाईप पूरे तौर पर धुकधुका रहा था । नदीम कुर्सी से उठकर, आतिशदान का सान्निध्य छोड़ हॉल में चहलकदमी करने लगा । उसके वेस्टर की तनियां पूरी खुल चुकी थी 'किसी के पास एक चुरुट हो तो मुझे दो । मैं कभी धूम्रपान नही करता, पर इस समय मुझे इसकी विशेष जरूरत है ।' डॉ० साकरिया ने एक कथई चुरुट उसके हवाले किया । मेज पर रखी प्रोफेसर की माचिस की डिबिया उसने खुद ही उठा ली और एक अभ्यस्त धूम्रपानकर्ता के समान धुएं के छल्ले बनाने लगा । बनते छल्लों को वह हाथ हिला-हिलाकर छितराये भी जा रहा था। सारी चुरुट जल चुकी तो अवशेष टुकड़े को उसने आतिशदान में झोंक दिया । उसका दाया हाथ उसके वेस्टर की लम्बी जेब में चला गया । साथ ही एक कागज की सरसराहट होने लगी ।

यह चिट्ठी उसे अपनी मा के मरने से कुछ ही घण्टो पहले मिली थी । उसने चिट्ठी निकाली और लगभग चिल्लाते हुए बोला—'सुनो, सुनो । लिसन मी माई फ्रेंडज 'एटेन्टिवली ।' यह मेरी मां की चिट्ठी है । इसमे लिखा है'''।' पर वह अचानक रुक गया और चिट्ठी फिर जेब मे चली गयी ।

हम सब चिट्ठी का मजमून जानने के लिए बेहद उत्सुक थे । नदीम का नाटकीय अदाज हमें पसन्द न आया । डॉ० साकरिया ने हमारी उत्सुकता को अभिव्यक्ति दी—'नदीम, चिट्ठी पढ़ो । हम उसका मजमून सुनना चाहते हैं । उसे सुनकर हम तय कर पायेंगे कि यदि वही चिट्ठी तुम्हारी उदासी का सबब है तो हम तुम्हारे दुख मे साथ देंगे ।'

'मैं कह जो चुका, तुम्हारी सहानुभूति मे खोखर है । वह उन शब्दों की शिल्प भर है, जो इस बीसवीं शताब्दी की क्रूरतम ईजाद है और'''और यह प्रोफेसर । इसकी तर्कशैली इतनी भयावह है कि यह सदा इंसानियत का पोस्टमार्टम ही करती रहती है। महाशयो ! मैं इस कुर्सी को उस कोने मे ले

जाकर इस चिट्ठी को एक बार फिर पढ़ना चाहता हूं। इसे अभद्रता न समझें।'

और नदीम आप ही भारी-भरकम कुर्सी को कोने में घसीट ले गया और उस पर बैठकर चिट्ठी पढ़ने लगा।

इस चिट्ठी को वह इससे पहले न जाने कितनी बार पढ़ चुका था। पर इससे पूर्व वह बाहर खड़ी औरत को न देख पाया था। प्रोफेसर द्वारा दी गयी जानकारी से वह वाकिफ न था। अब नियॉन प्रकाश से कहीं ज्यादा उस औरत की रोशनी में उस चिट्ठी को पढ़ रहा था।

'बेटा, यदि मैं ईसाई होती तो मरने से पहले पादरी के सामने अपने किये को 'कन्फेस' करती, पर अब...अब तुम्हारे रू-ब-रू सच्चाई उगले जा रही हूं! तुमने अकसर सोचा होगा कि सुहराब जी सेठ की फर्म की एक मामूली स्टैनो देहरादून के महंगे कॉलेज में तुम्हें कैसे पढ़ा पायी। वह तुम्हें राजकुमारों के समान जिन्दगी गुजारने के लिए पर्याप्त धन कैसे भेजती रही? बेटा, अब तुम अजाने नहीं कि मेरे धन पाने का स्रोत कहां था। क्योंकि तुम अब काफी समझदार हो चुके हो फिर भी एक मां के बारे में सपाट सोचते तुम्हें बड़ी कोफ्त होती होगी। निश्चय ही तुम्हारे भरे-पूरे जीवन में यह सदैव के लिए एक दरार बनकर तुम्हें सालती रहेगी। इसलिए तुम्हें उलझन से निकाल देने के लिए मैं तुम्हें आप ही बतलाये जा रही हूं कि तुम ठीक सोचते हो। पर मैंने यह सब इसलिए किया कि कम-से-कम तुम तो उस जिल्लत से बच रहो, जिसे क्लर्क की जिन्दगी जीते, किसी सोहराब जी सेठ की मेज पर बैठे काटनी पड़ती है। मैंने इसलिए जिल्लत की जिन्दगी बसर की कि आज तुम जिस ऊंची कुर्सी पर बैठे हो, जहां तक पहुंचने के लिए न जाने कितने सुहराब जी सेठों को घण्टों रिसेप्शन में बैठकर इन्तजार करना पड़ता है। उस कुर्सी को हथियाने के लायक तुम्हें बना सकूं; यह जानकर भले ही मेरे जीवित रहने तक मुझे भरपूर घृणा करते रहना, पर मरने के बाद एक शमा जरूर मेरी कब्र पर रख देना।'

पूरी चिट्ठी को धीरे-धीरे पढ़, नदीम आहिस्ता से अपनी कुर्सी से उठ, कोने से निकल प्रोफेसर की कुर्सी की पीठ पर ढासना लगा खड़ा हुआ।

तभी पोर्टिको में हरकत हुई। प्रोफेसर की तर्जनी फिर सायास उधर उठ गयी। एक वेटर दबे पांवों आया और एक बड़ा फूल कटोरा भर खाना औरत के सिलवर के कटोरे में उलटकर बगल के गलियारे में घुस गया। खाने की खुशबू पाकर बच्चा जो अभी सहमा-सहमा दूर खड़ा था, चौकन्नी नजरों से इधर-उधर घूरते मां की बगल में आ बैठा। मां अपने हाथ से उसे खिलाने लगी। जब भरपेट खा चुका तो दो-एक कोर बहला कर खिलाये और जो बचा उसे खुद खाकर सामने सड़क के नल पर कटोरा धोकर खुद पानी पिया और नल के पानी से कटोरा भरती भी लायी जिसे उसने अपने बेटे को अघाकर पिलाया।

अब नींद आने लगी थी। पर वह फिर भी मां की गोद में दुबककर सोने से जैसे कतरा रहा था।

तभी गलियारे से फिर उस वेटर का साया निकला। औरत के नजदीक आया और फुसलाया—'जाओ ईंधन की कोठरी में फट्टा खाली है। इस जहमत को वहां सुलाकर तुम पिछवाड़े चली आना।'

फुसफुसाहट में भी वेगवती हवा ने वेटर के शब्द हम तक पहुंचा दिये। औरत बच्चे की अंगुली थामे चली गयी तो प्रोफेसर का पाईप पूरे जोरों पर धुकधुकाया। जैसे उनका तर्क प्रमाणित हो चुका था। अब वे बड़ी संजीदगी के साथ मुसकराने लगे थे।

'प्रोफेसर बहुत हो चुका, अब तुम मुसकराना बन्द करो। अन्यथा मैं तुम्हारा गला घोट दूंगा।' सहसा हमने देखा नदीम के हाथ प्रोफेसर के गले के गिर्द घूमने लगे हैं। हम सबने लपककर उसे हटाया।

'शान्त, नदीम शान्त। इतनी साधारण बात में तुम्हें इतना उत्तेजित नहीं होना चाहिए।'

नदीम का शरीर मेरे हाथों पर झूल गया। 'नहीं, मैं फट्टा नहीं। मुझे इस प्रकार नहीं झूलना चाहिए पर मैं तुम्हारे साथ भी नहीं बैठना चाहता। मैं उसी, उसी कोने में बैठूंगा। मेरे लिए एक अलग बोतल का इन्तजाम तुम्हें करना है।'

हमने उसे नहीं रोका। बोतल और गिलास कोने में पहुंचा दिये। फिर वह काफी पी चुका तो वहीं से लगभग चिल्लाते हुए पुकारा—'सुनो, सम्माननीय प्रोफेसर सौभागनी, मैं आपको सम्बोधित कर कह रहा हूं। अब मैं उत्तेजित नहीं। नशा भी इतना नहीं कि सलीके से बात न कर पाऊं। क्या आप दयापूर्वक उस औरत के कृत्य के संबंध में किसी और ऐंगल से नहीं सोच सकते?'

'क्यों नहीं? क्यों नहीं मैं तुम्हारी दावत स्वीकार करता हूं। मैं यह भी तर्क दे सकता हूं कि वह औरत उस बच्चे को सिद्ध बनाना चाह रही हो।'

'क्यों?'

'क्योंकि औरत जानती है एक भिखारिन के बेटे को भी सारी उम्र भीख मांगते ही बसर करनी पड़ेगी, अतः क्यों न उसे वह अभी से ऐसा प्रशिक्षण दे कि उसकी संतान को भीख मांगने के लिए ज्यादा जिल्लत न उठानी पड़े, अधिक दौड़-धूप न करनी पड़े। वह एक स्थान पर दम साध पड़े रहे और श्रद्धालु उसकी सिद्धाई के नाम पर नतमस्तक हो आप ही उसकी कथरी पर पैसे डालते चले जायें।'

प्रोफेसर अपनी बात कह चुके तो नदीम सहज चाल चलते उनके सामने आ खड़ा हुआ।

'ओह प्रोफेसर। निश्चय ही आप एक महान तार्किक हैं। साथ ही अगंवेदनशील। अभद्रता के लिए तुम क्षमा भी कर सकते हो, तुम निश्चय ही इतने

शालीन हो। पर मुझे थोड़ी देर के लिए वहीं शान्त कोना चाहिए।' और नदीम फिर वहां जा बैठा। उसकी आखें मुंदी जा रही थी। वह सोच के गह्वर में उतरा जा रहा था। उसने देखा। उसकी मां फट्टा बनकर पड़ी है। निर्वस्त्र और सोहराब जी का बदन उसके ऊपर झुकते झुके चला जा रहा है।

नदीम उछलकर कुर्सी से उठ बैठा और चीखते हुए दौड़ा—'ओह, वह मेरी मां है। मरियम के समान पवित्र मां।' उसने भारी-भरकम फाटक खोला और तीर के समान सरसराता बाहर निकल गया।

'उसकी मानसिक स्थिति ऐसी नहीं है कि हम उसे अकेला जाने दें।' प्रोफेसर हड़बड़ी में उठकर चलते हुए बोले—'आओ साथियो, हम सबको उसका साथ देना चाहिए।'

'आफ कोर्स।' और हम सब भी 'हॉली डे हाउस' से बाहर खुली सड़क पर आ गये। रात घिर आयी थी, कोहरा छट चुका था। बरकोटा हिल के पार्श्व से चांद का गोला शनैः-शनैः ऊपर उठता आ रहा था। चांदनी नियॉन प्रकाश में घुमिलकर एकाकार हुई एक अपरूप आभा फैला रही थी। नदीम हमारे देखते-न-देखते एक मोड़ मुड़ चला। हम सिहरे। 'आगे 'पंचपुला' है। जहां छोटे-छोटे पुलों के नीचे से होकर पानी बहे जाता है। हम जी० पी० ओ० स्क्वायर पार कर पुल पर पहुंचे। नदीम वहां बैठा पानी की धार में तान-तानकर कंकड़ फेंके जा रहा था। परिणामस्वरूप भंवर उठ रहे थे और फिर जल शान्त हो जाता था।

उसने भी हमें देखा। वह अपेक्षाकृत शान्त था। उसने हमारा स्वागत किया—'आओ दोस्तों! मैं अभी देहरादून जाना चाहता हूं। वहां मुझे तुम्हारी सहायता की जरूरत है। मेरी मां, वहीं मरी है। यह तुम जानते हो। वहीं मेरी मां की कब्र है। मैं उसके गिर्द मजबूत फट्टों की एक सफील तामीर करना चाहता हूं। मुझे फट्टों की पहचान नहीं है। फट्टे इतने मजबूत होने चाहिए कि वर्षों तक मौसम की मार सहते रहते भी न सड़ें, जिन्हें दीमक न लगे। ऐसे फट्टों की छंटाई में मैं आप सबका सहयोग चाहता हूं।'

'क्यों नहीं। हम सब तुम्हारे साथ चलेंगे।'

'शुक्रिया साथियो! पर पहले हमें इसी कसबे के बाजार में जाना होगा। यह देवताओं की घाटी है। यहां धूपबत्तियां अच्छी मिलती हैं। बड़ी-बड़ी कंदीलें भी यहां पर्याप्त हैं। यह सब हमें यहीं से लेते जाना है। देहरादून में यह सब न मिल पायेगा।'

और वह लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाते बाजार की ओर उतराइयां उतर चला। हम सब भी उसका अनुसरण करते चले।

सर्प नियति

तिष्यजित की प्रजा ने विद्रोह कर दिया। उसके स्वार्थी सामंत विद्रोहियों से जा मिले। वह श्रेष्ठ समुदाय जिसे उसने शोषण की अबाध छूट दी थी, कहीं अज्ञात स्थलों में जा छिपा।

तिष्यजित अपने मुट्ठीभर विश्वस्त भृत्यों और कुटुम्बी जनों के साथ एक पर्वतीय गुफा में जा छुपा। हताश, क्लांत वह रुग्ण हो गया। किन्तु वह पत्थर-पाटिका पर पड़ा ही फिर से सत्ता और ऐश्वर्य प्राप्त कर पाने के सपने संजोता रहा।

एक दिन वह सहसा अचेत हो गया। थोड़ी देर उसके चतुर्दिक् गहन अंधकार का वितान तना रहा, किन्तु वह शनैः-शनैः सर्प-शीत से थरथराने लगा और एक प्रकाशवृत्त के घेरे में आ गया। अब वह होश-हवाश में था और सोच भी रहा था।

यह क्या? वह तो एक पार्श्व में स्वर्ण-मंजूषा और दूसरे में पीयूष-घट दबाये आतुरता से एक सर्प का पुष्ट भाग पकड़ने के लिए लपके जा रहा था। वह नितान्त निराधार शून्याकाश में था।

नीचे अगाध अनल और ऊपर विराट का विस्तार था। वह समझ गया कि जिस प्रकाशवृत्त के चुम्बकीय आकर्षण से बंधा हुआ वह अन्तरिक्ष में सरसराये जा रहा है, वह वृत्त साँप और अपने बीच की दूरी बढ़ जाने के साथ ही उसकी पहुँच से बाहर हो जायेगा और फिर वह भारहीन स्थिति में अनन्त काल तक अन्तरिक्ष में ही घूर्णित होता रहेगा।

वह पूरी बाहें फैलाकर ही सर्प की पूंछ को नहीं पकड़ सकता था। क्योंकि इस प्रयास में स्वर्ण-मंजूषा और अमृत-कलश उसके पार्श्व से छिटक जाते, अतः उसने प्रयासपूर्वक केवल कोहनियों से आगे के हाथ के भाग को फैलाकर जैसे-तैसे सांप की पूंछ पकड़ ली। किन्तु अति सावधानी के बावजूद स्वर्ण-मंजूषा छिटककर कुछ दूरी पर घूर्णित होने लगी।

तिष्यजित ने पुकारा—'भो सर्प ! सुनो, देखो, अमूल्य मरकत-मणियों से भरी मेरी स्वर्ण-मंजूषा मेरे पार्श्व से छिटककर उधर जाकर घूर्णित होने लगी है। बन्धु, अपना रुख उस दिशा में परिवर्तित कर मुझे उपकृत करो।'

सर्प उसको निर्देशित दिशा में बढ़ा। मंजूषा के गिर्द एक चक्कर लगाया और फिर तत्काल ही अपना विशाल फन झाड़कर नीचे की ओर उतरने लगा।

मंजूषा छोड़ सर्प को लौट जाते देखकर—तिष्यजित पुनः बोला—'बन्धु, मेरी मंजूषा से मुझे दूर न ले जाओ।' सर्प ने अपना फन पलटा। अब उसका अग्र भाग तिष्यजित के गिर्द लहरा रहा था। उसकी जिह्वाएं लपलपा रहीं थीं। उसके नथुनों से तप्त विष के फेनिल झर रहे थे। आंखों से ज्वालामय स्फुलिंग निकल-निकल कर पड़ रहे थे। वह विद्रूप के साथ फुत्कारते हुए बोला—'छोड़ो इस नगण्य मंजूषा का मोह। मैं तुम्हें वहां लिये जा रहा हूं, जहां अतुल स्वर्ण-भण्डार है। वह स्थल मणि-मुक्ताओं का आगार है। वहां से तुम मन चाहा द्रव्य ला सकते हो।'

सर्प के आश्वासन पर तिष्यजित को क्षणिक सान्त्वना मिली। सभय निराधार है। यह सर्प निश्चय ही मेरा हितैषी है, जो अकूत वैभव की दिशा में लिये जा रहा है। ओह ! वैभव ही जीवन की सार्थकता है। वैभवहीन जीवन भी क्या जीना। उसने जितना जिया वैभवमय जीवन जीता रहा। निधियां उसकी दासी बनकर रहीं। पर कुछ गलतियां की और अपने वैभव जगत से खदेड़ दिया गया। वह पलायन तो न करता पर मृत्यु-भय ने उसे विवश किया। विडम्बना ही थी कि उसके कोषागार में अमृत-घट आरक्षित रहा, किन्तु वह कभी उसकी एक बूंद भी न पी पाया। वह निरन्तर विजय-अभियानों और निधियां बटोरने में निरत रहा। त्रैलोक्य-विजय के बाद उसने एक ऐसा महल बनवाया, जिसमें सपनों को भी नींद आ जाये। उसके लिए एक ऐसी शैया बनायी गयी कि जिस पर स्वयं रति आकर सो जाये, पर किसी को अंक में दबाकर सो पाने का उसे कभी अवकाश ही न मिला। *प्रथम संचय, पीछे भोग। वह इस तन्त्र का उपासक था। भोग के लिए* कभी अवकाश न मिला। पीयूष पी न पाया।

खैर, सर्प उसे उस वैभव की पूर्ण प्राप्ति की राह पर ले चला तो नये सिरे से जीने की ललक बढ़ी। सोम-सुन्दरीमय जीवन। इस दफा वह अक्षय जीवन का भोग करेगा। अवसर मिलते ही विधाता के कोष से अक्षय तारुण्य झपट लायेगा।

किन्तु यह सर्प है कौन ? कहीं कोई वंचक तो नहीं है ? इसी से पूछ देखूं। यह कौन है ? अनजाने जीव, जल, अग्नि और साधु का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

"भो भन्ते ! क्या आप अपना सम्यक् परिचय देकर मेरा अविश्वास दूर

करेंगे ?'

'तुमने किसी का विश्वास किया ही कब है।' सर्प ने फिर तनिक-सा फन पलटा। उस फन का सानिध्य बड़ा तप्त था। उसे झुलस न का अनुभव होने लगा। पर सर्प अपने स्वभाव से फुत्कारा—'तुमने अपनी नियति तक पर कभी विश्वास न किया तो मुझ पर क्या करोगे। किन्तु मैं अनजाना नहीं। मैं तुम्हारी जिगीषा (विजय लालसा) और वैभव-एषणा का समुच्चय हूं।'

'तो मैं अभी मरा नहीं। निष्क्रिय नहीं हुआ। जब तक लालसा नहीं मरती, आदमी नहीं मरता। तो'''सृप'''सृप। चलो साथ। तुम विश्वसनीय हो। मुझे नव-अभियान की दिशा मे लिये जा रहे हो। इस पथ पर मेरा संचित पुण्य भी मेरा साथ देगा।'

'राजा! तू धर्म कहते-कहते ही कृश हुआ जा रहा है। यह नपुंसक-सा जीवन दर्शन तूने कहीं वैराग्य भावना से तो नहीं पाया है। तब,छोड़ मेरा साथ।'

'देखो सर्प, अब मेरा पौरुष फिर से जागने लगा है, मैं तुझ विश्वासी को मुंह नहीं लगाना चाहता। सृप-सृप चल।'

सांप इस दफा हंसा तो उसके माथे की मरकत मणि चमकने लगी। तिष्यजित को अपने अतीत के अभियानों की याद आने लगी। उसने अपने अभियानों में ग्रह-लोकों और निहारिकाओं को खगार डाला था। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर निकलकर, वायु-मार्ग से दूर, उलकाओं के खण्ड-खण्ड कर उनके नाभिकेन्द्रों से लौह-भार निकालकर अजय अस्त्रों को ढाला था। उसने सीप-मोतियों की खोज में आकाश-गंगा का निथरा जल गन्दला कर छोड़ा था। समुन्द्र को स्तब्ध कर, उसके तल में भरे भण्डारों का अपहरण कर लिया था। धरती को अतल तक खोदकर खनिजों का उत्खनन किया था।

सितारों के आगोश में बैठे ... ने भर ने ... मुकुट मे

अभियानों की तलाश मे भटकता रहा। फुर्सत की कभी एक घड़ी भी न पायी। संचित वैभव का उपभोग और अमृत पान न कर पाया। अब वही अछूता कलश भार बनकर उसके पार्श्व में दबा था। उसके मन में भय व्यापने लगा कि कहीं स्वर्ण-मंजूषा के समान यह घट भी न छिटक जाये।

सर्प ने सहसा गति-मार्ग पलटा। अब वह ऊर्ध्व-मार्ग पर सरसराये चला जा रहा था। उसी अमर-लोक की ओर जहां से वह पीयूष अपहृत कर लाया था।

'यह कैसी वंचना! सहसा शत्रु-लोक की ओर प्रस्थान और वह भी मेरी असहाय अवस्था मे। नहीं, नहीं, यह मेरी जिगीषा नहीं है। यह तो उन्हीं सर्पों मे से कोई एक है, जो इन्द्र के आगार पर तैनात थे। अब यह निश्चय ही माल सहित मुझे शत्रु के हवाले करने के लिए जा रहा है।

वह अवसन्न-सा होकर चीखा—'ओ सर्प! तुम वंचक हो। पलटो। मैं उधर नहीं जाना चाहता।'

'पागल न बनो। कल्याण इसी मे है कि जैसे अब तक अपनी नियति से बंध कर चलते रहे हो, वैसे ही बढ़ते रहो। मैं तुम्हे मृत्यु-पथ पर नहीं, अक्षय जीवन के मार्ग पर लिये जा रहा हूं। वह देखो, उधर सामने वह कन्दरा है। उसकी चट्टानें स्वर्ण से निर्मित हैं।' और कथन की समाप्ति के साथ ही सांप एक विवर में घुसने लगा।

सीलन, उमस, घुटन, सड़ांध। रोम-रोम में जुगुप्सा घिर आयी। सड़ी दुर्गन्ध उसके नाशिका-रन्ध्रों मे घुसने लगी। अन्धकार गहनतर होता गया। टेढ़े-मेढ़े पथरीले पथ वाली बाम्बी में उसके गरुड़-पंख झड़ गये। चमड़ी छिल गयी। क्षत शरीर से रक्तस्राव होने लगा।

शनैः-शनैः सामने पीत प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। तो अभी प्रकाश शेष है। पर विजय-मार्ग तो अंधेरे से होकर ही गुजरते हैं। विवर की ऊंचाई और चौड़ाई बढ़ने लगी। प्रकाश पूरी तरह फैल गया। गह्वर की दीवारों और छतों पर मुक्ता-फल के गुच्छ लटक रहे थे। मणि-मालाओ के वितान तने थे। सांप ठिठक गया था। तिष्यजित ने अपने हाथ मुक्त किये और लपककर एक मुक्ता-गुच्छ और कई मणियां तोड़ ली। अभी वह और तोड़ना चाहता था, कि बर्रों के दल-बादल घिर आये और उसके अंग-प्रत्यंग मे दंश देने लगे। वह बर्रों से घिरा था और सांप सरसराने लगा था। उसे लग रहा था कि उसके सारे शरीर पर अंगारे रख दिये गये है। दंश की पीड़ा और सर्प के उसे वहीं छोड़ जाने की सम्भावना। ऐसी विषम परिस्थिति में भी उसने एक मणि निगल ही ली और शेष छोड़ भाग कर, सांप की पूंछ थाम ली। सांप सरसराता चला। अब उसके नथुनों से एक तेजाबी गन्ध निकल रही थी। तिष्यजित की आंखें उसकी उत्कटता के कारण जलने लगी। उसे मितली आने को हुई, पर गनीमत यही हुई कि सर्प शीघ्र ही

विवर से बाहर निकल आया।

उसके रोम-रोम से रक्तस्राव होते देखकर, उसकी दुर्गति पर फुफकारते हुए सर्प बोला—'अफसोस कि तुम स्वर्ण-कंदरा से भी छूछे हाथों लौटे आ रहे हो। लगता है तुम्हारा पुरुषार्थ थक गया। खैर, मैं एक बार फिर तुम्हारे उसी संसार में लिए चलता हूं, जहां से लिवा लिया था। हो सकता है, वहां प्रारब्ध तुम्हारा फिर साथ दे।'

तिष्यजित को बुरा लगा।—'तुम भाग्य पर भरोसा करते हो? तब हो चुका। मैं तो सदा प्रारब्ध को नकारता रहा हूं। प्राणी को झपटने से मिलता है। छीनने से मिलता है। खैर, तुम्हारे प्रारब्ध के मार्ग पर भी चलकर देखूं।'

सर्प आधारहीन उतराइयां उतर चला। नीचे एक गंदली झील में असंख्य जोंकें कुलबुला रही थीं। तिष्यजित ने उन्हें पहचाना। यह तो वही श्रेष्ठ-समुदाय था, जिसे उसने अबाध शोषण की छूट दी थी। उसके अंगों से अभी रक्त रिसे जा रहा था। ताजा मानव रक्त की गंध पाकर जोंकों ने अपनी थूथनियां उठायीं। विरल टपकती बूंदें उन जोंकों के मुंह में गिरने लगीं। जोंकें तृप्ति से चाटने लगीं।

सहसा जोंकों के झुण्ड में खलबली मची। वे भी उसे पहचान चुकी थीं। अरे, यह तो वही है। इसे रोको। इसी के संरक्षण में तो हमें रोज ताजा रक्त मिला करता था। धरती पर उतर आओ। राजा, हम अभी तुम्हारी प्रच्छन्न मदद करने को तैयार हैं।

सांप फुत्कारा। उसकी फुत्कार में व्यंग था या खुशी, तिष्यजित न जान पाया। तो सांप ही बोला—'जब तक तुम इनके लिए चारा न जुटा पाओगे। तुम्हारे ये विश्वस्त साथी तब तक छिपे रहेंगे। जब तुम विजय कर चुकोगे तो ये तुम्हारे लिए तोरण-द्वार खड़े करेंगे। क्या तुम ऐसे साथियों पर भरोसा कर यहां रुक रहना चाहोगे?'

तिष्यजित का भरोसा टूट चुका था। सर्प-गति जारी थी। अब वे झील के तटीय प्रदेश पर थे। वहां बहुत से श्रमिक पसीना बहा रहे थे। उनकी कुदालें चल रही थीं। वे उसके प्रमोद-उद्यान को गोद-गोदकर खेती के लिए जमीन हमवार कर रहे थे। इससे पूर्व कि वे कमेरे उसे पहचानें, वह उस प्रदेश से निकल भागना चाहता था।

'डरो नहीं बन्धु! ये प्रतिघाती नहीं। इन्हें अपना काम करने दो। यहां न सही। मैं तुम्हें फिर वहां लिए चलता हूं जहां तुमने पहले अपनी विजय के तोरण-द्वार गाड़े थे। उन्हीं विजित प्रदेशों में तुम शायद पहले की पहचान बनाये रख सको। तुम्हारे प्रभाव की खबर शायद वहां न पहुंची हो।' और सांप फिर उसे ऊर्ध्व पथ पर घसीट ले चला।

मार्ग घुमावदार था। सर्पगति भी टेढ़ी-मेढ़ी होती है। इससे सांप आसानी

से चले जा रहा था, पर तिष्यजित की परेशानी की हद न थी। वह झटकों के साथ झूलने लगा। इस ऊहापोह में अमृत के छलक जाने का भय उसे सताने लगा। वे एक बार फिर गंदली झील के ऊपर से गुजर रहे थे। जोकें पूर्ववत् थुथनियां उठाये थीं। पर सर्प पार्श्व मार्ग से सरसराता निकल गया। उसकी गति में वेग आ गया। चट से उलक पड़े पीयूष-कण कुशाओं पर जा गिरे। गनीमत थी कि वे जोंकों की जिह्व पर न गिरे।

अब वे उन लोकों पर से होकर गुजर रहे थे, जहां उसके खण्डित विजय-तोरण अभी जहां-तहां दिखाई दे रहे थे। चाद पर बैठकर रोती हुई बुढ़िया ने उसे पहचाना। वह दांत किटकिटाती हुई, अपना टूटा तकुआ लेकर उसके पीछे दौड़ी।

सितारों के आगोश में दुबके क्षत-परों वाले चूजे अपना सन्तुलन सभाले चोंचें खोलकर उस पर झपट पड़े। ग्रहों की ढलानों पर चौकस खड़े गन्धर्व उस पर चोखे तीर चलाने लगे।

सांप उसे उन आक्रमणों से बचाने के लिए लोट-पोट होते द्रुत-वेग से भागा।

'मेरा कण्ठ घुटा जा रहा है, सर्प। मुझे पानी चाहिए, दो घूंट पानी।'

'तुम्हारे पार्श्व मे अमृत-घट है, छककर पी लो।'

'पर मेरे हाथ तुम्हारे साथ बंधे हैं।'

'बन्धन सबके लिए समान होते हैं। तुमने भी तो किसी को बांधा था।'

'व्यंग न करो सर्प, तुम अपने स्वभाव से ही क्रूर हो।'

'मैंने तुम्हारे साथ कोई क्रूरता नही की। मैं तो विपद-काल मे तुम्हारा सम्बल ही बना। तुम्हें लोक-लोक में घुमाया कि तुम कहीं अपनी खोयी यशःश्री पुनः पा सको। कहो तो मान सरोवर के उन घाटों पर भी तुम्हें ले चलूं, जिसके जल में तुम जहर घोल चुके हो।'

उसे याद आया, उसने मानसरोवर के जल मे जहर घोलकर कितने यक्षों को मार डाला था।

'क्यों? चलें। पर अब वहां यक्ष सावधान होकर खड़े हैं। तुम्हें मारने के लिए नही, कुछ सवाल करने के लिए। क्या तुम उन यक्ष—प्रश्नों का जवाब दे सकोगे। एक प्रश्न यह भी है कि हथियारों की खेती कर, उनमे हड्डियों की खाद देकर, रक्त से सींचकर जो युद्धों की खुराक तुमने जुटाई। उसकी उपलब्धियों को क्या तुम खा सके! अर्जित वैभव को भोग सके?'

'भूख की याद न दिलाओ, बन्धु सर्प! मैं बेहद भूखा भी हूं। कम-से-कम मुझे वहां ले चलो जहां एक रोटी का टुकड़ा तो मिल सके।'

'जिन गोदामों मे तुमने अनाज भरा था, उसमें घुन लग चुका। तुमने भूखों के

निपाले छीन लिये थे। तुम्हारी कृपा से जिन लोगों के घरों में रोटियों का अम्बार लग गया था वे जोंकें तो अब जिह्वाएं लपलपाती तुम्हारा ही रक्त पीने को पागल हैं। इससे तो अच्छा था तुम किसी साप को दूध पिलाते जो आड़े वक्त पर तुम्हारे काम तो आता।'

'देखो सर्प। तुम्हीं ने तो कहा कि तुम मेरी विजय-लालसा और एषणा हो। तुमने मुझे जैसे चलाया, मैं चला, फिर दोषारोपण मुझ पर क्यों?'

'मैंने मेरा काम किया, किन्तु तुमने मुझ पर नियन्त्रण करने की कभी चेष्टा नहीं की, यही तुम्हारी दुर्बलता थी। अब तुम थके-हारे का बोझा ढोना मेरे लिए असह्य है। तुम इतने भारी हो कि लगता है अब भी तुम अपने अन्तर्वस्त्र के नीचे कोई भारी आयुध छिपाये हो।'

सर्प भी निःसत्व हो चुका था। उसकी केंचुली झड़-झड़कर नीचे धधकते अग्नि-कुण्ड में गिरने लगी।

तभी उनके पथ पर एक पृथुलकाय देव अवतरित हुआ। तिष्यजित ने सोचा यह उसकी सहायता के लिए आया है। उसने उतावले होते पूछा—'भो देव, आप कौन महानुभाव हैं?'

देव गम्भीर था। उसके चेहरे पर तनाव था। उसने उदासीनता के साथ उत्तर दिया—'मैं तुम्हारा कर्म हूं। तुमने मुझे दुष्कर्म में परिवर्तित किया। मैं तो कर्ता के अधीन होकर करता हूं। अपने किये का फल तुम भोगो।' और फिर वह सर्प की ओर उन्मुख हो बोला—'तुम त्वरित वेग से अपने इस भार को उस धरती की ओर ले जाओ जो इसके द्वारा प्रक्षेपित अस्त्रों के कारण यज्ञ-कुण्ड के समान धधक रही है। इसे उस में झोंककर तुम यहीं लौट आओ। यदि यह उस धरती को फिर हरी-भरी बना सका तो इसके कृत कर्म जल जायेंगे और यह निखरकर निकल आयेगा, अन्यथा फिर एषणा, जिगीषा के चक्रवात में फंसकर अनन्त काल तक घूर्णित होता रहेगा।' देव अन्तरध्यान हो गया।

सर्प ने अपनी कुण्डली समेटी और वक्र गति से लहराता, सरसराता अग्नि-कुण्ड की ओर चला तथा उस ज्वालापुन्ज से कुछ ऊपर कई एक चक्कर लगाये और फिर जोर से पूंछ झाड़कर तिष्यजित को अधर में छोड़ दिया।

झटके के साथ ही पीयूष-घट अग्नि-कुण्ड में जा गिरा। उसके गिरते ही अग्नि-ज्वालाएं सहस्रमुखी होकर लपलपाने लगीं। तभी तिष्यजित की कण्ठ-नालिका में छिपी मणि भी उस कुण्ड में जा गिरी और फिर वह अग्नि-ज्वालाओं से घिरने लगा। उसने निकल भागने की चेष्टा की। वह उठा, गिरा। फिर उठा और फिर गिरा किन्तु फिर उसने पूरे जोर से उछलकर अभी वहीं खड़े सांप की पूंछ पकड़ने की कोशिश की, किन्तु सर्प की काया भी सहसा विगलित होने लगी और शनैः-शनैः एक चक्रवात के रूप में परिवर्तित हो गयी।

और उधर भी अचानक तेज अंधड़ आया और तिष्यजित ने अन्तिम हिचकी ली। वह गुहा जिसमें वह छिपा था, थमने लगी।

वो

इस घर के दरवाजे पर दस्तक देने से पहले न जाने जोगासिंह कितने दरवाजे खटखटा चुका था, किन्तु बस्ती के हर घर ने या तो सन्नाटे के रूप में अथवा नकारात्मक स्वर में उत्तर दिया था। दस्तक पर दस्तक। रुकने का अवकाश न था। वह पहले अंधड़ में घिरा और फिर अपनी टोली से बिछुड़ गया।

दूर उठते धुएं ने बस्ती होने का अनुमान कराया और बस्ती में घुसने के साथ कुत्तों की भौंक ने उसका स्वागत किया। इधर इन गांवों में कुत्ते भी कितने जबर हैं। कैसा तो जमाना आ गया आदमी का आदमी पर से विश्वास उठ गया। कुत्ते सजग रहने लगे। ऐसा क्यों? किसने पैदा किया यह माहौल। यह सवाल का जवाब इतना पैना था कि सीधा उसकी छाती में घुसे जा रहा था। अगर फेहरिश्त बनाई जाये तो एक उसका भी नाम उनमें जुड़ा होगा जो ऐसा माहौल बनाने के लिए जिम्मेवार है।

अन्धी बरसात पड़ते तो काफी अर्सा हो गया, अब बड़े-बड़े ओले भी गिरने लगे थे। 'स्याले ओले है कि मैगजिन की गोलिया?' इस विचार के साथ ही वह सहम गया। 'गोली, बारूद, मैगजिन। क्या यही सब उसके जेहन में घुल गया है।'

अपने को इस खयाल से दूर हटाने की गर्ज से उसने दरवाजे पर लगातार दो-तीन दस्तक दी तो भीतर से सुगबुगाहट सुनाई देने लगी।

'दरवाजा खोल दो, बन्तो।' बूढ़ी खरखरी पर विश्वासभरी शाइस्ता आवाज। पर बदले में जो स्वर उभरा वह मीठा तो था पर अनचाहा।

'नहीं बापू। हर किसी की दस्तक पर कुवेला में दरवाजा खोल दिया जाये, ऐसे वक्त और हालात नहीं।'

'कुवेला मे ही कोई किसी के दरवाजे पर पनाह के लिए दस्तक देता है। यह न भूलो बेटी, कि बाहर आसमान फट पड़ने को है। दरवाजा खोल दो।'

'मगर वह'''वह उनमे से कोई हुआ तो?'

'तो' ' 'तो वह दरवाजा तोडकर अन्दर आ जायेगा। हम उसे रोक न पायेंगे, फिर अपना कर्तव्य ही क्यो न करें।' और बूढे ने आगे बढ़कर खुद दरवाजा खोल दिया।

'आओ, भीतर चले आओ।' बूढ़ा उसके लिए राह बताते बोला। दरवाजा खुलने के साथ बाहर से आये हवा के झोंके से लालटेन भकभक करने लगी। उस भकभकाहट में बाप-बेटी ने देखा, आगन्तुक के कन्धे पर झूलती मैगजिन को, कमर पर पड़ी कारतूस की पेटी को और पीठ पर लटकते झोले में न जाने क्या कुछ था।

जोगासिंह भीतर आया। बूढे ने झटपट दरवाजा बन्द किया और उसी से सटकर खड़ा हो गया। बन्तो पहले ही कोने में दबक चुकी थी। 'जाओ, वहां बैठ जाओ। उस धधकती अंगीठी के पास। तुम्हें अपने को गरमाने की सख्त जरूरत है।'

जोगासिंह बूढ़े द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जा बैठा तो लालटेन भी जैसे आश्वस्त होकर फिर स्थिर भाव से चलने लगी। बाप-बेटी के बीच कोई हाथभर का फासला था। जोगासिंह उन दोनों को एकसाथ देख सकता था। वे भी उसे देख रहे थे। पर बड़ी देर तक कोई कुछ न बोला। फिर बूढ़े ने मौन भंग किया—'तुम्हारे कपड़े भीग चुके हैं। खूटी पर से धोती-कुर्त्ता लो और बदल लो।'

जोगासिंह ने नीले अंगरखे और कच्छे की जगह चिट्टा लिबास धारण किया तो जैसे आदमी ही बदल गया। उसने अपना साजो-सामान भी पूर्ववत् जहां का तहां सहेज लिया तो बोला।

'तुम भले आदमी हो। पूछा तक नहीं कि मैं कौन हूं, मेरा इरादा क्या है? मेरे पास असलाह भी है।'

'दुनिया में ज्यादा भले लोग है और अनुकूल परिस्थिति पाकर इरादे बदल जाते है। अकसर ज्यादा डरा हुआ आदमी ज्यादा असलाह ढोता है। इस वक्त तुम्हे सर छुपाने के लिए छत और गरमाने के लिए आग तथा सूखे कपड़ो की जरूरत थी। सो मिल चुके। शायद भूखे भी हो, तुम्हारा पेट भर सके उतना खाना भी बचा है। खाओ और थोड़ी देर सुसताओ। फिर जो भी इरादा हो वह पूरा करने की सोचना।'

जोगासिंह रोटी खाता रहा और सोचता रहा। बन्तो जो रसोईघर से रोटी लाई थी वह भी काफी भीग चुकी थी। उसकी सलवार और दुपट्टा उसके शरीर से चिपके थे।

'अचानक बूढा बोला—'बन्तो, तुम भीतर जाकर अपनी मां के पास सो रहो। हम दोनों यहां पड़े रहेंगे।'

'पर बापू, भीतर के कोठे की छत टपक रही है। मा भी बाहर ओसारे में आ

बैठी है।'

तभी भीतर से एक दर्दभरी सिसकारी उठी। 'लगता है मां की तबीयत ज्यादा बिगड गयी। आओ, बापू उसे संभालो।' दोनों बाप-बेटी औसारे मे चले गये। इधर अधेरे मे अब जोगासिंह अकेला। जरा भर प्रकाश शेष था तो वह अगीठी में धधकते अंगारो के कारण।

'कितना भी अंधेरा क्यों न हो पर रोशनी का वजूद तो बना ही रहता है।' बहुत दिनों बाद जोगासिंह के जेहन में एक अच्छा खयाल आया।

तो बस, आग और अच्छाई ये दो ही अमर है। इस बूढ़े ने न नाम पूछा न गांव। घर मे जवान बेटी। बीमार औरत।'

अब बिजली भी कड़कने लगी थी। उसकी कौंध लगातार दरवाजे की सेंध से आ रही थी। वह डरा। तो नेकी भी पहले-पहल डराती है। ठीक इसी आकाशी बिजली की तरह। अधेरा रोशनी मे डरता है या'''

'पापी बंदा डरपता देख आकाशी जोता।'

तभी उसके नंगे सर पर टपटप कर पानी गिरने लगा। 'तो इस कोठे की छत भी टपकने लगी है। अगीठी मे धधकती अंगारों पर भी पानी की धार गिरने लगी। अंगारे छनछन कर बुझकर कोयले बनने लगे। निर्बुझ कोयलो से भाप उठने लगी। जोगासिंह के भीतर भी धुआ उमड़ने लगा।

'अब वे बेचारे कहां पनाह लेंगे!' वह अपना थैला टटोलने लगा। फिर उसे खोला और चोर बत्ती निकाली। उसे रोशनी की जरूरत थी। लालटेन बन्तो अपने साथ लिया ले गयी थी। वे लोग बड़ी जरूरत के वक्त ही इस बत्ती का इस्तेमाल करते है। यह बत्ती। यह उनकी शिनाख्त भी दे सकती है। पर अब वह न जाने क्यो न डरा। रोशनी का सैलाब आ गया। देखा। औसारे की हालत कोठे से भी बुरी थी। जोगासिंह अब सब्र न कर सका। उसकी आंखें छलछला आयी। वह अपना मकसद भूल गया। स्मृति और पहचान जागी। उसके अपने घर का माहौल भी तो कुछ इससे ही मिलता-जुलता होगा। मुद्दत हो गयी घर छोड़े। लम्बे अर्से तक एक जनून भरी जिन्दगी जीता रहा। न सहादत मिली न मकसद समझ पाया। मगर वह जिसे सहादत की डगर समझता रहा था वह तो एक अंधेरी गली थी। किसी ने उकसाया और नौजवान भटक गया। ऐसे लोगों का दुश्मन बन गया, जिन्होने उसका कभी कोई नुकसान न किया था। साथ देने वाले खतरे के वक्त उसे गच्चा देकर अकेला छोड चले गये।

वह बत्ती लिये-दिये औसारे मे पहुंचा। बीमार बुढ़िया कुछ बुदबुदाती रही। पर बन्तो सीधी तनकर खड़ी हो गयी—'रुको, तुम वहीं रहो।'

पर जोगासिंह न रुका। उसने रोशनी चारों ओर घुमायी। एक ओर रखी कस्सी उठाते बोला—'मुझे थोड़ी टाट की भी जरूरत है। उस कोठे की छत भी

दरकने लगी है। थोड़ी देर यूं ही चलता रहा तो सारा घर ढह जायेगा।'

और वह आंगन में जाकर मिट्टी खोदने लगा। दो-चार हाथ मारे कि कीच-पानी के नीचे से सूखी मिट्टी निकलने लगी। पर वह भी तेज गिरते पानी से फिर भीगने लगी। उसे खयाल आया तो आदमी भी भीतर से सुखान खाये हैं। अपने को बाहर उगलता है तो भीगता है। तभी वह चौंका—'लो यह तासला भरो।' अब बन्तो भी उसकी बगल में तासला लिए खड़ी थी।

'पर छत पर जाने को सीढ़ी है?'

'है, वह उधर है।' बूढ़ा भी जो वहां आ पहुंचा था बोला।

'लाओ कस्सी मुझे दो। मैं मिट्टी खोदता हूं। बन्तो बीच सीढ़ियों तक पहुंचायेगी। तुम ऊपर छत पर जाकर डालते रहो। लो यह टाट भी लेते जाओ। सुराख मूंदकर मिट्टी से पाटते रहना।' तो मेरे भीतर भी कोई सुराख हो गया है। काश! मुंद पाता।

थोड़ी देर में छत के सुराख मुंद गये। छत जम गयी।

'तो यह है मेरे जैसे किसान के बेटे का असल काम।' जोगासिंह ने सोचा। छातियों में छेद करना नहीं, उन्हें मूंदना।

तीनों ने वापिस आते सुना। बुढ़िया टूटे-टूटे स्वर में ग्रन्थ साहब के गुटके से पाठ कर रही थी।

'एक नूर तो सब जग उपजा।' स्वर टूटा फिर जुड़ा। '...सांई के सब बन्दे।'...फिर टूटा। फिर जुड़ा। 'कौन भले, को मन्दे।'

'तो यूं टूट-टूटकर जुड़ता।' जोगासिंह जितना पानी से न भीगा था, उससे कहीं ज्यादा इस अमृत-वाणी से भीग गया, अन्दर तक।

सहसा पूछा—'तुम'''तुम तो हिन्दू हो?'

'हां। मेरी घरवाली गुटके का पाठ करती है, तुम्हें आश्चर्य हुआ। पर पुतर, यह सांझा देश है। यहां घर-घर एक छत के नीचे हिन्दवी-सीखी साथ-साथ बसती है। जो कोई बीच में दीवार खड़ी कर खुली हवा को रोकता है, उसी का दम घुटने लगता है और वह अपने हाथों खड़ी की गयी दीवार को आप ही तोड़ने के लिए मजबूर हो जाता है।'

जोगासिंह की भी जैसे सांस उखड़ने लगी थी। तन पर लदा लोहा और बारूद अब उसे भारी लगने लगे थे। उसने असलाह खोलकर अलग रख दिया और बाहर के कोठे में जाकर फिर अपना लिबास पहना और ओसारे में आकर असलाह समेटा—'शुक्रिया नेक इन्सान, शुक्रिया! तुमने ठीक कहा था। अनुकूल परिस्थिति पाकर इरादे बदल जाते हैं। अब यह लोहे का भार मुझे दबाये जा रहा है। बारूद की गन्ध मेरा दम घोटती है। मैं जल्द-से-जल्द इससे निजात पाना चाहता हूं। और हां'''अगर कभी अपने गुनाहों की सजा काटकर आ सका तो

फिर मिलूंगा। जरूर मिलूगा और अपनी बहनड़ बन्तो के लिए चूनर लाऊंगा। जरूर लाऊंगा।'

वह रुंधे गले बाहर निकला। उसे घूरे जाती छः आखें भी नम थी। अब गली के कुत्ते उस पर न भोंके ।

अब क्यों भोंकते। अब उसके चेहरे पर एक नया नूर जो था । थो'''वह नहीं था।

बहुस्तरीय योजना

मन्त्री जी ने बायी आंख दबायी तो चीफ साहब ने तत्परता से दायी आख दबा दी। दुआ-सलाम के बाद आनन-फानन में ही निबटारा हो गया। चीफ को ऐसी आशा न थी। द्विपक्षीय लाभ की योजनाएं भी अकसर मंत्री महोदय की दृष्टि से फिसल जाया करती थी।

किन्ही विशेष अवसरो पर ही सीधे बड़ी सरकार के हुजुर में हाजिर होने का सकेत मिलता था। पर आज तो सीधे से पण्डित जनकराज की नजर अंत.पुर की ओर उठ गयी, तर्जनी राह दिखलाने लगी। स्पष्ट हो गया यह विषय सीधा बड़ी सरकार के निर्णयाधीन है।

चीफ कई आशंकाएं मन मे पाले अन्त.पुर में दाखिल हुए। वैसे वे मीर अव्वल मनसबदार अधिकारी थे, पेशगी सूचना की उन्हें दरकार न थी, बड़ी सरकार ने उन्हें हाथोहाथ लिया। तर्जनी तक न उठायी, सीधे से बायी आंख दबा दी तो चीफ साहब अचकचाहट में दायी आख दबाना एकबारगी तो भूल ही गये। पण्डित जी की आख की दाब मे वह दबक कहां थी जो मिसेज की लाल तनियोदार पनियल पुतलियों मे भरी थी। पर खैर, ज्यादा देर न हुई, चीफ पलक झंकते सभल गये और अदब से दायी आख दबा दी।

बड़ी सरकार की आयोजना में मीनमेख की गुजाइश थी ही कहा और, हो भी तो गुस्ताखी कौन करे।

राजधानी के मशहूर जोहरी माफिललाल अभी-अभी हीरो के हार के उपहार के बदले एक प्याला चाय का पाकर आभार जताते ठेठ मारवाड़ी लहजे मे बड़ो हुकुम। ठीक'''सा, सच्ची'''सा। खम्मा मालकन सा। ओरु हुकुम फरईज्यो कहतो मुजराकर कर उल्टे पैरों चले जा रहे थे। बजाज बरसानेलाल अभी वेटिंग में ही थे।

वातावरण अनुकूल था। चीफ साहब ने भी अपनी दरख्वास्त पेश की। पर बड़ी सरकार ने फिर शीघ्र आख न दबायी।

चीफ का दिल दरक गया। दोहरे होते से बोले—'जाने में तो कभी खता की नहीं, अनजाने में भी पूरा ध्यान रखा है।'

चीफ की अनुनय पर बड़ी सरकार होठों में ही, झीनी-सी हंसी और अनायास बायीं आंख भी दब गयी।

चीफ निहालमल। आंखों-ही-आंखों में तद हो गया। कान्ता बहिन की शादी में, मेरी ओर से नहीं; पूरे विभाग की तरफ से दो लाख का नजराना स्वीकार!

बड़ी सरकार के पास और कोई चारा भी न था। रक्तचाप से पीड़ित आदमी इनकारी का संकेत पाते ही यहीं ढेर हो जाता। शादी के घर में काम बढ़ जाता। डाक्टर तो बुलाना ही पड़ता। मिसेस जनकराज ने सस्ते में सुलटारा कर दिया। वे जानती थी चीफ बायीं आंख दबने के राज के सिवाय और कोई भाषा नहीं समझता। आंखें दबाना पण्डित जी का दरबारी रिवाज था। यह न केवल आंख का राज समझता है बल्कि इशारे की भाषा गुणाकर नाचता भी खूब है। नौकरशाही की 'ऐबीलिटी' की पहली पहचान। इसी से तो एक दर्जन सीनियरों की वरिष्ठता का अतिक्रमण कर इसी काठ के उल्लू को चीफ की कुर्सी अता की है।

दरख्वास्त मंजूर हो गयी तो चीफ हल्के हो लौटे। जनकराज जैसे घाघ और सर्वसत्ताधारी मन्त्री का कौन भरोसा, सीधे समझौते की बात वे अन्त:पुर के माध्यम से जानें, उससे पहले वे ही बतलाते तो ठीक है।

चीफ बेचारा आज तक न जान पाया कि दम्पती का बैंक खाता साझा है। कि दोनों का अलग अलग 'एकाउन्ट' चलता है। यह जान पाना तो बहुत ही दुस्तर था कि दोनों में जबर कौन पड़ता है। असल हुकुम किसका चलता है। जनकराज ऐसा विकट आदमी किसी आदमी को बना-सवारकर लाये और आख न दबाये तो अलिफ नगा कर सड़क पर निकाल दे तो बड़ी सरकार'''' अरे बाप रे। जादूगर का पूरा झोला सम्भाले रखती है। आदमी के रूप में डाले और कबूतर बनाकर उड़ा दे। फुर्र'''फुर-अ'''र र'''फुर्र। उनका उड़ाया किसी शाख पर तो क्या आसमान में भी जगह न पाये। और पण्डित तो सचमुच गोगिया पाशा है। तभी तो बूढ़े मुख्य मन्त्री जी इनकी आख की झपकियां गिनते रहते है। जानते है कि पण्डित की बायीं पुतली के हरकत में आने के साथ दर्जनों पार्टी विधायक असन्तुष्टों की भूमिका में आ जायेंगे। आधे से ज्यादा मन्त्री-मण्डल त्यागपत्र के माध्यम से सत्ता सुख छोड़, कमण्डल ले सड़क पर आ जायेगा और सर्वस्व दान कर, राजा हर्षवर्धन के समान अंजुलीबद्ध चीरदान करने की याचना लिये पण्डित की देहली पर क्यू लगाकर खड़ा हो जायेगा।

अभी जो स्वेच्छा से केवल निर्माण-विभाग के मन्त्रीपद पर संतोष किये बैठे हैं उसमें भी राज है। केन्द्र में नया-नया राज है। प्रधानमंत्री नौजवान है। देखते हैं 'मिस्टर क्लीनमैन' भर बने रहकर टिक पाने का कब तक गुमान है। ज्यादा

दिन नहीं। वर्षों से जड़ जमाये कौआ तन्त्र में दोनों आंखें हरकत में बनाये रखते न चलेगा। जल्दी ही केवल एक पुतली को दोनों ओर घुमाये जाते देखने की आदत डालनी होगी। जिस दिन अकेली पुतली घूमने लगेगी, फिर इधर भी 'स्यो' करते देर न लगेगी।

और उसी शाम चीफ इंजीनियर साहब ने तो अपने सहयोगी दोनों चीफ एडीशनल इंजीनियरों के रू-ब-रू 'स्यो' कर ही दिया।

अत्यावश्यक बैठक में विभागीय आचार संहिता की पालना हेतु आंखें मारने की विधिवत् रिवाज हुई। चीफ ने वरिष्ठ होने के कारण बायीं आंख दबायी, अधीनस्थ अधिकारियों ने भी सही अन्दाज में अपनी-अपनी दायीं आख दबा दी। इस ओवास (अवारा) इशारेबाजी का मतलब था कि योजना द्विपक्षीय लाभ की है। अब किसी भूमिका की आवश्यकता न थी। चीफ साहब ने सीधे से कह दिया मंत्री जी की सुपुत्री की शादी मे तीन लाख का तोहफा विभाग की ओर से देना है।

एडिशनल तो ऐसी पेशकश के लिए जैसे तैयार ही बैठे थे। प्रस्ताव पर औपचारिक बहस भी न की और अपने सहयोग का वायदा कर चल दिये।

अगले दिन सारा विभाग हरकत में आ गया। 'इलेक्शन अर्जेन्ट' के समान 'मैरिज अर्जेन्ट' की अफरातफरी शुरू हो गयी।

चार दिन बाद ही मण्डल स्तरीय सुपरिन्टेंडिंग इन्जीनियरों की एक अति-आवश्यक बैठक का आयोजन राजधानी में ही किया गया। वैसे तो शादी की तारीख अभी दूर थी; कई और सप्ताह आयोजन सप्ताहों के रूप में मनाये जाने वाले थे, किन्तु योजना बहुस्तरीय थी, अतः विभागीय स्तर पर तत्परता जरूरी थी।

इस बैठक का 'एजेण्डा' था—मण्डल स्तरीय नये निर्माण कार्यों का प्रारूप तैयार करना। प्रत्येक मण्डल में एक-एक ही सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर था। निर्धारित समय पर चारों पहुंच गये तो दोनों एडिशनल भी आ पहुंचे। पहले मौसम पर चर्चा चली। फिर 'शिप' का दौर। मण्डल स्तरीय सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियरों की नजर में विभागीय कार्य पर पर बहस एक बोरिंग विषय था, पर दोनों एडिशनल मूल सूत्र से साक्षात्कार कर चुके थे, अतः सायास बहस का रुख पलटा। वरिष्ठ एडिशनल खुराना साहब ने पीठासीन होते बायीं आंख दबायी तो चारों की दायीं पुतलियां हरकत में आ गयीं। साझे लाभ की बात पलक झंप-कते स्पष्ट हो गयी। मण्डलाधिकारियों की दिलचस्पी बढ़ गयी। 'दो दूना पांच। पांच लाख की बन्दरबांट का मसौदा आनन-फानन में पास हो गया। फिर गिलास टकराये। एक-दूसरे की सेहत के लिए पीते, पत्रम्-पुष्पम् भेंट की पूरी योजना बन गयी।

बैठकों का निम्नगामी दौर चला। आठों एग्जीक्यूटिव इंजीनियरों ने मिल-बैठकर स्तर-दर-स्तर योजना को कार्यान्वित करने की विधि तय की। और अन्त में स्वयं चीफ महोदय की अध्यक्षता में समस्त विभागाधिकारियों की एक संयुक्त बैठक हुई। आंखमारी की रिवाज चली। सब ऐसे अनजाने बने बैठे थे, जैसे एक-दूसरे का राज कोई नहीं जानता। पब्लिकवेल-फेयर की चिन्ता में सब घुले जा रहे थे। 'गम तो साहबों को बहुत था, मगर आराम के साथ।' अतः प्रस्ताव सर्वसम्मत से स्वीकार हो गया। तय हुआ कि पी० डब्ल्यू० डी० गजटेड आफिसियर्स एशोसियेशन की जिला स्तरीय शाखायें अपने-अपने मण्डलाध्यक्षों के पास अपने-अपने हिस्से की रकम यथा समय पहुंचा देंगी। कुल जमा राशि आठ लाख होगी।

राज्यभर में आठ एग्जीक्यूटों के अधीनस्थ सोलह असिस्टेन्ट इंजीनियर थे। छ दिन बाद जिला-खण्ड स्तर पर एक परम आवश्यक बैठक किये जाने का परिपत्र जारी किया गया। एजेण्डा था—खण्ड स्तर पर नयी निर्माण-योजनाएं शुरू करना। आंखें दबीं। सबकी समझ में आ गया कि बात सहकारी लाभ की है। थोड़ा-बहस-मुबाहिशा हुआ, पर बिना मीन-मेख सब योजना पूर्ति के मूड में आ गये।

पी० डब्ल्यू० डी० कर्मचारी यूनियन बारह लाख इकट्ठा कर, अपना हिस्सा काटकर, शेष अपने आला अफसर के हवाले कर देगी।

मगर अन्तिम पड़ाव पर काफी खींचतान हुई। जूनियर्स ने फटाफट मरम्मत कार्यों और नव-निर्माण के लिए अलग-अलग टेण्डर आमन्त्रित किये। विलम्ब कर रहे ठेकेदारों के विरुद्ध नोटिस जारी किये गये। जिन आदेशों पर जिस स्तर के ऑफिसर के हस्ताक्षर अपेक्षित थे, उन सबके दस्तखत होकर पत्रावली द्रुतगति से लौट भी आयी। पर ऐन वक्त पर ठेकेदारों ने अड़ंगा शुरू कर दिया। निर्धारित तिथियों पर वे ठठ के ठठ जूनियर इंजीनियरों के दफ्तरों में इकट्ठा हुए। बहस-मुबाहसा खुलकर हुआ, शिकायत-शिकवों का दौर चला। ठेकेदारों को बिल पास करवाने के लिए निर्धारित कमीशन देने पर तो एतराज न था, पर फिर भी बिल विलम्ब से पास होने की शिकायत थी। अनुष्ठान में हाथ बंटाने से पहले वे भी अपनी स्थिति मजबूत कर लेना चाहते थे। उनके तेवर देख, सरकारी पक्ष में आंखें मारी जाने लगीं। आश्वासन दिये जाने लगे। पेण्डिंग बिल फटाफट पास होने लगे, फिर प्रत्येक ठेकेदार ने स्वेच्छया अढ़ाई हजार 'मैरिज फण्ड' में प्रदान कर दिये तो काफी संख्या में नये टेण्डर मंजूर हुए। निर्माणाधीन 'प्रोजेक्टों' को पूरा करने की तिथियां बढ़ा दी गयीं।

इस मसले पर भी मौखिक सहमति हो गयी कि—सीमेण्ट में पहले से कुछ ज्यादा बालू खपाये जाने को नजर-अन्दाज कर दिया जायेगा और इसके साथ ही

भिन्न-भिन्न स्थानों पर जूनियर इंजीनियरों के दफ्तरो में जमा की गयी चौबीस लाख की कुल राशि पर सतोष किया गया। और प्रथम सीन का पटाक्षेप हुआ।

जुवारी, भ्रष्टाचारी और सटोरिये वायदे और दुनियावी सिद्धान्तों के पक्के होते हैं। सांझा, ठगी, पाकेटमारी की बांट मे एक-दूसरे को धोखा-दगा नही देते। सब अपनी-अपनी हैसियत और कीमत के साथ हड़प कर सकने की औकात जानते हैं और अपने अनुमान के अनुसार सौंपकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। इतनी बड़ी बंदर-बांट आंखों के इशारों-इशारों में ही हो गयी। और किसी बेगाने को भनक तक न मिली। इन राजनेताओं से तो नौकरशाही ज्यादा शातिर है कि कर भी गुजरे और जूतमपेज भी नहीं होती।

प्रत्येक जूनियर ने अपने पास जमा पचास हजार में से साढ़े सैंतीस हजार अपने हल्के के असिस्टेन्ट जूनियर के हवाले कर दिये। इसी प्रकार स्तर-दर-स्तर सबने पूर्ण हिसाबी ब्यौरे के साथ अपने आला अफसर के पास रकम पहुंचा दी। ठेकेदारों ने जितनी भी मिलावट की होगी पर विभागीय न्यूनतम मापदण्ड का तनिक भी उल्लंघन अतिक्रमण नही किया।

चीफ इंजीनियर ने दो लाख का फण्ड पण्डित जी के हवाले किया तो जनक-राज मूंछों में ही हंसे, अन्तःपुर से हाथ बढा और नोटों की गड्डी चिलमन की ओट चली गयी। माल ठिकाने पहुंच गया तो प्रभु ने बायी आंख दबा दी, तो भी सेवक ने तत्परता से दायी आंख दबायी, पर तभी जनकराज डपटकर बोले—'दोनों मूंद लो। जल्दी करो।' चीफ अचकचाया तो पण्डित ठहाका लगा-कर हंसे। डपट से ठहाके की चेतावनी ज्यादा शातिर थी। चीफ यन्त्रवत् आंखें मूंद खड़ा हो गया। मंत्री जी आश्वस्त हुए तो चीफ की आंखें आप ही खुल गयी।'

कितने महान पुरुष, धीर-वीर प्रकृति के धनी। सारी बन्दरबांट के पीछे इनकी आंख लगी रही, पर—अपना प्राप्य पाकर आंख मूंद ली। ऐसे होते हैं कुशल राजनेता। ऐसे चलता है राजकाज।

'चीफ की सोच छूटी। 'चीफ साहब, यही है मेरी लोकप्रियता का राज। मैं सहकारिता का पूर्ण सम्मान करता हूं।' और वे अन्तःपुर में दाखिल हो गये।

चीफ को पहले सांप ने सूंघा। फिर बोध हो गया। बाप रे! कैसा विकट कूटनीतिज्ञ है। मेरी कमजोरी को भांप ही गया। प्यादे न जाने कितना चबा गये और मैं···मैं एक लाख। वह तो पण्डित जी की महानता ही समझो कि सब जानते हुए भी केवल दो लाख पर ही सब्र कर हंसते रह गये। यदि कोई छिछोरा होता तो···। मैं···मैं गणित मे सदा कमजोर रहा हूं।' तभी उसकी बायी आंख स्वतः दब गयी और मन हुआ कि वह भी मन्त्री के समान ठहाका लगाये।

'मैं भी कितना गधा हूँ कि जनकराज जी के ठहाके पर सहम गया। अगर मेरा गणित कमजोर न होता तो भला वे रिस्क उठाकर मुझे चीफ ही क्यों बनाते।'

अपनी अनभिज्ञता पर गर्व करते उनका सीना एक बार तन गया। वे चाल में अफसरी अंदाज भरे कार के पास आये। ड्राइवर ने झुककर सलाम की। दरवाजा खुला। दरवाजा बन्द हुआ। सोफर ने फिर सलाम दागी पर उसकी चाकरी पर साहब ने कोई ध्यान न दिया।

— — — —

बाबा बोलने लगे

गुलमोहर स्वभाव से शान्त होता है। खिलता अधिक, सनसनाता कम है। पर धूप की बदली भरी, हवा, झड़ी की रात का प्रभाव था या परिपूर्ण बाबू के अन्तस में उठते तूफान का, कि गुलमोहर भी सनसनाने लगे। परिपूर्ण बाबू पार्क की जिस बेंच पर बैठे थे, वह भी सिहला चुकी थी। बूंदे दें रुकीं पर तुषार कण झरते रहे। परिपूर्ण बाबू दूब पर टहलने लगे।

केन्वास के जूते ठरठरा गये और पगथलियां सुन्न होने लगीं। 'तो आदमी भीतर से ज्यों-ज्यों सुखान खाता है, बाहर की सरदी अधिक प्रभावित करने लगती है।' कुछ बूढ़े भी नहीं ठिरठराते पर परिपूर्ण बाबू तो पूरी तौर पर कप-कंपा रहे थे।

'कहीं एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित हो जाता है तो शरीर पर प्रकृति की प्रतिकूलता का प्रभाव कम हो जाता है।' बाबूजी ने कहीं पढ़ा था। किन्तु पार्क में टिमटिमाती विद्युत-बत्तियों के सिवाय ऐसा कुछ भी न था, जिस पर ध्यान एकाग्र किया जा सके।

बादल में एक जगह दरार थी, एक मासूम-सा तारा झांक रहा था। उसकी नियति का अनुमान कर परिपूर्ण बाबू ने एक निःश्वास ली। निगूढ़ अंधेरा इसे भी निगलने वाला है। अंधेरा सबको लीलता है। उन्होंने अंधेरे को लीलने की चेष्टा की तो अंधेरे ने उन्हें अपने घेरे से बाहर धकेल दिया। घर के अंधेरे से निकले तो पार्क के अंधेरे ने घेर लिया। अंधेरा निःशब्द दबे पांव आता है। फिर भी ऐसा कुछ नहीं जहां ध्वनि न हो।

ध्वनि और सरदी का प्रवेश-द्वार कान है। उन्होंने कोट का कालर उठाकर कान ढंक लिये। सब छोड़ आये, पर कोट साथ लेते आये। एक यह ऐसे आदमी की सौगात थी, जिसका मुसीबत में किसी एक दिन परिपूर्ण बाबू ने साथ दिया था। पर जिसे मुद्दत से साथ दिया, सामाजिक कुधारणाओं से ऊपर उठकर जिसे स्वतन्त्रता का उपभोग करने दिया, वह रूढ़ता के ऊपर न उठ पाई, उसी रूढ़

संस्कार ने ऐसे कारण पैदा किये कि परिपूर्ण बाबू महसूसने लगे यहां तो उनकी उदारता जंग खा जायेगी और घर छोड़ने पर मजबूर हुए। घर छोड़ने लगे तो पत्नी ने कोट भी देने से इनकार कर दिया। बाबूजी को बहुत कुछ घिसने टूट जाने पर मजबूर किया गया था, फिर भी सरदी से सुरक्षा पाने के लिए वे उस टूटन की अन्तिम सीमा तक झुके और आप ही कोट उठा घर के दर-दीवारों से मुंह छिपाकर पार्क में आ बैठे।

तिनके-तिनके बटोरकर जो घर बनाया था, इसलिए कि वे सुरक्षा के साथ रह पायें, जब उससे निष्कासित हुए तो आगे की कोई मंजिल तो निर्धारित न थी। आदमी अपने परिवेश को छोड़ता है, किन्तु भुला नहीं पाता। मन और पांवों की संगति बिगड़ जाती है, मन नई मंजिल की पड़ताल करना चाहता है, पांव पुराने घरौंदों की ओर उठ-उठ जाते हैं। किन्तु कटी हुई डाल पेड़ से फिर जुड़ तो नहीं सकती।

इस खयाल ने उन्हें झकझोरा। पर वे तो निरी डाल नहीं, जड़ों समेत तना हैं। तना अलग नहीं होता, शाखाएं बेशक अलगा जायें। कोई शाखा उत्पात करती है तो तने की सबलता इसी में है कि शाखा को संभाले।

आदमी की उदार वृत्ति, समय से आगे की प्रगतिशीलता ही उसकी जब दुर्बलता मान ली जाती है तो उसके अन्तस में एक असह्य तनाव भर जाता है। घर लौट जाने का मतलब था, उस तनाव, अलगाव और कटाव से जूझते रहना। पर वहशीपन वे कैसे, कहां से जुटाएं। अंधेरे से लड़ने से पहले अपने भीतर के प्रकाश की बत्ती को उकसाना पड़ता है। या वहशी बनना पड़ता है।

वहशी वे बन नहीं सकते। बढ़ती उकसान के प्रयास में उनका मन हुआ, जोर से एक ठहाका लगायें। कितने दिन तो हो गये, जब खुलकर हंसा करते थे। शायद वे हंसने की क्रिया ही भूल चुके थे। घर में हंसी थी, कहकहे थे। किन्तु वे तो वर्जित-प्राणी थे। वे उनमें शरीक नहीं हो सकते थे। सुन भी न पायें, इसलिए घर की बाहरी चहारदीवारी में जो कभी ईंधन की कोठरी थी, उसमें धकेल दिये गये। चौक पर खुलती खिड़कियां भी इसलिए बन्द कर दी गयी कि उनकी नजर की जद में घर की बहू-बेटियां न आ जायें, क्योंकि वे वृद्ध की नजर में छूत जो होती हैं।

घर की दीवारों पर सतर्कता, दरवाजों पर पर्दा। कोठरी में आ गये हैं, इसके लिए भी खखारकर सूचना देना जरूरी। परिपूर्ण बाबू औपचारिकताओं के अभ्यस्त न थे। और नहीं अपनी कल्पना में सोये रहने के कारण याद रख पाते थे, किन्तु एक वक्र दृष्टि हर समय उन्हें यही याद दिलाती रहती। खंखारते-खखारते गला खुश्क हो चुका था, शायद अब न हंस पायें। पर फिर भी फेफड़ों में पूरी तरह हवा भर हंसे तो, खूब हंसे।

'''तो अभी शेष है। वे आश्वस्त हुए। आदमी में हंसने का एहसास जब तक जीता रहता है। उसका अपनापन भी बना रहता है। झुरमुटों में प्रतिध्वनि हुई। प्रकृति हंसी में साथ देती है। आदमी को उसके वजूद की याद दिलाती है। वह घुटन सीलन भरी कोठरी तो प्रतिध्वनित भी नहीं होती। आशंका की दीवारों से घिरा आदमी खुल नहीं पाता। अधिकारलिप्सु नारियां आदमी के अधिकार का अपहरण कर अपनी स्वायतता की जूती के नीचे नई बहुओं बेटी-बेटों को दबाती है, यही रूढ़ परम्परा है। इसके लिए सास बनी औरतें पहले गृहस्वामी को अपमानित करती हैं।

परिपूर्ण बाबू तन से नाजुक, मन से भावुक और कर्म से कवि थे। वे अपने में खोये रहे। जड़ें धूप में गड़ी अपनी शाख-टहनियों को रसमिक्त करने का झूठा एहसास पालती रही, किन्तु शाखों में कविता न सरसा पायीं। और सूखे दरख्तों के बीच हरे-भरे भावरस विभोर वृक्ष को सुखाने की चेष्टा चलती रही। बहुत प्रयास किया परिपूर्ण बाबू ने, अपने को कविता से, भावुकता से, व्यक्ति की स्वतन्त्रता से काटने का। बरसों कलम न उठाई। पुस्तकों को हाथ न लगाया। रूढ़, अनुदार, समाज में अपने को एक जर्रे के रूप में समाविष्ट करने का प्रयास किया, पर अंधेरे उन्हें स्वीकार न कर पाये, क्योंकि उनके वजूद में अभी प्रकाश सना था। सो अंधेरों से खटक गयी। विचार का अंधेरा। अधिकार का अंधेरा। अधिकार की भूख उन्हें तो कभी थी ही नहीं, जितने अधिकार सहेजे थे, वे भी उनकी मजबूरी थी। जैसे अयाचित बोझा ढो रहे हों। पर अधिकार से विलग होने का जब यह आशय बन जाये कि जो अधिकारी के अधिकार को छुए वह उन्हें ही वर्जित-प्राणी घोषित करने के लिए नीचे की सतह पर उतर आये तो दो ही उपाय शेष रह जाते हैं, निरन्तर लड़ते रहें या पलायन कर जायें। पलायन के बाबूजी कभी हिमायती न थे। हार उनका स्वभाव न था, अतः जब हारकर घर से बाहर आये तो अपने साथ ही संघर्ष उभरने लगा।

तभी कोई अंधेरे को चीरते हुए आया। चौकीदार था। दोनों ने एक-दूसरे को पहचाना। 'बाबूजी आप, इतनी रात गये, इस सरदी में यहां ?' बाबूजी न बोले तो खुद उत्तर तलाश लिया। शायद लेखकों के ऐसे जानमारू वातावरण से ही कोई प्रेरणा मिलती हो। मैं अपढ़ क्या समझूं।' और चौकीदार खिसक गया। इस खयाल से कि बाबूजी की एकाग्रता भंग न हो।

बाबूजी को याद आया। जिस दिन वे कोठरी में आ बैठे थे उस दिन भी लोगों ने उनसे पूछा था—'बाबूजी आप यहां ?' जवाब न उस दिन दे पाये थे, न आज। किन्तु उन्हें समझाने वाले खूब समझ गये थे कि उनकी रचना प्रवचना बनकर रह गयी है। उनकी कहानियों में पूरे कद पात्र खड़े थे, पर यथार्थ जगत में उन्होंने बौनों का ही सृजन किया था।

उन्होंने बदलाव के परिवेश से कथानक उठाये थे। किन्तु घर की न कथा-वस्तु बदली, न कथानक। यथास्थिति में भी और घुंडियां पड़ गयी।

गिरजाघर के टावर की घड़ी ने 9 की टंकोर दी। सरदी के मौसम में नौ बज जाने का मतलब काफी रात हो जाना। उन्होंने सिगरेट जलाने का कई बार प्रयास किया तब कहीं सीहलाई तिल्ली जली। 'सीलन में भी आग तो होती हैं, पर घर्षण कुछ ज्यादा ही मांगती है। सीहलाया ईंधन या तो जलता नहीं, यदि जलता है तो बड़ी देर तक धधकता है। कभी-कभी तो सब जला धरता है।' उस समय हर ऐसी चीज से वे अपनी संगति बैठाते जा रहे थे जो ज्वलनशील हो।

तो अभी एक घण्टा शेष है। दस बजे कोई ट्रेन जाती है। सफर किये मुद्दत हो गयी। कहां जाती है? मालूम नहीं। पर सीटी रोज सुनाई देती है, इससे रेल जाती है। जहां भी जाये, जहां तक जाये, उन्हें जाना है। जेब खाली नहीं है। 500 मील तक के सफर के लिए पर्याप्त है। सफर में खर्च किया कि कहीं बैठ कर दो-चार दिन खाया, फिर तो खाने का कोई डोल बैठाना ही होगा। न हो किसी तीर्थ में जा बैठेंगे। हिन्दुस्तान में निठल्लों को खिलाने के लिए 'श्री जयराम अन्नपूर्णा, भण्डारों की कमी नहीं। अन्न का दाना तो उन्हें मयस्सर नहीं जो तन की चटनी कर खाना चाहते हैं।

सरदी और गहरा गयी। जितना समेटा जा सकता था, ओवर-कोट को उन्होंने तन के गिर्द समेटा। खान अजहरदीन पठान भी उन्हें इसी स्थिति में मिला था। उन्होंने भरदम सिगरेट का कश लिया। और धुएं का छल्ला बनाकर छोड़ा। धुआं कोहरे में एकाकार हो गया। नजर वैसे भी कमजोर होने लगी थी, अब तो हाथ की हथेली आंख के नजदीक ले जाने पर भी न दिखाई दे रही थी। किन्तु तब ऐसा न था। कोहरे के बावजूद ठठरी बन पड़े इन्सान को उन्होंने पहचान लिया था। छूकर देखा। सरदी के बावजूद जिस्म गर्म तवा बना था। जूड़ी-बुखार का मारा परदेशी। बाबूजी उसे घर लिवा ले गये। तब 'घर' उनका था। फिर भी घरवाली ने टुनका डाल ही दिया था।

'कौन है? कहां से उठा लाये?'

'इन्सान है, पार्क से उठाकर लाया हूं। तेज बुखार है। तिमारदारी का ख्वाहिशगार है।'

'मगर इसकी दाढ़ी देखी? घर मे मुसलमान रहेगा तो देवता रुठकर चले जायेंगे।'

'अच्छा हो। इन्सानियत के बंटवारे की झोंक में बने देवता इस घर से चले जायें तो इस घर के इन्सान देवता बन जायें।'

तब तक गृहिणी को पति की तलब थी। बेटे भी जवान न हुए थे। हुक्म की

हाजिरी के लिए बहुएं भी न आई थीं। दो बेटियां थीं, वे ससुराल जा चुकी थीं। किन्तु एवज में परिपूर्ण बाबू ने दूर के रिश्ते की एक असहाय विधवा बहिन को घर में जरूर आश्रय दिया था। पहले गृहस्वामिनी और आश्रिता की न बनी। किन्तु जब से घर में बड़े बेटे की बहू आयी बूआजी गुरुआनी बन गयीं।

'भइया की चलन न चलने देना, भाभी। अन्यथा यह भाभियों का गुच्छा तुम नहीं बहू लटकायेगी। मर्द वैसे भी उदार हो गये हैं; सत्यानाशी जमाना जो आ गया है। अब तो घर की मरयादा और अपने अधिकारों की रक्षा दोनों ही खुद स्त्री को करनी पड़ती है। भला इसी में है कि पीढ़ियों की लीक फिर कायम कर दो। पर्दा और जुबानबंदी बहू की शालीनता और सास का कौशल होता है।

प्रारम्भ में तो गृहिणी को बूआजी का मसविरा न सुहाया। बाबूजी के विचारों की उस पर छाप थी। किन्तु बाबूजी ने दो-एक बार बहू की खैर-कुशल पूछी। दुलार के शब्द बोले। बहू सेवा-सुश्रूषा करने लगी तो बूआजी के व्यावहारिक दर्शन में मानवीय संवेदनाएं गलित हो गयी। दर-दरवाजों पर पर्दे तन गये। जुबानों पर ताले जड़ गये। एक के बाद दो और, तीनों नवागन्तुक गृहबधुएं चलती-फिरती चद्दरें बन गयी। गूंगी-बहरी छायाकृतियां, काम की चक्कियां। पिता के घर जो भी पढ़-गुणकर आई सब भुला देना पड़ा।

अजहरुद्दीन तो भला-चंगा होकर चला गया। स्वस्थ पठान गद्गद स्वर में बोला—'बिरादर! तुम फरिश्ते हो।' 'अरे भाई बद्दुआ न दो। परिपूर्ण बाबू मुक्त भाव से हंसते बोले थे। मेरा आदमीपना न छीनो। पत्थर की बुत न बनाओ। मेरी संवेदना को बना रहने दो। फरिश्ते से मुश्किल है इन्सान बनना।'

पठान फफक पड़ा—'बिरादर! हमने इन्सान के चोले में बजहवी भेड़िये बहुत देखे हैं। मुसलमान हूं, बुतपरस्त नहीं। फिर भी तुम अगर बुत बन जाओ तो मैं सिजदा करूं।'

फिर वह उन्हें वही भारी-भरकम कोट पहनाने लगा। इनकार न करना, नेक इन्सान। तुम जिन्दा पीर हो। समझो, किसी फिरकापरस्त ने घहर चढ़ाई है। जैसे तुम्हारे आने तक इस कोट ने मुझे जिन्दा रखा, खुदा न करे, मगर वक्त का भरोसा नहीं, यदि ऐसा वक्त कभी तुम्हारे ऊपर आ गुजरे तो तुम्हारा भी साथ देगा।'

और कोट गाथ दे रहा था। तभी निकट ही किन्हीं के कदमों की चाप सुनाई दी। बाबूजी काफी ओट में थे, फिर भी झुरमुटों में और घुस गये। शहर के सारे भले आदमी तो उन्हें जानते थे, किन्तु उचक्के और पुलिस वाले न पहचानते थे। आगन्तुक तीन थे। टोह ली, फुसफुसाये और लौट गये।

उन्होंने लम्बी सांस ली और आसमान को घूरा कि तभी वह एकाकी तारा टूटा।'''तो समय हो गया। नक्षत्र भी धुरी-च्युत होने लगे है। विदा।

वे लिथड़ते कदमों चल पड़े। चौराहे पर पहुँचे। एक रास्ता घर की ओर। दूसरा फैक्टरी की तरफ जा रहा था और तीसरी रेलवे स्टेशन की डगर। बाबूजी के पांव धरती ने पकड़ लिये। किधर?'''स्टेशन की ओर से धड़धड़ की ध्वनि इंजिन की 'व्हीसल', तो ट्रेन आ गयी। अभी शायद पकड़ा जा सके।

चले। शक्तिभर चले। किन्तु फिर लोहे की पटरियों पर पहियों की घिसन। 'व्हीसल। अब कहां?' बस वही जहां से आये। घर से! पार्क से! घर! घर कहां? पार्क। तभी कोहरे से तीन आकृतियां प्रकट हुईं।

'बाबूजी, बाबूजी। हां। दादा ही तो हैं।' बड़ा और मझला बेटा। पोता।

'बाबूजी! हम फैक्टरी से लौटकर आये तो आपको न पाया। भाभी ने बताया।' मझला बेटा बोला—'बाबूजी चले गये। सुबह दस बजे ही जा चुके थे। अन्न का दाना भी पेट में न पड़ा था।'

'बाबूजी, लौट चलो। आप जो महसूस रहे थे उसे हमने भी भुगता है।'

'देखो! मैं हिन्दुस्तानी हूं, वानप्रस्थ की अवस्था आ पहुंची है। मोह का अंत नहीं। ममता अछोर है। राह न रोको। मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं। बस, अपनी मां का खयाल रखना। वह खराब नहीं। भोली और स्वाभिमानी है। उसका दर्प कभी न तोड़ना। वरणा वह टूट जायेगी। मेरा क्या? अब लिख न पाऊंगा। अंगुलियां थरथराने लगी हैं। पढ़ न पाऊंगा। आखें जवाब दे चुकी हैं। फिर जी कैसे पाऊंगा? मुझे उस घाट जाने दो जहां कोई पढ़कर सुनाने वाला हो। रामायण अपनी जगह है। किन्तु मेरी आस्था का केन्द्र महाभारत है। राम आदर्शावतार है और कृष्ण पुरातन भंजक। इसलिए गीता मेरी आस्था का केंद्र है। आग से मुझे लगाव है। आग तापने की आदत है। किसी धूनी तापने वाले के साथ लग जाऊंगा। सुना है; एक ऐसे बाबा हैं। नित्य उनके शिष्य महाभारत का पारायण करते हैं। महाभारत संघर्ष का संदेश देती है। बाबा धूनी तापते हैं। आग और कर्मयोग। बस, मुझे वहां जाने दो। बाबा रूढ़ीभंजक हैं। मुझे जो अकसर घर में न मिला शायद बाबा की संगत में मिल जाये। मैं पढ़े-सुने बिना जी नहीं सकता। तुम्हें फुरसत नहीं, बहुएं सुना सकती नहीं। बहुएं इस ललक से लाया था कि जब नैना ज्योति जवाब दे जायेगी बेनजर पर बनकर कुछ पढ़ सुनाया करेंगी। ऐसा न हो पायेगा अतः मुझे बाबा के पास जाने दो।'

'मगर हमारे बाबा आप हैं। आपके संस्कार के हम साकार रूप हैं। हमें एक मौका चाहिए।'

और बाबा को मौका न मिला। परिपूर्ण बाबू फिर एक बार घर में थे।

अब दीवारें मुक्त थी। दरवाजे निरावरण। बड़ी बहू नित्य प्रातः कृष्ण-चरित्र सुनाती। रात्रि मे मझली महाभारत का परायन करती। पत्नी उनके पास बैठ सुनती, मगर बूआजी अब ईंधन की कोठरी मे थी।

अचानक एक दिन आंगन के मौलश्री से फूल झड़ने लगे और परिपूर्ण बाबू सहसा हड़हड़ हंसे। फिर तेज आवाज में बोले—'बड़ी बहू मुझे चूल्हे के और नजदीक ले चलो। आग बुला रही है।'

छोटे पोते ने सुना तो किलकारी मारी।

'सुनो, सुनो बाबा बोलने लगे। देखो, मौलश्री से फूल झड़ने लगे। देखो। बाबा के चारों ओर रोशनी का घेरा है।' उजला सवेरा था सारे घरवाले बाबा के गर्द घिर आये।

'देखो, कोई रोना नही। उस दिन वानप्रस्त की राह रोकी, पर प्रकाशवृत्त की राह तुम न रोक पाओगे। मझली गीता का वही···वही······

'न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह आत्मा किसी काल में न जन्मती है, और न मरती है, न यह होकर फिर होने वाली है। यह तो नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नही होता।'

और प्रकाशवृत्त ऊपर और ऊपर उठा। गृहस्वामिनी अचेत हो गयीं, किन्तु अचेतन में भी उन्होंने देखा, बाबूजी का हाथ उनके माथे पर झूल रहा है। एक शीतल छाया उस पर घिर आ रही है। वे बरबस रही थीं और जैसे कह रही थीं—'मैं भूली थी, आप कभी न भूले। आपने ··· आपकी बनाई ··· न चल पायी, पर अब प्रयास करूंगी।'

सन् 1960 से पहले लिखी गई कहानियां

अब दीवारें मुक्त थी। दरवाजे निरावरण। बड़ी बहू नित्य प्रातः कृष्ण-चरित्र सुनाती। रात्रि में मझली महाभारत का परायन करती। पत्नी उनके पास बैठ सुनती, मगर बूआजी अब ईंधन की कोठरी में थी।

अचानक एक दिन आंगन के मौलश्री से फूल झड़ने लगे और परिपूर्ण बाबू सहसा हड़हड़ हंसे। फिर तेज आवाज में बोले—'बड़ी बहू मुझे चूल्हे के और नजदीक ले चलो। आग बुला रही है।'

छोटे पोते ने सुना तो किलकारी मारी।

'सुनो, सुनो बाबा बोलने लगे। देखो, मौलश्री से फूल झड़ने लगे। देखो। बाबा के चारों ओर रोशनी का घेरा है।' उजला सवेरा था सारे घरवाले बाबा के गर्द घिर आये।

'देखो, कोई रोना नही। उस दिन वानप्रस्त की राह रोकी, पर प्रकाशवृत्त की राह तुम न रोक पाओगे। मझली गीता का वही...वही......:

'न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

यह आत्मा किसी काल में न जन्मती है, और न मरती है, न यह होकर फिर होने वाली है। यह तो नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता।'

और प्रकाशवृत्त ऊपर और ऊपर उठा। गृहस्वामिनी अचेत हो गयी, किन्तु अचेतन में भी उन्होने देखा, बाबूजी का हाथ उनके माथे पर झूल रहा है। एक शीतल छाया उस पर घिरे आ रही है। वे बरवश रही थी और जैसे कह रही थीं—'मैं भूली थी, आप कभी न भूले। आपके जीते जी आपकी बनाई राह पर न चल पायी, पर अब प्रयास करूंगी।'

सन् 1960 से पहले लिखी गई कहानियां

मुरगी हत्याकाण्ड

मुरगे की पहली कुकड़ूकूं के साथ मियां जुम्मन जमहाई लेते खाट पर उठ बैठे और छः साल पहले फेरीवाले पठान से खरीदा कम्बल जिस्म पर ठीक से लपेट लिया। पर फिर भी दांत बजाते रहे। जैसे-तैसे उठे और ओसारे में रखी छवड़ी को उलट दिया। छबड़ी का उलटा जाना था कि पांच-सात चूजे चें-चें करते दौड़ चले।

इस आवश्यक कार्य से निजात पाई तो मियां ने चूल्हे में दो-चार उपले डाले। जब फुकमफूंक के बाद किसी कदर आग तैयार हुई तो निगाली को तर तथा हुक्के को ताजादम कर चिलम पर तम्बाकू जमाई, अंगारे रखे और मनोयोग से गुड़गुड़ीनुमा हुक्का गुड़गुड़ाने लगे।

असल में मियां जुम्मन इन दिनों अजब उलझन में उलझे थे। हर रात वे यह अकीदा कर सोते कि कल अलसुबह हुक्का बेचकर इसके बदले में एक कम्बल खरीद लायेंगे। ज्यों-ज्यों रात परवान चढ़ती, सरदी भी बढ़ती और मियां जुम्मन का यकीन भी पुख्ता-दर-पुख्ता होता जाता। मगर सुबह की कुनकुनी धूप में हुक्के की तलब इस कदर बढ़ती जाती कि मियां को बराबर उपले सुलगाने पड़ते। उनके अंदाज में एक शाहंशाहियत आ जाती और रात का निश्चय डगमगा जाता। हुक्के की हर दमकश में वे एक ताजगी महसूस करते और फिर अफीम की टिकिया सटककर कलईसाजी के किसब में जुट जाते।

चूंकि अभी-अभी मियां पर पिनक पूरे तौर पर सवार हो न पायी थी अतः वे रात की उहापोह से निजात पाने की कोशिश कर ही रहे थे। सोच रहे थे कि हुक्के पर कम्बल को तरजीह दें या आज फिर इरादा तरक कर दें कि कि तभी कमबख्त मुरगी के चूजों की चें-चें ने सोच में खलल पैदा कर दी। झप-झपाती पलकें खुली तो देखा कि गली के एक छोर से डेरी-फार्म की दूध की पुरानी लारी भड़भड़ाती हुई चली आरही है। चूजे उसी भड़भड़ से घास से दौड़ चले थे। चूजे तो ओसारे में आ घुसे, मगर मुरगी

मजदूरों के हिये घाव कर गयी। उन्हीं के वोट हमदर्दी जताने के बदले दर्प से हंसकर चला। चाहे यथार्थ यही क्यों न हो कि सत्तापक्ष से सर्वहारा तबके का एक भी वोट न मिल पाया तो साझा उत्तरदायित्व का वहन उसे करना

का रथ सहज भाव से उनकी मुर्गी को कुचल उन्हें धमकाकर चली गयी।
के प्रतीक शिवानन्द कहते गये हों—'चुप रहो अगर तुम्हारे बीवी-बच्चे भी कुचल जायें तो

एक दो टूक जुबान में बोला—'चुप लगाओ ।। चींटियों को कुचलकर हाथी अपने

विसात अगर गरीब का भैंसा भी कोई खुटकने वाला।' कपड़ा मिल के एक बुनकर कहकर भीड़ के तेवरों का जायजा लेना शुरू

देखकर एक सयाने बुजुर्ग सायास्ता अंदाज ने-अपने घर जाओ। ज्यादा हमदर्दी हो तो हर्जाना अदा कर दो।' और फीकी-सी हंसी

क्योंकि मियां जुम्मन की मुरगी का कुचल में से ही एक थी, किन्तु तभी भद्र श्रेणी में गिने से आ गये। पंडित जी के प्रति की जाती

की लारी के नीचे आकर मुरगी कुचल गयी और सरकार भी क्या करे। ठोक दो डेरी

वालों को कोसना इन दिनों प्रगतिशीलता

पीक पिच्च से थूकते कहा—'कोसो भई साहूकारों की तो दाढ़ी नोचो।'
...। पर बात चुभने वाली थी। कई

की चेष्टा में सफल न हो पायी और कुचल गयी।

क्षणभर को लारी की रफ्तार कम हुई, पर दूसरे ही क्षण इस भाव से कि जैसे कुछ हुआ हो नहीं, ड्राइवर पूरी रफ्तार से गाड़ी दौड़ा चला और पलक झपकाते लारी मियां की आंखों से ओझल हो गयी।

मियां जुम्मन जैसे इज्जतदार शहरी की मुरगी को उन्हीं के रू-ब-रू कुचल कर कातिल साफ निकल जाये और वे जुबान तक न हिलायें—भला यह कैसे हो सकता है। पहले गाड़ी के ब्रेक लगाने की करकर और फिर ड्राइवर की गुस्ताख नजर दोनों बारी-बारी से मियां के कानों और आंखों में चुभ गयी। बस, मियां ने ऐसी हाय-तोबा मचाई, इस अंदाज से सियापा शुरू किया कि पलक भरसे महल्लेभर के आबालवृद्ध उस सेर भर की मुरगी के गिर्द जमा हो गये। पर्दानशीन खातूनें दरवाजों की दरारों से झांकने लगीं।

मजदूर बस्ती में अजब गुलगपाड़ा मच गया। जितने मुंह उतनी बातें। जितनी चोंचें उतनी चोटें। कोई मियां की हौसला अफजाई करने लगा तो कोई सब्र करने को समझाने लगा। कोई नौजवान मजदूर, जो ट्रेड-यूनियनाई किस्म के थे या सियासत पसन्द थे, उन्हें वर्गभेद पर बात करने का अच्छा मौका मिल गया। साथ ही साथ वे अजब अंदाज में, चेतावनी-सी देते लारी का नम्बर पूछने लगे। मगर मियां को तो तारवन्ध सियापे से ही फुरसत न थी, फिर भला नम्बर देखा भी तो हो। नौजवान रौ में आकर इम्पीरियलिस्टिक अंदाज में ही शासन व्यवस्था चलाये जाने वालों को गालियां देने लगे, जिनके राज में गरीबों की मुरगियों तक को जान-सलामती की गारन्टी न मिली।

तभी पंडित शिवानन्द शास्त्री सुबह की सैर से लौटकर आते उधर आ निकले। मजदूरों के इस महल्ले से होकर सिविल लाइंस से रेलवे स्टेशन को एक और रास्ता जाता है। इसलिए इक्के-दुक्के शरीफ किस्म के आदमी कभी-कभार इधर से होकर गुजर जाते हैं। पंडित जी सत्तासीन दल के बड़े नेता ही नहीं, विधान सभा के सदस्य भी हैं। अवाम पर रूवाब और शहर में दबदबा है।

भीड़ के पास आकर उन्होंने अधिकार दर्प के साथ पूछा—'क्या माजरा है? सुबह-सुबह इतनी भीड़ क्यों जमा की है तुम लोगों ने?'

मियां जुम्मन ने सुबकते हुए आगे बढ़कर दुखड़ा रोया। अपने साथ हुए जुर्म की कैफियत बतलाई। सुनकर पंडित जी हंसी न रोक पाये। बोले—'जाओ मियां, तुम रहे पूरे सुभान अल्लाह, जो बित्ताभर की मुरगी के लिए सुबह-सुबह शहर भर के अमन में खलल डालने की कोशिश करने लगे। म्यां, मरी तो मुरगी है, गोश्त तो तुम्हारे हवाले है। भूनो व खाओ और गमगलत करो मियां'''क्या नाम तुम्हारा'''हां'''याद आया जुम्मन। खूब रही यह भी।' और पंडितजी सहज भाव से हो-हो करते चले गये।

पर पंडित जी की सहज हंसी मजदूरों के हिये चाक कर गयी। उन्ही के वोट पर बना 'मेम्बर' उनके दुखदर्द में हमदर्दी जताने के बदले दर्प से हंसकर चला जाये और उन्हे गुस्सा भी न आये। चाहे यथार्थ यही क्यो न हो कि सत्तापक्ष से सम्बन्धित होने के कारण उन्हें सर्वहारा तबके का एक भी वोट न मिल पाया हो। पर जब कोई चुन लिया गया तो साझा उत्तरदायित्व का वहन उसे करना ही चाहिए।

नौजवानों को लगा कि ऐश्वर्य का रथ सहज भाव से उनकी मुर्गी को कुचल कर दनदनाते हुए निकल गया। सत्ता उन्हें धमकाकर चली गयी।

उनकी बिल्लपों पर मानो सत्ता के प्रतीक शिवानन्द कहते गये हों—'चुप रहो कंगालो, तुम्हारी मुरगियां तो क्या अगर तुम्हारे बीवी-बच्चे भी कुचल जायें तो भी कोई परवा नही।'

तैश में तो सभी आ चुके थे मगर एक दो टूक जुबान में बोला—'चुप लगाओ म्यां, कौन सुनने वाला है तुम्हारा सियापा। चींटियों को कुचलकर हाथी अपने थान पर जा चुका।'

'अरे हमारी मुरगी की भला क्या बिसात अगर गरीब का भैंसा भी कोई हलाक कर जाये तो भी कही पत्ता नही खुटकने वाला।' कपड़ा मिल के एक बुनकर ने जैसे भैंसे ही जितनी ही भारी बात कहकर भीड़ के तेवरों का जायजा लेना शुरू किया।

वातावरण में तनाव घुलते आते देखकर एक सयाने बुजुर्ग सायासता अंदाज में बोले—'जाओ, भाई जाओ। अपने-अपने घर जाओ। ज्यादा हमदर्दी हो तो तुम सब मिलकर मियां जुम्मन का हर्जाना अदा कर दो।' और फीकी-सी हंसी में बात रफा करनी चाही।

बात दिलगी मे उड़ भी जाती, क्योंकि मियां जुम्मन की मुरगी का कुचल जाना रोजमर्रा की आम घटनाओं मे से ही एक थी, किन्तु तभी भद्र श्रेणी में गिने जाने वाले कुछ नागरिक फिर उधर से आ गये। पंडित जी के प्रति की जाती तानाकसी उन्हें अच्छी न लगी।

उनमे से एक बोला—'यदि डेरी की लारी के नीचे आकर मुरगी कुचल गयी तो उससे पंडितजी का क्या लेना-देना और सरकार भी क्या करे। ठोक दो डेरी वालों पर हर्जाने का दावा।'

दूसरा बोला—'भई, राज में बैठने वालों को कोसना इन दिनों प्रगतिशीलता मे सरीक हो गया है।'

तीसरे ने जरा मौज में आकर जर्दे का पीक पिच्च से थूकते कहा—'कोसो भई जी भरकर कोसो। चोर न हाथ आये तो साहूकारों की तो दाढ़ी नोचो।'

कहने वाले ने व्यंग्य किया हो या मजाक। पर बात चुभने वाली थी। कई

की चेष्टा में सफल न हो पायी और कुचल गयी।

क्षणभर को लारी की रफ्तार कम हुई, पर दूसरे ही क्षण इस भाव से कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं, ड्राइवर पूरी रफ्तार से गाड़ी दौड़ा चला और पलक झपकाते लारी मियां की आंखों से ओझल हो गयी।

मियां जुम्मन जैसे इज्जतदार शहरी की मुरगी को उन्हीं के रू-ब-रू कुचल कर कातिल साफ निकल जाये और वे जुबान तक न हिलायें—भला यह कैसे हो सकता है। पहले गाड़ी के ब्रेक लगाने की करकर और फिर ड्राइवर की गुस्ताख नजर दोनों बारी-बारी से मियां के कानों और आंखों में चुभ गयी। बस, मियां ने ऐसी हाय-तोबा मचाई, इस अंदाज से सियापा शुरू किया कि पलक भरते महल्लेभर के आबालवृद्ध उस सेर भर की मुरगी के गिर्द जमा हो गये। पर्दानशीन खातूनें दरवाजों की दरारों से झांकने लगीं।

मजदूर बस्ती में अजब गुलगपाड़ा मच गया। जितने मुंह उतनी बातें। जितनी चोंचें उतनी चोटें। कोई मियां की हौसला अफजाई करने लगा तो कोई सब्र करने को समझाने लगा। कोई नौजवान मजदूर, जो ट्रेड-यूनियनाई किस्म के थे या सियासत पसन्द थे, उन्हें वर्गभेद पर बात करने का अच्छा मौका मिल गया। साथ ही साथ वे अजब अंदाज में, चेतावनी-सी देते लारी का नम्बर पूछने लगे। मगर मियां को तो तारबन्ध सियापे से ही फुरसत न थी, फिर भला नम्बर देखा भी तो हो। नौजवान रौ में आकर इम्पीरियलिस्टिक अंदाज में ही शासन व्यवस्था चलाये जाने वालों को गालियां देने लगे, जिनके राज में गरीबों की मुरगियों तक को जान-सलामती की गारन्टी न मिली।

तभी पंडित शिवानन्द शास्त्री सुबह की सैर से लौटकर आते उधर आ निकले। मजदूरों के इस महल्ले से होकर सिविल लाइंस से रेलवे स्टेशन को एक और रास्ता जाता है। इसलिए इक्के-दुक्के शरीफ किस्म के आदमी कभी-कभार इधर से होकर गुजर जाते हैं। पंडित जी सत्तासीन दल के बड़े नेता ही नहीं, विधान सभा के सदस्य भी हैं। अवाम पर रूवाब और शहर में रुतबा है।

भीड़ के पास आकर उन्होंने अधिकार दर्प के साथ पूछा—'क्या माजरा है? सुबह-सुबह इतनी भीड़ क्यों जमा की है तुम लोगों ने?'

मियां जुम्मन ने सुबकते हुए आगे बढ़कर दुखड़ा रोया। अपने साथ हुए जुर्म की कैफियत बतलाई। सुनकर पंडित जी हंसी न रोक पाये। बोले—'जाओ मियां, तुम रहे पूरे सुभान अल्लाह, जो बित्ताभर की मुरगी के लिए सुबह-सुबह शहर भर के अमन में खलल डालने की कोशिश करने लगे। म्यां, मरी तो मुरगी है, गोश्त तो तुम्हारे हवाले है। भूनो व खाओ और गमगलत करो मियां…क्या नाम तुम्हारा…हां…याद आया जुम्मन। खूब रही यह भी।' और पंडितजी सहज भाव से हो-हो करते चले गये।

पर पंडित जी की सहज हंसी मजदूरों के हिये चाक कर गयी। उन्ही के वोट पर बना 'मेम्बर' उनके दुखदर्द मे हमदर्दी जताने के बदले दर्प से हंसकर चला जाये और उन्हे गुस्सा भी न आये। चाहे यथार्थ यही क्यों न हो कि सत्तापक्ष से सम्बन्धित होने के कारण उन्हें सर्वहारा तबके का एक भी वोट न मिल पाया हो। पर जब कोई चुन लिया गया तो साझा उत्तरदायित्व का वहन उसे करना ही चाहिए।

नौजवानों को लगा कि ऐश्वर्य का रथ सहज भाव से उनकी मुर्गी को कुचल कर दनदनाते हुए निकल गया। सत्ता उन्हें धमकाकर चली गयी।

उनकी चिल्लपों पर मानो सत्ता के प्रतीक शिवानन्द कहते गये हों—'चुप रहो कंगालो, तुम्हारी मुरगिया तो क्या अगर तुम्हारे बीवी-बच्चे भी कुचल जायें तो भी कोई परवा नहीं।'

तैश में तो सभी आ चुके थे मगर एक दो टूक जुबान में बोला—'चुप लगाओ म्यां, कौन सुनने वाला है तुम्हारा सियापा। चींटियो को कुचलकर हाथी अपने थान पर जा चुका।'

'अरे हमारी मुरगी की भला क्या बिसात अगर गरीब का भैंसा भी कोई हलाक कर जाये तो भी कही पत्ता नही खुटकने वाला।' कपड़ा मिल के एक बुनकर ने जैसे भैंसे ही जितनी ही भारी बात कहकर भीड़ के तेवरों का जायजा लेना शुरू किया।

वातावरण में तनाव घुलते आते देखकर एक सयाने बुजुर्ग सायासतो अंदाज मे बोले—'जाओ, भाई जाओ। अपने-अपने घर जाओ। ज्यादा हमदर्दी हो तो तुम सब मिलकर मियां जुम्मन का हर्जाना अदा कर दो।' और फीकी-सी हंसी में बात रफा करनी चाही।

बात दिलगी में उड़ भी जाती, क्योंकि मिया जुम्मन की मुरगी का कुचल जाना रोजमर्रा की आम घटनाओं मे से ही एक थी, किन्तु तभी भद्र श्रेणी मे गिने जाने वाले कुछ नागरिक फिर उधर से आ गये। पंडित जी के प्रति की जाती तानाकसी उन्हें अच्छी न लगी।

उनमे से एक बोला—'यदि डेरी की लारी के नीचे आकर मुरगी कुचल गयी तो उससे पंडितजी का क्या लेना-देना और सरकार भी क्या करे। ठोक दो डेरी वालों पर हर्जाने का दावा।'

दूसरा बोला—'भई, राज मे बैठने वालो को कोसना इन दिनों प्रगतिशीलता मे सरीक हो गया है।'

तीसरे ने जरा मौज में आकर जर्दे का पीक पिच्च से थूकते कहा—'कोसो भई जी भरकर कोसो, चोर न हाथ आये तो साहूकारो की तो दाढ़ी नोचो।'

कहने वाले ने व्यंग्य किया हो या मजाक। पर बात चुभने वाली थी। कई

मजदूरों ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिवाद करना शुरू किया, माहौल गर्माया। कई छोकरे गाली-गुफ्ता पर आमादा हो गये। बात बढ़ती देखकर भद्र पुरुषों ने खिसक जाने में ही गनीमत समझी।

तभी न जाने कहां से एक सांड़ आ गया। भीड़-भड़ाके में राह न पाकर बिगड़ गया। और काशी के तोंदिल पंडित के समान एक उप गली में फंस गया। पूछ उठाकर, सींग गड़ाकर एक कच्ची दीवार ढहाकर, सांड़ भागा तो भीड़ में भी भगदड़ पड़ गयी। जिसको जिधर सींग समाने को राह मिली वह उसी गैल भागा। भगोड़ों की अपुष्ट सूचनाओं पर शहरभर में सनसनी फैल गयी।

किसी ने कहा—'मुसलमान मजदूर के घर से हिन्दू लड़की बरामद की गयी है।'

कोई बोला—'गोहत्या के सिलसिले में पुलिस छानबीन कर रही है।' तभी सूचना मिली—'मसजिद की सीढ़ियों पर सूवर का गोश्त पड़ा पाया गया।' एक-दो ने यह भी कहा कि कुछ नहीं, केवल एक मुरगी लारी से कुचल गयी है। और एक और एक सांड़ की चपेट में आकर दो-चार तमाशबीन सींगों की खरौंचे खा गये हैं।'

पर उनकी बात पर किसी ने विश्वास नहीं किया, क्योंकि यथार्थ अफवाह नहीं बन पाता, अतः सुननेवालों में से अधिकांश ने यही कहा—'सरकार के दलाल हैं, बात को छोटी बनाने की तनख्वाह जो पाते हैं।' इतनी-सी बात पर भला कभी ऐसी भगदड़ मचते किसी ने देखी है। साले पचमागी हैं; जनता को मुगालता देते हैं।'

और उत्सुक लोगों के हुजूम, दीनदारों की टोलियां, धर्मरक्षकों के ध्वजवाहक दल बांध-बांधकर मजदूर बस्ती की ओर जाने लगे। जो भयवश या कार्यवश जा न पाये, उन्होंने अफवाहें फैलाने का महान् योगदान किया। अनजान हर आने-जाने वाले से कैफियत दरयाफ्त करते रहे।

प्रजातन्त्र का चौथा पाया (स्तम्भ) सक्रिय हो गया। प्रेस रिपोर्टरों में होड़ लग गयी कि सबके पहले कौन असल माजरे की रिपोर्ट अपने समाचार-पत्र में भेजें।

भीड़ को लगातार घटनास्थल की ओर चले आते देखकर मियां जुम्मन भी पूरे जोम पर आ गये। सिक्काशाही शब्दावली में इजारेदारी को कोसने लगे, सरकार का सियापा सुरताल से शुरू कर दिया और हरचन्द कोशिश की कि भीड़ की सहानुभूति जजबाती तौर पर उन्हें मिल जाये।

देखते-देखते तंग संकरी गली में इतनी भीड़ जमा हो गयी कि लोग एड़ियों पर उचक-उचककर असल माजरा जानने की कोशिश करने लगे। बाद में आने वाले पहले से जमा लोगों से पूछने लगे कि असल माजरा क्या है।

किसी ने उत्तर दिया—'इस बस्ती में और क्या होना है, कोई रिंद शराबनोशी कर, बीवी पर हाथ आजमाई करके नशा जमा रहा होगा, चार भले आदमियों ने छुड़वाने की कोशिश की होगी और मतवाला उनके दामनगीर हो गया होगा।'

दूसरा बोला—'हमने तो सुना है कोई जबरदस्ती (बलात्कार) का मामला है। कुछ कहते हैं, महज चोरी की वाका है।'

'चोर यहां क्या लेने आते और आते तो बदन का अपना कपड़ा उतरवाकर ही इस कूचे से निकल पाते। हां, अलबत्ता जाड़े से ठिठुरकर रात को किसी की बीवी इस दोजख से निजात पा सकती है।'

तभी एक ने रहस्य भरे लहजे में कहा—'पुलिस मजदूरों के घरों, टपरियों की तलाशियां ले रही है। काफी नेक्सलाइट लिटरेचर मिला है। बम भी मिलने की गुंजाइश है, सम्भवतः पूरी फैक्टरी मिल जाये। सुना है इस महल्ले के सिकलीगर कारबाइन तक बना लेते है, यहां से पंजाब, बंगाल तक सप्लाई जाती है।'

लोग सावधानीपूर्वक उचककर देखने लगे। जहां तक नजर आया, नंगे, ढंके सिरों की कतार ही कतार ही नजर आई, किसी भी समय सिर फुटौवल की नौबत आ सकती है। 'भागो।'

तभी पीछे से उलटा भीड़ का एक रेला आया, आगे खड़े कुछ लोग गंदे गटर में जा गिरे। ऊपर से ढेले जैसे कुछ लुढ़कते आते देखकर वहां पर छिपे पड़े दो-तीन सूअर कीचड़ सने बदन झाड़ते दौड़ चले। लोग भी दौड़े। पर जायें कहां? किधर से? सिविल लाइन के इस छोर से रेलवे लाइन के परले सिरे तक भीड़ का जमाव हो चुका था।

कैमरे टिकटिकाने लगे। खबरें खींचने लगी। संवाद दौड़ने लगे। कानोंकान बातें चलने लगी।

अन्य किसी ने माना न माना, पर पंडित सदानन्द शास्त्री मान गये कि झगड़े की जड़ मियां जुम्मन की कुचली गयी मुर्गी ही है। वे पलक मारते समझ गये कि उनके प्रतिद्वन्द्वी अवश्य मामले को तूल देने की कोशिश करेंगे। विरोधपक्ष शायद घटना को राजनैतिक जामा भर पहनाकर ही बस कर जाये किन्तु फिरकापरस्त तो फसाद करवाकर ही मानेंगे।

राज्य के मुख्य मन्त्री के साथ पंडितजी के नजदीकी तालुकात थे, तुरन्त फोन द्वारा उनसे सम्पर्क किया। मुख्यमन्त्री ने सीधी आई० जी० पुलिस से कैफियत मांगी। उन्होंने पुलिस हेड क्वार्टर्स से पूछताछ की तो ज्ञात हुआ कि पुलिस के जवान और प्रान्तीय सुरक्षाबल का एक दल घटनास्थल पर तैनात कर दिया गया है। पूरी मजदूर बस्ती पुलिस-घेराबन्दी में है।

मजदूरों ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिवाद करना शुरू किय
छोकरे गाली-गुफ्ता पर आमादा हो गये। बात बढ़ती देख
जाने में ही गनीमत समझी।

तभी न जाने कहां से एक सांड़ आ गया। भीड़-भड़ाक
गया। और काशी के सौंदिल पंडित के समान एक उप
उठाकर, सींग गड़ाकर एक कच्ची दीवार ढहाकर, सां
भगदड़ पड़ गयी। जिसको जिधर सींग समाने को राह मि
भगोड़ों की अपुष्ट सूचनाओं पर शहरभर में सनसनी फैल

किसी ने कहा—'मुसलमान मजदूर के घर से हिन्दू
है।'

कोई बोला—'गोहत्या के सिलसिले में पुलिस छा
सूचना मिली—'मसजिद की सीढ़ियों पर सूवर का गोश
दो ने यह भी कहा कि कुछ नहीं, केवल एक मुरगी लाए
एक और एक सांड़ की चपेट में आकर दो-चार तमाशबी
गये है।'

पर उनकी बात पर किसी ने विश्वास नहीं किय
नहीं बन पाता, अतः सुननेवालों में से अधिकांश
दलाल हैं, बात को छोटी बनाने की तनख्वाह जो पा
भला कभी ऐसी भगदड़ मचते किसी ने देखी है। स
मुगालता देते हैं।'

और उत्सुक लोगों के हुजूम, दीनदारों की टोलि
दल बांध-बांधकर मजदूर बस्ती की ओर जाने लगे।
न पाये, उन्होंने अफवाहें फैलाने का महान् योगदान
जाने वाले से कैफियत दरयाफ्त करते रहे।

प्रजातन्त्र का चौथा पाया (स्तम्भ) सक्रिय ह
लग गयी कि सबके पहले कौन असल माजरे की
भेजें।

भीड़ को लगातार घटनास्थल की ओर चले
पूरे जोम पर आ गये। सिक्काशाही शब्दावली
सरकार का सियापा सुरताल से शुरू कर दिया औ
की सहानुभूति जजबाती तौर पर उन्हें मिल जाये

देखते-देखते तंग सकरी गली में इतनी भीड़
पर उचक-उचककर असल माजरा जानने की कोशि
वाले पहले से जमा लोगों से पूछने लगे कि असल माजर

गोलियां बरसें, पर जैसे-तैसे भीड़ को तितर-बितर कर दिया जाये, अन्यथा एक बार शहर की शान्ति भंग होने पर वह अलग-अलग सूरतों में महीनों बनी रहेगी। तिकड़ी ने अन्त में मुख्यमन्त्री को भी इस राय पर सहमत कर लिया कि मामला पूर्णतया मौके पर तैनात मजिस्ट्रेट की मरजी पर छोड़ दिया जाये। पंडित सदानंद इस कदर खामोश बैठे थे मानो मुख्य अपराधी वे ही हों।

अन्त में जब मौके पर तैनात मजिस्ट्रेट ने खबर दी कि भीड़ ने पुलिस पर पथराव शुरू किया और पुलिस ने आत्मरक्षा में गोली चला दी तो मुख्यमन्त्री ने अपना माथा पीट लिया।

गोलीबारी का परिणाम उलटा हुआ, यद्यपि एक बार तो भीड़ हट गयी। पर शहरभर में उत्तेजना फैल गयी। मजदूरों ने हड़ताल कर दी, उनकी सहानुभूति में तांगेवालों ने घोड़ों के जूए खोल दिये। रिक्शे और टेक्सी वाले काम छोड़ बैठे। छात्र कक्षाओं से बाहर आ गये। उनकी टोलियों ने घूम-घूमकर कारोबारी संस्थान बन्द करवा दिये। कुछ लोग रास्ता रोकने पर उतर आये।

समाचार-पत्रों में अतिरंजित खबरें प्रकाशित होने लगीं। उन्होंने घटनाचक्र का नामकरण किया—'मुरगी हत्या-काण्ड।' पर तुर्रा यह कि मियां जुम्मन तथा उनकी हलाकसुदा मुरगी के बारे में किसी अखबार वाले ने एक जुमला तक न लिखा। गनीमत यह हुई कि पहल मजदूरों और छात्रों के हाथ में होने के कारण वाका कौमी फसाद न फैल पाया, साम्प्रदायिक शक्ल अख्तियार न कर सका। गोली-काण्ड, पुलिस की ज्यादती और दमन ही मुख्य मुद्दे बन गये।

विरोधी दलों ने संयुक्त मोर्चा बनाया, संघर्ष-समिति गठित की। [illegible] निकालने का प्रयत्न किया तो पुलिस ने ताकत का [illegible] फेंके गये और धारा 144 लग[illegible] सभा में सरकार की निन्दा का प्रस्ताव [illegible] के प्रस्ताव आये। विरोधियों [illegible] सरकारी पर कई दर्जों के [illegible] [illegible] पर [illegible]।

सुनकर मुख्यमन्त्री का माथा ठनका। उन्हें आशंका हुई कि पुलिस कहीं अपनी हरकतों पर न उतर आये। अतः उन्होंने संदेश प्रेषित किया—'भीड़ को समझा-बुझाकर हटाने की कोशिश की जाये, सुरक्षा पक्ष अपनी ओर से कोई भड़काऊ कोशिश न करे।'

फिर उन्होंने गृहमन्त्री से लाईन मिलाना चाहा कि वे स्वयं ही आ पहुंचे। पंडित सदानन्द शास्त्री उनके साथ थे। उनसे इत्तला पाते ही घटनास्थल पर एक मजिस्ट्रेट की नियुक्ति कर दी गयी थी। और पुलिस को भी नई कुमुक भेजने का आदेश गृहमन्त्री की ओर से मिल चुका था।

पंडित जी के मुह से असल माजरा सुनकर मुख्यमन्त्री को भी हंसी आई और क्रोध भी। पंडितजी को क्या पड़ी थी कि जबरदस्ती टांग अड़ाकर कामगरों को गरमाया।

पंडित जी अपनी भूल पर पछताने लगे, पर अब क्या हो सकता था। बेचारे यही मानने लगे कि भीड़ सही-सलामत बिना गड़बड़ किये हट जाये।

तभी आई० जी० और इन्चार्ज सी० आई० डी० ऑफिसर ने हांफते हुए कक्ष में प्रवेश किया। उनकी सूचना के अनुसार भीड़ का अनुमान दस से पन्द्रह हजार तक का था। उन लोगों का मानना था कि यदि भीड़ को शीघ्र तितर-बितर न कर दिया गया तो लोग रेलवे स्टेशन की इमारत को फूंक डालेंगे।

उन्होंने यह भी बतलाया कि लाऊडस्पीकरों की मदद से भीड़ को बार-बार यह बतला दिये जाने के बावजूद कि मामला कुछ भी नहीं है, केवल एक मुरगी लारी के नीचे आकर कुचल गयी है, वह हटने का नाम ही नहीं ले रही।

तभी टेलीफोन की घंटी टनटनाई, मुख्यमन्त्री ने उत्सुकता के साथ स्वयं रिसीवर उठाया। मौके पर तैनात मजिस्ट्रेट बोल रहा था—'भीड़ बढ़ती जा रही है और धीरे-धीरे रेलवे स्टेशन की ओर खिसक रही है, अभी परिस्थिति ऐसी है कि हलका सा लाठी चार्ज करने से मजमा तितर-बितर हो सकता है।'

पर मुख्यमन्त्री ने कुअवसर जानकर बल-प्रयोग का विरोध किया। चुनाव की सरगर्मियां चलने लगी थीं। यह अवसर जनता को बरगलाने, बहलाने का था, भड़काने का नहीं। पर टेलीफोन फिर टनटनाया। मौके पर तैनात गुप्तचर अधिकारी रिपोर्ट दे रहा था—विरोध-पक्ष के लोग परिस्थिति से लाभ उठाकर गड़बड़ करवाने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ मजदूरों और दफ्तर के बाबुओं के बीच हाथापाई हो भी चुकी है। कामगार और कर्मचारी दोनों ही हड़ताल पर जाने की अलग-अलग योजनाएं बनाने लगे हैं। झूठी अफवाहें फैलाने के जुर्म में हमने कुछ आदमियों को गिरफ्तार किया तो फिरकापरस्त फसादी लोग गर्माने लगे हैं। भीड़ उत्तेजक मजमे का रूप अख्तियार करती जा रही है।'

मुख्यमन्त्री को छोड़ शेष तीनों की यह राय बन गयी कि लाठियां चलें या

गोलियां बरसें, पर जैसे-तैसे भीड़ को तितर-बितर कर दिया जाये, अन्यथा एक बार शहर की शान्ति भंग होने पर वह अलग-अलग सूरतों में महीनों बनी रहेगी। तिकड़ी ने अन्त में मुख्यमन्त्री को भी इस राय पर सहमत कर लिया कि मामला पूर्णतया मौके पर तैनात मजिस्ट्रेट की मरजी पर छोड़ दिया जाये। पंडित सदानंद इस कदर खामोश बैठे थे मानो मुख्य अपराधी वे ही हों।

अन्त में जब मौके पर तैनात मजिस्ट्रेट ने खबर दी कि भीड़ ने पुलिस पर पथराव शुरू किया और पुलिस ने आत्मरक्षा में गोली चला दी तो मुख्यमन्त्री ने अपना माथा पीट लिया।

गोलीबारी का परिणाम उलटा हुआ, यद्यपि एक बार तो भीड़ हट गयी। पर शहरभर में उत्तेजना फैल गयी। मजदूरों ने हड़ताल कर दी, उनकी सहानुभूति में तांगेवालों ने घोड़ों के जूए खोल दिये। रिक्शे और टेक्सी वाले काम छोड़ बैठे। छात्र कक्षाओं से बाहर आ गये। उनकी टोलियों ने घूम-घूमकर कारोबारी संस्थान बन्द करवा दिये। कुछ लोग रास्ता रोकने पर उतर आये।

समाचार-पत्रों में अतिरंजित खबरें प्रकाशित होने लगीं। उन्होंने घटनाचक्र का नामकरण किया—'मुरगी हत्या-काण्ड'। पर तुर्रा यह कि मियां जुम्मन तथा उनकी हलाकशुदा मुरगी के बारे में किसी अखबार वाले ने एक जुमला तक न लिखा। गनीमत यह हुई कि पहल मजदूरों और छात्रों के हाथ में होने के कारण वाका कौमी फसाद न फैल पाया, साम्प्रदायिक शक्ल अख्तियार न कर सका। गोली-काण्ड, पुलिस की ज्यादती और दमन ही मुख्य मुद्दे बन गये।

विरोधी दलों ने संयुक्त मोर्चा बनाया, संघर्ष-समिति गठित की। जलूस निकालने का प्रयत्न किया तो पुलिस ने ताकत का इस्तेमाल किया। अश्रुगैस के गोले फेंके गये और धारा 144 तथा कर्फ्यू नाफिज कर दिया गया। विधान सभा में सरकार की निन्दा का प्रस्ताव रखा और गिराया गया। कशमकश बढ़ी, काम रोको प्रस्ताव आये। विरोधियों ने बहस के लिए पूरा एक दिन मांगा। अध्यक्ष की इनकारी पर कई दलों के अल्पसंख्यक सदस्य सदन त्यागकर बाहर निकल आये।

भीतर की लड़ाई बाहर सड़कों पर आ गयी। शहर में घुड़सवार पुलिस गश्त करने लगी। अगर कहीं एक पटाखा भी फट पड़ा तो बीसियों गिरफ्तार कर लिये गये।

गृहमंत्री ने सुझाव दिया कि फौज को बुलाकर शहर में फ्लेग-मार्च करवाया जाये। मंत्रिमण्डल के अधिकांश सदस्यों ने उनका समर्थन किया। पर मुख्यमंत्री न माने। यदि मुख्यमंत्री के व्यक्तिगत प्रभाव में आकर गृहमंत्री दब न जाते तो मंत्रिमण्डल का जीवन खतरे में पड़ जाता।

अन्त में कतिपय प्रभावशाली नागरिकों ने बीच-बचाव किया। संघर्ष-समिति

में फूट पड़ गयी। उन्हीं में से टूटकर आये कुछ लोगों ने अमन कमेटी का गठन किया। जन-प्रतिनिधियों का एक शिष्ट-मण्डल मुख्यमंत्री से मिला। बहस चली और ढाक के पात गिने जाने लगे। अन्त में वे ही 'ढाक के तीन पात' हाथ आये जो समझौते की तुरुप बन गये।

शर्तें तय हुईं। गिरफ्तारशुदा ऐसे समस्त बंदी छोड़ दिये जायें, जिनका किसी तोड़फोड़ में हाथ न हो। पुलिस ज्यादती की जांच की जाये तथा एक कमीशन बैठाकर यह पड़ताल की जाये कि वाके की असल विना क्या थी। बदले में शिष्ट मण्डल ने आश्वासन दिया कि अगले रोज से हड़ताल खुल जायेगी और शहर पूर्व स्थिति पर आ जायेगा।

'''और अगले दिन सचमुच सब वैसे ही हो गया जैसा कि महीनेभर पूर्व था।

जांच कमीशन के सामने छः महीने तक गवाहियां और सुबूत पेश किये जाते रहे। तीन महीने का समय और बढ़ाया गया। फाइलें दौड़ने लगीं। कागज लाल फीतों में लपेटे जाते रहे। अन्त में पेट टटोलते-टटोलते दायी ने गर्भपात का अनुमान लगाया और कमीशन ने रिपोर्ट प्रकाशित की।

लोग तो भूल ही चुके थे। मगर सुर्खियों में खबरें छापने वाले अखबार वालों की याददाश्त भी जवाब देने लगी थी। अन्त में यही समझकर कि जनता की दिलचस्पी अब इस घटना में रह गयी है। कई एक अखबारों ने कटी-छंटी संक्षिप्त सी रिपोर्ट स्थानीय खबरों के कॉलम में छापी।

'मुरगी हत्या काण्ड' से सम्बन्धित जांच कमीशन ने रिपोर्ट दी है कि पुलिस का गोली चलाना सर्वथा जायज था, अन्यथा शहर की शान्ति खतरे में पड़ जाती। सारा झमेला मियां जुम्मन नामक एक कलईसाज की मुरगी के डेरी फार्म की गाड़ी तले कुचल जाने पर खड़ा हुआ। यह आयोग सरकार से सिफारिश करता है कि वह डेरी के मालिकों को मियां जुम्मन की क्षति पूर्ति का आदेश दे।'

मियां जुम्मन की क्षतिपूर्ति हुई या नहीं'''यह कौन जाने'''पर इतना सभी जानते हैं कि कमीशन के सदस्यों ने भत्ते और मेहनताने के रूप में हजारों तुरन्त वसूल कर लिये।

चोर

चोर चक्करदार सीढ़ियों को इस प्रकार आहिस्ता पार गया, जैसे वह दिन में कई बार इस जीने से होकर ऊपर जाता रहा हो। किन्तु असल में वह पहली बार इस जीने से होकर आया था और सीधा बरामदे में पहुंचा गया था। यह तो उसके पेशे की ही विशेषता थी कि वह जिस किसी जीने को भी अभ्यस्त के समान अंधेरे में भी पार कर जाये।

उसका आज कोई विशेष लक्ष्य तो न था, क्योंकि वह आज ही कलकत्ते से दार्जिलिंग पहुंचा था। यहां वह केवल आराम और सैर सपाटे को ही आया था। यदि कोई यह कहे कि कुछ दिन पुलिस से बच रहने के लिए वह इस पहाड़ी शहर मे आया था तो उसे ज्ञान नहीं कि दार्जिलिंग जैसे पहाड़ी उपत्यका मे बसे छोटे से कस्बे की अपेक्षा जनाकीर्ण कलकत्ता इस आंखमिचौनी के लिए कई गुणा ज्यादा सुरक्षित स्थान था। किन्तु एक कामकाजी व्यक्ति के लिए आराम का मतलब यह नहीं होता कि वह अपने धन्धे से बिलकुल ही बेखबर हो जाये। वैसे उसका कोई नियमित धन्धा न था, एक रात आराम कर लेने से भी चल सकता था, किन्तु रात को जल्दी सोने का अभ्यास न होने के कारण छोटा-मोटा धन्धा मुलटाने के लिए निकल पड़ा।

जहां भी जाये, उसका धन्धा चल ही निकलता है, उसके लिए हर जगह क्षेत्र है। हां, काम के ढंग और मेहनताने की रकम मे अन्तर हो सकता है।

वह जानता था कि कलकत्ता की अपेक्षा रात की उम्र यहां दो घंटे ज्यादा ही होती है। अत: वह सरेशाम बिस्तर में जा दुबका था। लोग चाहे कितनी तारीफ क्यों न करें, किन्तु उसका अपना तजुर्बा यह था कि दार्जिलिंग की आबोहवा में ताजगी से मुर्दनी कहीं ज्यादा है। आदमी यदि एक बार पाव फैलाकर सो जाये तो अगले दिन धूप निकलने पर ही जग पाये। इसलिए वह दार्जिलिंग को पड़े रह कर ख्वाब देखने वाले बौद्धिक दिवाद्रष्टाओं के लिए माकूल और कामकाजियों के लिए मनहूस जगह मानता था।

अतः जैसे ही आकाश-दीप टिमटिमाने लगे, सीढ़ी-दर-सीढ़ी बसे शहर को नियॉन बत्तियां दुधियाने लगीं। हवा मे शरद और जर्द खुमारी सन गयी। वातावरण बोझिल होने लगा तो, वह उठ बैठा।

ओवर-कोट पहना। कालरें कान तक उठायीं। आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा चढ़ाया, मुंह में चुरुट दबाया और सर पर पुराने किस्म का फ्लेट-हेट ओढ़कर बाजुओं पर बरसाती झुलाता काम पर निकल पड़ा। उसकी वेश-भूषा ठीक वैसी ही थी, जैसी कि रात को काम करने वाले की खासियत की एक खास पहचान बन चुकी है। अभ्यास के अनुसार उसकी जेब में पिस्तौल भी पड़ी थी।

इस मामले में वह तीसरी दुनिया के चोरों की अपेक्षा विकसित देशों के सीनाजोरों के कहीं ज्यादा नजदीक था।

हिन्दुस्तान के चोर डराने के लिए अकसर छुरे या चाकू का प्रयोग करते हैं जो दकियानूस तरीका होता है। सभ्य शताब्दि का हथियार साइलैन्सर लगा पिस्तौल है। अकसर गोली नहीं चलानी पड़ती। पिस्तौल की शक्ल देखते ही आसामी माल वसूलकर्ता के हवाले कर दिया करता है। उसे अपने धन्धे के लम्बे अर्से के दौरान केवल एक बार ट्रिगर दबाना पड़ा था, वह भी गोली हवा में उछाल दी थी।

धन्धावर आदमी महज सैर के लिए सैर नहीं किया करते। बीच राह चलते चलाते कोई-न-कोई धन्धा भी निपटाते जाते हैं। पर निपटान में आसानी रहे इसलिए पिस्तौल जेब में रख ली थी। काम आसानी और फुर्ती से सुलटा लेना उसे पसन्द था। वह किसी गुप्त क्रान्तिकारी या दहशतपसन्द गिरोह का सदस्य नहीं था। वह तो विशुद्ध चोरी के लिए या कभी-कभार सीनाजोरी किया करता था। वह इसे भी एक शरीफाना पेशा समझता था। वह व्यक्तिगत लाभ के लिए यह धन्धा किया करता था।

तीसरी दुनिया के चोरों से उसे महज इसलिए नफरत थी कि वे यथेष्ठ सभ्य नहीं होते। वे चोरी के फन में माहिर तो है, पर उसे एक कला का रूप नहीं दे पाये। इस मामले में वह सदा अमेरिकन पद्धति का प्रयोग किया करता था। मजिस्ट्रेट के सामने वह अंगरेज चोर के समान सलीके से पेश हुआ करता, किन्तु पुलिस हिरासत और जेल में हिन्दुस्तानी उच्चका या बगदाद का चोर बन जाना उसकी मजबूरी थी और उस मजबूरी का सबब बारह साला आजादी के बाद हुई शराब की बढ़ोतरी के अनुपात से ही वहां के अधिकारियों की बदमिजाजी में भी मध्यकालीन बर्बरता का इजाफा होना था।

डेरे से निकलकर वह कुछ देर माल -रोड और चौरस्ते के बीच चक्कर लगाता रहा। पहाड़ की रातें सुनसान होती हैं। सड़कें दस बजे ही जनशून्य हो चुकी थी। कोहरा घिरा था और फुहारें पड़ रही थी, हवा मे नमी थी। किसी

मोड़ पर एकाध नेपाली या भूटानी नशे में झूम-झूमकर चलता नजर आ रहा था। आक्ट्राय होटल के आगे से वह कई बार गुजरा। भीतर पाश्चात्य संगीत का कंसर्ट चल रहा था, बीच-बीच मे मीठी-मीठी खिलखिलाहट की आवाजें भी सुनाई दे रही थी। वह भीतर घुसा और 'बाल-रूम' में एक कोने में जा बैठा। उसने एक पैग ह्विस्की का आर्डर दिया। गिलास खाली किया और पैसे चुकाकर बाहर निकल आया। उसने काफी पाश्चात्य नृत्य देखे थे। संगीत सुना था, अतः उसकी परिष्कृत रुचि के अनुरूप यह संगीत न था।

धुन्ध गहरा चुकी थी। वह टार्च से एक गोल दायरे में प्रकाश वृत्त फेंकता चलता रहा। इतना प्रकाश रात को किसी शरीफ आदमी के सकारण घर से बाहर होने का सुरक्षित सबूत था। प्रकाश मे उसे राह सूझ रही थी पर उसका चेहरा कोई न देख पा सकता था। कोहरा जरा फटने लगा था। दूर पहाड़ पर फीका सा चांद लटकने लगा था। खड्डों में गीदड़ बोलने लगे थे। हवा में सन-सनाहट बढ़ गयी थी। उसने कालर से कान अच्छी तरह ढांक लिये। कोहरा फटने का मतलब है, जल्दी ही बरसात शुरू होने वाली है।

टार्च उठाकर उसने कलाई पर बंधी घड़ी मे समय देखा तो बारह बज चुके थे। उसके काम शुरू करने का समय हो चुका था। अब वह सूंघ-सूंघ कर चलने लगा। माल छोड़ वह सीढ़ी-दर-सीढ़ी नीचे उतरते अन्त में गुड्डी रोड पर उतर आया। वह थोड़ी देर रुकता, फिर बढ़ जाता। उसकी अभ्यस्त नजरें ठीक नाक के अग्र भाग पर चिपकी थी। वह प्रशिक्षित कुत्ते के समान सूंघे जा रहा था। वह उन दक्ष चोरों में से था जो हवा मे सूंघकर माल होने और आसानी से काम निपटाये जाने के मुकाम पर पहुंच जाते है।

एक 'विला' के सामने वह रुक गया। उसने मुंह बंद कर नाक के रास्ते हवा को भीतर खींचा तो आश्वस्त होकर चक्करदार सीढ़ियां पार कर बरामदे में पहुंच गया। जब वह बरामदे में पहुंचा तो बरसात शुरू हो चुकी थी। वह टीन के सेड के नीचे खड़ा होकर इत्मीनान से चुरुट पीने लगा। वह धुएं के छल्ले बना रहा था और उनसे बनते वृत्तों को देख रहा था। वह नीचे ही हवा मे सनी ऐसे सेन्ट की महक सूंघ चुका था, जिसका इस्तेमाल केवल अमीर औरतें ही किया करती है। उस गन्ध में पुरुषों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले तेल की उत्कट गन्ध नहीं मिली थी। पिस्तौल को मुट्ठी की जुम्बिश मे कसे वह उस कमरे की ओर बढ़ा, जिसके रोशनदानों के शीशों से रोशनी छन रही थी। दरवाजे को प्रयोगात्मक ढंग से जरा सा धकेला तो वह खुल गया।

दरवाजा खुलने के साथ ही एक तरुणी पलंग पर उठ बैठी। उसने हड़बड़ी मे अपने बेतरतीब गाऊन और बालो को सभाला। चोर ने उसे शान्त बैठ रहने का संकेत किया और एक वृत्त में पिस्तौल घुमाने लगा। उसके चेहरे पर बर्बरता

नहीं तकाजे की झलक थी, मानो वह चोर न था, बल्कि जल्दी से भुगतान लेकर चले जाने वाला तकाजगीर था, पर अपने काम के खतरे के ज्ञान का कोई भाव उसके चेहरे पर न था। वह आहिस्ता से बोला—'तुम्हारे पास जितना भी अनावश्यक जेवर है मेरे हवाले कर दो।'

तरुणी ने अपना नेकलेश, कानों के झूमर, कलाई पर बंधी सोने की चेन वाली घड़ी, चूड़ियां और अंगूठी उतारकर उसके हवाले कर दी।

यद्यपि वह जानता था कि पहाड़ पर तफरीह के लिए आने वाली युवतियां अपने साथ ज्यादा गहने नहीं लाया करती, फिर भी पेशे की सावधानी के तौर पर टोह लेने के लिए पूछा—'बस यही ?'

'यहां केवल इतना ही है।' तरुणी डरती-सी बोली।

'और जितना है उसे पहनकर ही सोती हो ?'

'मजबूरी थी। बाहर से आने के साथ ही सोना पड़ा, इससे उतार न पायी।'

'तो यह आपका स्थायी निवास-स्थान नहीं है। मैदान में कहां रहती हैं ?'

'कलकत्ता।'

चोर ने जेवरों को जांचा। हथेली पर तोलकर वजन का अन्दाज किया और फिर कुछ सोचकर बोला—'यह अंगूठी शायद आपके प्रणय की निशानी है।'

तरुणी ने शर्माते हुए स्वीकृति में गर्दन झुकायी।

'कहा था, अनावश्यक भर देना। अमीरों का शृंगार अनावश्यक गहनों का तलबगार होता है। यह अंगूठी अपने पास रखो। हां, यदि एक रूमाल हो तो दे दो, इन चीजों को बांध लूं।' युवती ने चोली में से निकालकर रूमाल दे दिया।

'धन्यवाद। आप काफी भव्य हैं। इतनी शान्ति से काम निबटा देने के लिए एक बार फिर धन्यवाद।' और उसने बाहर निकलने के लिए पीठ फेरी कि तुरन्त ही मुड़ गया। उसने सुना लिहाफ के भीतर कोई बच्चा कुलबुला रहा है।

'क्या बच्चे को तकलीफ है ?'

'हां, कल रास्ते में ही मोटर से आते हुए ठण्डी हवा लग गयी। अब तेज बुखार है। खांसी भी आती है। कफ के साथ एकाध कतरा खून भी निकला था। बारबार बायीं पसली पर हाथ धर के कुलबुलाता है।'

'तो यूं कहो निमोनिया है।' चोर झुककर बच्चे की धड़कन जांचने लगा। उसे निमोनिया हो चुका था।' पूछा— 'डाक्टर को दिखलाया।'

'नहीं।'

'क्यों नहीं ?'

'साहब सुबह आयेंगे। नौकर के पैर में फिसलने से मोच आ गयी। नीचे के कमरे में पड़ा है। दर्द भुलाने के लिए बराण्डी पीये है। होश में नहीं। मैं बच्चे

को साथ लेकर गयी थी, पर बीच राह मे ही बरसात शुरू हुई तो लौट आयी। नयी जगह है, किसी डाक्टर का फोन नम्बर भी नही जानती। पड़ोस में कोई जान-पहचान का नही, फिर क्या करती।'

'क्या समय हुआ है?'

'मेरी घड़ी तुम्हारे हवाले है। तुम्हारे पास अपनी भी होगी।'

चोर झेंपा। देखा, डेढ़ बज चुका था, बाहर मूसलाधार मेंह पड़ रहा था।

उसे याद आया डेढ़ साल पहले ही तो वह अपनी पत्नी को अकेली छोड़कर काम पर गया था। और पीछे से उसका बच्चा भी निमोनिया से मर गया था। उसकी कनपटी के नीचे कुछ सरसाने लगा। हड़बड़ाते हुए पूछा—'उपचार का कोई साधन घर मे है?'

'एक डिब्बा एण्टी फ्लोजिस्टिन है।'

'पलस्टर चढ़ाया?'

'बच्चा छोड़ता ही नही। कैसे तैयार कर पाती

'डिब्बा कहां है?'

'बगल वाले स्टोर मे।'

'और स्टोव भी वही होगा?'

'नहीं, कैसी अनाड़ियों जैसी बातें करते हो? यह भी नहीं जानते कि स्टोव की जगह कीचन है।' और तरुणी ने उठकर जाने का प्रयास किया तो बच्चा उससे चिपककर रोने लगा।'

'तुम यही रहो।' चोर अनायास ही तुम की मंजिल पर आ गया। लाओ, चाबियां मुझे दो। मैं लिये आता हूं।'

'टेबल के दराज में है। आप ही निकाल लो।'

चोर डिब्बा और स्टोव निकाल लाया।

'ताले तो ठीक से लगा दिये हैं न, ऐसा न हो कि कोई सारे ही माल पर हाथ साफ कर जाये!'

चोर हंसा—'तुम फिक्र न करो। हमारी बिरादरी का उसूल है कि एक की मौजूदगी में दूसरा दखल नही देता।'

इस दफा युवती झेंपी तो उसके चेहरे पर एक कुंवारा भोलापन घिर आया। ऐसा भोलापन जो औरत की पाक रूह का दर्पण होता है। वह उसके चोर होने का एहसास भूल चुकी थी। क्षणभर को उसने समझा था कि कोई आत्मीय उसके बच्चे का उपचार कर रहा है। चोर ने उस भाव के पलटने से पहले ही अपनी नजर पलट ली। पर युवती ने पहली बार उसे भर नजर घूरा।

'तुम पूरी तरह भीगे हो। ऐसा भी क्या पेशा कि अंधेरे और मेंह को ही नियामत माने। स्टोव की आंच मे हाथ सेक लो। यह पिस्तौल जेब में रखो या

मुझे सभाल दो। भरोसा न हो तो गोलियां निकाल लो।'

चोर ने पिस्तौल युवती के हवाले कर दिया। वह उससे जैसे खेलने लगी। खेलते-खेलते बोली।

'यह पलंग के नीचे साहब का सफारी सूटकेश है। कपड़े निकालो और बदल लो। पर देखना, सरकारी वर्दी न पहन बैठना।' और युवती अपनी बात पर ही खिलखिलाकर हंस पड़ी। ऐसे चोर से क्या डरना, जिसे अपनी ही हिफाजत का डर नहीं। बच्चे के समान घूरता है और मशीन के समान आदेशों का पालन करता है।

चोर को भी सरदी महसूस होने लगी थी और अभी डाक्टर के भी पास जाना था। प्लास्टर का इलाज तो अस्थायी था। उसने सूटकेश खोला जो ऊपर तक पुलिस की वर्दियों से भरा था। बड़ी मुश्किल से एक नीला सूट मिला। और काला चेस्टर भी। उसने बरामदे में जाकर कपड़े बदले और जब लौटकर कमरे में आया तो तरुणी मुसकराने लगी।

'ऐसा फिट बैठा है, मानो तुम्हारे ही नाप का बना हो।' चोर भी मुसकराया दोनों की नजरें पहली बार टकरायी। ममता और सहानुभूति आपस में मिली। अब न युवती सोच रही थी कि यह वही चोर है जिसने उसे अभी-अभी लूटा है और माल भी उसी की जेबों में पड़ा है और न ही चोर को खयाल रहा था कि वह लूट के इरादे से आया था और लूट भी चुका है।

'शायद तुम्हें किसी की ममता नहीं मिली, इसी से लुटेरे बन गये?'

'उलटे-सीधे सवाल न करो। तुम्हारे पति पुलिस में हैं, यदि उचित समझो तो नाम बतला दो।' चोर ने भरसक रूखे स्वर में पूछा।

'नाम'''नाम मिस्टर प्रफुल्ल है। वैसे महाशय बोस के नाम से जाने जाते हैं। लाल बाजार सर्किल के खुफिया इन्चार्ज है।'

सुनकर चोर फिर सहज भाव से मुसकराने लगा। बोला कुछ नहीं, बच्चे पर झुक गया।

'अगर तुम्हें धन कमाना था तो और भी धन्धे थे। अगर खतरे उठाने का शौक था तो एवरेस्ट पर चढ़ सकते थे। और यदि शौकिया चोरी करते हो तो 'हार्वी' रिस्की है।'

चोर ने युवती की बातों पर कोई ध्यान न दिया। कोने में रखा छाता उठाया और बोला—'बच्चे की छाती पर सेंक करती रहो। मैं डाक्टर को लिवाकर घंटा भर में लौट आऊंगा।'

'पर ऐसे जानलेवा मेह में कौन डाक्टर आने को सहमत होगा।'''फिर जरा रुककर बोली—'खैर, तुम ला सकते हो। पर शायद वहां भी वैसी ही शराफत से सलूक कर सको जैसा कि औरतों के सामने करते हो।'

चोर सीढ़ियां उतर चला। उसके कदमों से चरचराते काठ के जीने की आवाज युवती ने सुनी। अब वह चोर के सावधान कदमों से न उतर रहा था। उसकी चाल में उतावल की धमक थी।

फिर कदमों की आवाज नहीं, टीन की छत पर पड़ती बूंदों की टनटनाहट थी। हवा की सनसनाहट थी। बगले के पीछे पछाड़ खा गिरते झरने की कोलाहल थी। बिजली चमकती, बादल फटता और मेंह का जोर बढ़ जाता। बड़ी अंधी बरसात थी। कहीं दूर टीनें उड़ रहीं थीं और उनकी झनझनाहट गूंजे जा रही थी।

युवती बच्चे को गोद में लेकर बैठ गयी। उसकी आंखें बन्द थीं और वह होठों में ही कुछ बुदबुदाये जा रही थी। उसकी दुआएं बन्धलब थीं पर उनका असर हुआ। चोर सही-सलामत लौट आया। साथ में डाक्टर भी था। चोर उसका बैग संभाले था।

'तुम लौट आये?' युवती की आंखें झर रहीं थीं। बाहर मेंह थम रहा था। डाक्टर बच्चे को जांच रहा था। 'डबल निमोनिया हो चुका है।' डाक्टर इंजेक्शन लगाने लगा। फिर असर जाचने लगा। बच्चे की आखें खुलने लगी और वह मां की ओर नहीं चोर की ओर देखते हुए मुसकराने लगा।

पेशेवर चोर उस मुसकराहट को देख रहा था। पेशेवर डाक्टर पुतलियों की हरकत जाच रहा था।

'मिस्टर आपको मेरे साथ चलना होगा। अभी दवाइयां लानी होंगी। इजेक्शन का असर अस्थायी है।'

युवती लिहाफ के नीचे धरे पर्स को खोलकर फीस देने लगी तो डाक्टर बोला...'एडवान्स में मिल चुकी है।'

डाक्टर और चोर जीना उतर चले। बाहर मोटर का हार्न बजा। बच्चे को नींद आने लगी थी। पर तरुणी सोच रही थी—'उसका पति आने ही वाला होगा। भोर होने को है। चोर भी लौटकर आयेगा। तब क्या होगा?'

□□□